



मध्य पहाडी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन



# मध्य पहाड़ी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन

भागरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोधप्रबंध  
के एक अंश का परिवर्तित रूप

गोविन्द चातक

एम० ए०, पी एच० डी०



राधाकृष्ण प्रकाशन

प्रकाशक /

ओम्प्रवाश

राधाचृष्ण प्रकाशन

४ १४, रूपनगर, दिल्ली ७

© प्रभा, दिल्ली १९६६

मूल्य १० रुपये

गङ्गभूमि के सुपुत्र  
अक्षय श्री भवनदर्शन के  
कर-कर्मलों में  
सादर



## आमुख

मध्य पहाड़ी का यह भाषाशास्त्रीय अध्ययन गढ़वाली की एक उपभाषा उमर साहगीत और उनमें अभिव्यक्त लोक-समृद्धि सम्बन्धी मर गाथ काय का प्रतिफलन है। वस्तुतः यह ग्रन्थ अतिरिक्त रूप में मूल गाथ प्रबन्धता नहीं है किन्तु उमरी बड़ स्थापनाओं का स्थापक पृष्ठभूमि में किया गया विविष्ट अध्ययन अवस्था है। सामान्यतः मध्य पहाड़ी के जलगत गढ़वाली और कुमाउंता दोनों को सम्मिलित किया जाता है। इस ग्रन्थ में कुमाउंती के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है, किन्तु मुख्यतः मध्य पहाड़ी की एक भाषा—गढ़वाली—का ही अध्ययन किया जाएगा। इसीलिए 'मध्य पहाड़ी' का भाषाशास्त्रीय अध्ययन होना ही इस गढ़वाली भाषा में ही संबद्ध अध्ययन माना जाना चाहिए। मध्य पहाड़ी भाषा का प्रयोग हमें भाषाशास्त्रिक सुविधा के कारण किया है। इनका भाषा है गढ़वाली और कुमाउंती दोनों भाषाओं की मौखिक एवम् लिखित रूप में रची है।

पहाड़ी भाषा का अध्ययन अपभ्रंशित स्थिति में है। एक ही इन पर जन्म लेने अपिचारी विद्वानों द्वारा गाथ-काय नहीं हुआ है। दूसरी बात यह है कि इनमें गाथ-साहित्य के अतिरिक्त निर्दिष्ट भाषाशास्त्रिक साहित्य के रूपों की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है। परन्तु साहित्य का अध्ययन करने हुए मैं भाषा के अध्ययन का आरंभ पाठ्य हुआ था किन्तु एक प्रकार का साधक बन्त मस्य बन्त साधन और बन्त में साहित्य की अपेक्षा करना है। उक्त जन्म में मैंने आगे जान क्या अध्ययन के लिए एक साधक भूमि साध बनाई है।

मध्यपहाड़ी की भाषाशास्त्रिकता में पर्याप्त उदाहरण है। विद्वानों के द्वारा आपुनिक रूप भाषाशास्त्रिकता ठर (दा० धारण्यमा जन्म विद्वानों का साहित्य) प्रायः मस्य उमर मूल और विद्वानों के सम्बन्ध में अतिरिक्त विद्वानों प्रकट किया है। मैंने उक्त साहित्य की साहित्यिकता का प्रचलन किया है। एक अन्तर्गत मुझे विद्वानों है। अन्तः प्रचलन है कि विद्वानों में आता विद्वानों विद्वानों का साहित्य साहित्य। विद्वानों और डॉ० गुनाति कुमार साहित्यिकता का विद्वानों साहित्य में विद्वानों है किन्तु



उनकी वाता को ब्रह्म वाक्य मानकर चलने वाले भाषावैज्ञानिकों का मैं नमस्कार ही कर सकता हूँ ।

गढ़वाली या कुमाउँती केवल भाषाएँ नहीं हैं—वे भाषा-सीध है । हिमालय प्रदेश—नृतत्व की अनेक विशेषताओं से समन्वित है । यहाँ अनेक जातियों का नवशीय प्रसार हुआ है । इसीलिए अनेक जातियाँ, संस्कृतियाँ और परम्पराओं के विचित्र सम्मिश्रण के कारण पहाड़ी भाषाओं का विचित्र विकास हुआ है । मैंने इस अध्ययन में नवशीय सूत्रों का पकड़ने का प्रयत्न किया है । इसीलिए पहले अध्याय में गढ़वाल की पर्वतीय भूमि का भौगोलिक ऐतिहासिक और पारम्परिक परिचय दिया गया है ।

सामान्यतः भाषाशास्त्री इस तरह के अध्ययन में अथतत्त्व को सम्मिलित नहीं करते । मैंने गढ़वाली के अथतत्त्व पर भी विचार किया है, और उसमें गतोप और मुक्त का अनुभव किया है ।

हिन्दी के व्यापक भाषाशास्त्रीय अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि उसका और उससे संबद्ध बोलियाँ का पूरा अध्ययन हो किन्तु हिन्दी क्षेत्र एक विचित्र प्रकार की अस्पष्टता की भावना से ग्रस्त है । आज पहाड़ी बोलियाँ एक विचित्र उपेक्षा की गिंवार हैं । प्रश्न है कि वे किस तरह साहित्यिक दृष्टि में हिन्दी का मुह जाहती रही हैं, क्या उसी तरह वे हिन्दी के तथाकथित अस्पष्टता-ग्रस्त भाषाशास्त्रियों का भी मुह जाहती रहेंगी कि वे उस हिन्दी की पंक्ति में बिठाएंगे या अपनी बिरादरी से निकाल बाहर करेंगे ? मैं भाषाशास्त्रियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है । उनमें भविष्य में होने वाले अध्ययन पर निर्भर करेगा ।

'सुमन स्मृति-ग्रन्थ' और गढ़वाल की निवृत्त विभूतियों आदि ग्रन्थों के प्रणेता और पर्वतीय प्रदेश की भाषा, साहित्य, संस्कृति और राजनीति के भावक गढ़वाल के सुपुत्र श्री भक्तदत्त (उपनिषास मंत्री, भारत सरकार) को यह पुस्तक समर्पित करते हुए मुझे अपार हर्ष है ।

डा० सुरेशचन्द्र गुप्त का सदभाव इस पुस्तक के प्रकाशित कराने में मेरा प्रेरक रहा है । राधाकृष्ण प्रकाशन के श्री ओम्प्रकाश ने इसके प्रकाशन में जो तत्परता दिखाई उसका लिए भी मैं आभारी हूँ ।

## विषय-सूची

- १ सामान्य परिचय ११-२८  
 मन्त्र पहाड़ी का क्षेत्र गढ़वाल ११, भौगोलिक विविष्टता १२, अनु-  
 धुति और परम्परा १३ इतिहासिक पृष्ठभूमि १८
- २ मध्य पहाड़ी की गढ़वाली वाली ३१-४१  
 भारतीय जन्य भाषाशास्त्र का वर्गीकरण और उत्तम गढ़वाली और कुमा  
 उँना की स्थिति ३१, प्रियमन और डा० गुणानिन्दुमार चानुज्या का  
 अग्रिम ३२ ग्राम प्राकृत और दस मूल मन्त्रों का विचार ३३, मध्य  
 पहाड़ी और अग्रिम ३४, गढ़वाली और राजस्थानी ३८, उड़वाली तथा  
 अन्य भाषाएँ ४०, गढ़वाली और हिन्दी ४१।  
 शब्द-रूप ४२-४६  
 उत्तम और अग्रिम गढ़वाल ४२ उत्तम गढ़वाल ४४, अनाप भाषाशास्त्र  
 का ४६, जायन्ति भाषाशास्त्र उ उपाय लिए गढ़वाल ४८, अग्रभाषा का  
 गढ़वाल ४८ राजस्थानी गढ़वाल ४९, पंजाबी गढ़वाल ५०, मराठी गढ़वाल ५०,  
 गुजराती गढ़वाल ५०, बंगाली गढ़वाल ५१, सिन्धी गढ़वाल ५१, दार्ज गढ़वाल ५१।
- ३ ध्वनि तन्त्र ५३-७४  
 मरुत ध्वनियों ५८ अनुगाति और जागण ६२, स्वरागण ६८  
 अग्र स्वर ६६, स्वरा का उत्पत्ति ६६ मरुत ध्वनितान का मरुत ७०, ध्वनि  
 मरुत ७१ मरुत स्वर ७१ अग्रमरुत ७२, मरुतगण ७३ मरुतगण ७३।  
 ध्वनन ध्वनियों ७५-८०  
 ध्वनन ध्वनियों ७५ गढ़वाली की विविष्ट ध्वनन ध्वनियों ७७, ध्वनना  
 की उत्पत्ति ८०, ध्वनन परिवर्तन का मरुत ८३, ध्वननगण ८०, मरुत  
 मरुत ८१, मरुत ध्वनन और मनीरगण ८१।
- ४ मरुत गण ८२-१०१  
 मरुत के रूप  
 मरुत ८५ ध्वनन ८६, मनीरगण ८६ मरुत गण ८७ ध्वनन ८८, मरुत

वचन नापक "दावलो ६६, वारक १००, विभक्तिव रूप और परसग  
१०१।

सर्वनाम १०५-११२

उत्तम पुरुष सवनाम १०५, मध्यम पुरुष सवनाम १०६, अय पुरुष सव  
नाम १०६ निश्चयवाचक सवनाम १०७ सम्बन्ध वाचक सवनाम १०८  
प्रश्न वाचक सवनाम १०९, अमिश्चय वाचक सवनाम १०९, निज  
वाचक सवनाम १०९, समुक्त सवनाम ११०, सवनाम मूलक विशेषण  
११०।

विशेषण ११३-११६

तुलनात्मक श्रेणियाँ ११४, सख्यावाचक विशेषण ११५।

क्रिया पद ११७-१३६

सिद्ध धातु ११७, साधित धातु १२८ नाम धातु १२४, सप्रत्यय  
धातु १२५ अनुवर्णात्मक धातु १२६ वाच्य १२६, सामाय वन  
मान १२७ सामाय भूत १२८ सामाय भविष्यत १२८ ल प्रत्यय युक्त  
काल १२८, घटमान काल समूह १३०, इच्छायक और आणावक रूप  
१३०, कृदतीय काल १३१ सहायक क्रिया १३४ समुक्त क्रिया १३५।

अव्यय १३७-१४२

कालवाचक अव्यय १३७, स्थान वाचक अव्यय १३८, रोति वाचक  
अव्यय १३९ परिमाण वाचक अव्यय १३९, स्वीकृति निषेध आह्वान,  
सम्बन्ध सूचक आदि अव्यय १३९, विस्मयादि वाचक अव्यय १४१,  
अनुवार सूचक अव्यय १४२।

प्रत्यय और उपसर्ग १४३-१८८

प्रत्यय १४३ उपसर्ग १४७।

५ अथतत्त्व १४९-१७२

गठवाली का सङ्घ सामर्थ्य १५०, ध्वनि अर्थ १५०, अनुवार सूचक सङ्घ  
१५३, उपसर्ग प्रत्यय और समास १५४ पुनरावृत्ति १५५ सहप्रयुक्त  
सङ्घ १५६ पूर्वसर्ग और परसर्ग १५६ मुहावरे लोकोक्तियाँ तथा  
अन्य प्रयोग १५७ अर्थ परिवर्तन १६३, अर्थ परिवर्तन का दिग्दर्शन  
१६७ दाला के पयाय और अर्थभेद १७१ जनवाचकता १७२।

६ परिशिष्ट १७३-१८२

गठवाली और समती उपवालि १७५, चयनिका १८० निधि सकेत  
१८८ सहायक शब्द १८९ भाषानुक्रमणिका १९१।

सामान्य परिचय





ऊँची नहीं है जितनी कि हिमाल श्रेणी की दूसरी कुछ चोटियाँ—यहाँ की केवल दो ही चोटियाँ २५००० फुट से अधिक ऊँची हैं, किन्तु गढ़वाल कुमाऊ हिमाल श्रेणी की औसत ऊँचाई सबसे बढकर है। २० मील तक लगातार इसके कितने ही शिखर २२००० से २५००० फुट तक ऊँचे हैं।<sup>१</sup> इम कोई सदेह नहीं कि यहाँ जो पग पग पर तीव्र और श्रुति मुनिया के साधनास्थल दिखाई देते हैं, उनके पीछे प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रेरणा ही काम करती दिखाई देती है। आज भी हम आध्यात्मिक चेतना से पर्यटक कर जब इन अधित्यकाओं का देखते हैं तो इनके अनुपम सौन्दर्य की दिव्यता और भव्यता से विमुग्ध हुए बिना नहीं रहते।

हिमालय की कुछ सुन्दरतम उपत्यकाएँ भी इसी क्षेत्र में हैं। विस्टोला और बदिनी के बुग्याल, म्यूडार की फूलो भरी घाटी रामासिराइ और बमलसिराइ के दूर दूर तक फैले हुए सौड ताँस नदी के उदगम व समीप स्थित हर की हून, पिडारी नगी की तटवर्ती भूमि और चादपुर परगन की धनपुर पर्वत श्रेणी अपनी रमणीयता के लिए प्रसिद्ध हैं। कुमाऊ के कमिन्दर बटन ने एक शताब्दी पहले गढ़वाल के उपत्यका सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए लिखा था श्रुति अपनी विशालता के साथ यहाँ अत्यन्त प्रियदान हो उठी है। यहाँ हर घुनी जगह में ठीक स्विटजरलण्ड जैसे गाँव मिलते हैं जिनके चारों तरफ देवदारु के वक्ष तथा ऊपर विंगल गल और उनके शीपस्थान पर चमकती हुई हिमराशि की सीमा तक हरे भरे जंगल दिखाई पडते हैं।<sup>२</sup> वर्षा-काल में जब पहाड़ों की बर्फ पिघल जाती है तब इन उपत्यकाओं में—जिसे स्थानीय बोली में बुग्याल या पयार कहा जाता है—रंग बिरंगे फूल खिल उठते हैं। जहाँ भी दृष्टि जाती है फूलों के सिवाय और कुछ नहीं दिगाई देता। इन्हीं फूलों के लिए गढ़वाल की म्यूडार पाटी अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त कर चुकी है।<sup>३</sup> यहाँ फूलों की दो सौ से अधिक किस्में घुनी जा चुकी हैं।

वस्तुतः, यहाँ के बर्फ स ढके ढालू पर्वत दूर दूर तक फैले हुए पयार और बुग्याल हरे भरे चीड़, देवदारु बाँज, और बुर्राँस व सुरभ्य वन उनकी छाया में बसे हुए छोटे छोटे गाँव सीढियाँ की भाँति उठते छेत पर्वत की बटि से त्रिपटी लुडकनी भरिताएँ और वनों के एकान्त में चटनी-उतरती राहें—ये सब न जाने किमान्य व कितने विराट सौन्दर्य को अपने में समेट हैं और उनकी अनुभूति न जान लोक मानस और लोक भाषा को कितने रंग से रंग देती है।

१ जॉन स्ट्रैचर इण्डिया उडगण राहुन माह्व्यायन हिनायय परिचय (१), पृ० १० ।

२ वही, पृ० ६ ।

३ दृष्टि रनार्थ की पुनरुक्त 'द टैली भाव वनावपु' ।

### अनुश्रुति और परम्परा

अपन प्राकृतिक सौंदर्य, सरल और आदर्श जीवन और कुछ पाषाण की उत्तरी सीमा पर स्थित होने के कारण प्राचीन काल से ही ऋषि मुनियों का ध्यान हिमालय के इस सड की ओर आकर्षित हुआ। वस्तुतः हिमालय का यह क्षेत्र सदा से भारत का धर्म भावना में भारतभूमि का धर्म अंग रहा है। इसीलिए प्राचीन ग्रंथों में इसके विविध उल्लेख मिलते हैं। विष्णुपुराण में इस क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है। इन दृष्टि से स्कन्दपुराण, विष्णुपुराण, माण्डूकेयपुराण तथा महाभारत विषयक से उल्लेखनीय हैं। श्रीमद्भागवतपुराण पद्मपुराण, दशमस्कन्ध, ब्रह्मवयनपुराण आदि कई पुराण ग्रंथों में केदार और वरुणा क्षेत्र की महत्ता वर्णित हुई है। गडवाल के सम्बन्ध में सबसे अधिक सामग्री मत्स्य स्कन्द पुराण के केदारखंड में मिलती है। गडवाल के केदारखंड नामकरण की व्याख्या विद्वानों ने कई रूप से की है। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह क्षेत्र दलदल वाला रहा होगा। इसी प्रकार छोटे छोटे सीढ़ीनुमा खेत (सडगा केदारा यत्र) होने के कारण भी केदारखंड नाम का सायकता सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु स्कन्दपुराण में महिषासुर की गर्वोत्थि के दारयामि' (किम्कि जल में विदाण रुई ?) की इस नामकरण का आधार कहा गया है। उसमें केदारखंड की तट सीमा भी निर्धारित की गई है।<sup>१</sup> भागवत में नर और नारायण के अवतार का वर्णन और कृष्ण तथा उद्धव का ब्रह्मकाश्रम में तपस्या करने का उल्लेख मिलता है। वस्तुतः जिन नर और नारायण का नमस्कार कर ध्यान करने महाभारत का प्रारम्भ किया है वदना पर्वत वरुणाक्षेत्र में है। वरुणाक्षेत्र के पास एक गुफा स्थित है जो व्यास गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है इसी गुफा में बैठकर व्यास जी ने ग्रन्थ रचना की थी। पुराणों में गडवाल की मुप्रसिद्ध नदी नयाय का उल्लेख किया गया है। कहते हैं, इसी नदी के तट पर व्यास घाट नामक स्थान पर व्यास जी ने तपस्या की थी।

महाभारत का रचयिता हा नहीं, वरन् महाभारत के प्रमुख पात्र हिमालय के एक पुनीत क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। कहते हैं पाण्डवों का जन्म पाण्डुपत्नर में हुआ था। पाण्डुपत्नर का स्थान महाभारत और स्कन्दपुराण दोनों में मिलता है। महाभारत के उद्धरण में कहा गया है कि अर्जुन रात्रसूय यज्ञ के समय कुरुर से घन मीनन अलकापुरी आये थे। उद्धरण में इस सम्बन्ध में आज भी एक सुप्रसिद्ध मान्यता है।

१. स्कन्दपुराण का नाम प्रसिद्ध कर बताया।  
 २. स्कन्दपुराण का नाम प्रसिद्ध कर बताया।  
 ३. स्कन्दपुराण का नाम प्रसिद्ध कर बताया।  
 ४. स्कन्दपुराण का नाम प्रसिद्ध कर बताया।



मिलती है।<sup>१</sup> पुराणों में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि जावन के अंतिम दिना में वे कर्णभूमि में शिवदशन के लिए आये थे किंतु शिव न गोत्र-हत्यारो का मुह न दगन के लिए भस्मे का रूप धारण कर लिया था। पांडवों की भाँति ही कर्ण और दुर्योधन आदि कौरवों के सम्बन्ध में इस क्षेत्र में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कर्ण की त्रिग्विजय में सम्भवतः हिमालय भी सम्मिलित था। कहा जाता है कि कर्ण प्रयाग में अन्नकनदा और पिंडरी नदी के संगम पर कर्ण ने तपस्या की थी। स्कन्दपुराण (वेदारखण्ड अध्याय ८१) के अनुसार दानवीर कर्ण ने नन्दिपर्वत के निकट शिवक्षेत्र में सूर्य भगवान का यज्ञ और शिव की आराधना की थी। त्रिहरी गढ़वाल के रवाई क्षेत्र के कुछ गाँवों में कर्ण के मन्दिर मिलते हैं। इसी क्षेत्र के बाईस गाँवों में दुर्योधन को देवता मानकर पूजा जाता है और पांडवों का नाम लेना वहाँ निषिद्ध है। मन्दिर में दुर्योधन की उर्फ भगवती पीतल की मूर्ति मिलती है। सम्भवतः उस भगवती के पश्चान् दुर्योधन अपने कुछ स्वामिभक्त अनुचरों को लेकर सिंगतूर और फतह पर्वत क्षेत्र में आकर रहने लगा होगा। यह स्थापना महाभारत का कथे के विरोध में जरूर पड़ती है क्योंकि महाभारत युद्ध में दुर्योधन का मारा जाना स्वीकार किया गया है। किंतु काव्य-न्याय से बाहर अगर इस विषय पर सोचा जाय तो यह अराम्भाय विचारणा नहीं। वस्तुतः जिस प्रकार पांडव स्वर्गारोहण के लिए वेदार क्षेत्र में आये थे उसी प्रकार दुर्योधन भी यमद्वार घाटी में जाकर रहने लगा था जब अर्जुनपुत्र पर्वत की तलहटी में स्थित थे। वस्तुतः जिस स्वर्गारोहण पर्वत से पांडव स्वर्ग गए थे वह आज भी गढ़वाल में विद्यमान है।

गढ़वाली लोक गीतों में कृष्ण के सम्बन्ध में विविध प्रसंग मिलते हैं। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें सर्ग में इस बात का उल्लेख है कि वे बद्रीकाश्रम गए थे और उन्होंने उड्डव को भी वहाँ ज्ञान का ज्ञान दिया था।<sup>२</sup> महाभारत के हरिवंश पर्व में कृष्ण ने स्वयं कहा है कि मैं बदरी जाकर पुत्र प्राप्ति का वर प्राप्त करूँगा। यही उन्होंने घणकण नामक यज्ञ को पराजित किया था जिसकी कथा हरिवंश पुराण में मिलती है। घणकण और घणियाल आज भी गढ़वाल में पूजा जाता है और गाँव गाँव में उसके मन्दिर मिलते हैं। गढ़वाल में कृष्ण के सम्बन्ध में यह जनश्रुति मिलती है कि जोवन के अंतिम दिनों में वे टिहरी-गढ़वाल के क्षेत्र में मुख्य धाम में जाकर रहने लगे थे। इस सम्बन्ध में नायक गाथा में कुछ सामग्री उपलब्ध पायी है जिसमें घणकण नामक गुरु मोला और उसके पुत्र सिद्धुवा सिद्धुवा के साथ

१ आश्वि घाट पराजित गीतों में हिमालय की लोक कथा पृ० १३० ।

२ मत्स्यपुराण महाभारत के अष्टमोऽध्याय गणेशपुराण ।

मन्वन्तमन्वन्तर्थात् रत्नानाम्नायने पुत्रि ॥

इच्छया घणकण नाम विधुवा शेष कर्णकण ।

घणकण व कर्णकण कर्णकणकण निरुद्ध ॥

हृषीकेश का बान मिलता है। इसी मंत्र के कारण सप्त मुचेल में हर  
 एतद्वत्तु की जात्रा हाता है और दूर दूर से जात्रायत्री यहा जाकर ज्ञान  
 का धर्म मानते हैं।

मन्त्री बन्ना जाना है कि कृष्ण कृष्ण अनिरुद्ध और वाणासुर की पुत्री उषा  
 का विवाह गडवाल के उपामंड स्वान पर हुआ था। वाणासुर गडवाल के उस क्षेत्र  
 का राजा या जिन नाम रामनू बन्ना जाता है। यही प्राचीन शाण्डिल्यपुर रहा होगा।  
 बना था इन त्रैलोक्य नाम लाने पर और चंद्राने भिन्नो हैं जो शाण्डिल्यपुर  
 नामकरण की साधकता सिद्ध बन्ना है।

कृष्ण कर्मनाम हू राम कर्म राम नामा पञ्चान में जने जन्मभूमि पर  
 विवृत्त। नशरतुड में पञ्चमाला कर्मनाम्य बान करत हू विवृत्ता गया है कि  
 प्राचीन काल में पञ्चमाला नामक ब्राह्मण न बहा जाकर साधना की थी। कहते हैं,  
 उनका तन्त्र्या न मुट्टे हाकर राम रावण-वध के उपगत यहा आय थे।<sup>1</sup> देवप्रयाग  
 मरुनाथ का मूर्तिमिद्ध मन्दिर है। १५०३ ई० क भूकम्प से क्षतिग्रस्त हो जान  
 के कारण शैलराज मिथिला न उसकी मरम्मत करवाइ थी। अनुश्रुति है कि राम  
 श्रीशेष म ना गण्य और श्रीनार कर्मवद्वर स्वान पर उहनि रावण-वध के  
 पान न मुक्त दान क विरू प्रतिदिन एक मन्त्र जपन शिबना को चढ़ाए थे।<sup>2</sup> अनु-  
 श्रुति में उनमें ज्ञान राम क ज्ञान का उ पत्र तथा भिन्नता। यह अवश्य कहा जाता  
 है कि रावण वाणासुर क सुनार तन्त्र्या कर्म आया था। बहु क्षेत्र ज्ञान भी दक्ष  
 नीच क जाया पर दनीना कहलाता है। राम क परम भक्त हनुमान तो सीधे  
 कर्मगुरु पवन का पुत्र है। इन मन्त्रों में यह जन्मभूमि है कि लला विजय के  
 बाद जदलना नीच पर व इन पवन पर चर ज्ञान जार लक्ष्मण यशो तपस्या  
 मन्त्र है। कर्म हू - इमी मन्त्र क विरू प्रति वर एक दूट दूट वालर ललाच्या  
 का पवन का शिबना। जना कर्मा है। इती प्रकार राम क शीशानिरे वा  
 हा शीशानिरे माना जाता है जहाँ मन्त्रों का शक्ति जा जाने पर हनुमान  
 मन्त्रिना ना प।

राम क मन्त्र म यज्ञ कर्मनाम का उन्मूलन हा चुका है। देवप्रयाग के पास  
 ही कर्मनाम का शैल, मीतावनस्यु (मीतावनस्यु) तथा वाणासुर स्वान भी इन  
 मन्त्रिरे विरू का उ पत्र उनीय हैं। मात्रात्म्य शेष के कर्मन्वादी शिव के निवृत्त  
 कर्मनाम कर्मा शिबना कर्मनाम ए मना जाता है विवृत्त मीता जी क  
 पूजा प्रवृत्त का कृते मात्र मा मुदनेत है। मना एक श्रेत म जाता है, विमम  
 म बन्ना हाता है। कर्मनाम क मन्त्र उरा विरू पनाकाता को फट्टान  
 कर्मनाम कर्मा शिबना कर्मनाम विरू का विवृत्त पूजन कर वहाँ पर

१. १५ 'पुनः कर्मनाम' का उन्मूलन १९५०-५१-५२।  
 २. १५, १६-१७।

हाथा से खोदना प्रारम्भ करते हैं। लगभग हाथ भर की गहराई पर उधे एक गिला गिखर जो किसी गभस्थ मन्दिर व ऊपरी कलश की भाँति प्रतीत होता है मिलता है। उसके बाद पूजन और चढावा आरम्भ हो जाता है दोपहर के बाद सीता जी की गुडिया का वेणीबन्धन होता है और उनको ससम्मान गाँव से विना किया जाता है।<sup>१</sup>

रामायण म वाल्मीकि का आथम्य तमसा तट पर बताया गया है जहा सीता वनवास मे रही थी। तमसा नाम की नदी गढ़वाल म भी मिलती है, जिसे स्थानीय लोग तौंस कहते है और जो अंग्रेजी व्यवहार के कारण टोस हो गई है। तमसा वेदारखड म ही थी, इस बात का प्रमाण वेदारखड की सीमा का व्यक्त करन वाला पीछे उद्धृत किया श्लोक है जिसम 'तमसातटत' आदि शब्द आय हैं।<sup>१</sup>

यह विचारणीय है कि उत्तराखण्ड की पौराणिक जनश्रुति पर राम और सीता का उतना प्रभाव नहीं पडा जितना कृष्ण पाण्डव और महादेव पावती का पडा है। वेदारनाथ शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगा म माना जाता है। पावती पवत-क्या थी। जनश्रुति बताती है कि शिव और पावती का परिणय त्रियुगीनारायण म हुआ था। गढ़वाल म पावती नन्दा कहलाती है और कई भागा म उनकी पूजा नन्दा पाती यात्रा उत्सव के रूप मे की जाती है। सम्भवत पितृगह म रहने व कारण ही पावती नन्दा से नन्दा कहलाई होगी। यह भी कहा जाता है कि भवानी ने जिस महिषासुर का मदन किया था वह गढ़वाल के उस स्थान पर वास करता था जिस आज मछडा (महिष खड) कहकर पुकारा जाता है। भस् की बलि क रूप मे प्रचलित अठवाह प्रथा आज भी उस स्मृति को बनाए हुए है। उत्तरवासी म शक्ति रूप अष्टघातु का एक त्रिशूल विद्यमान है जो गणवाल-कुमाऊ का सबसे पुराना पुरातात्विक अवगण माना जाता है। वेदारखड (१४।८३) म इसने सम्बन्ध मे यह उक्ति मिलती है

निगिप्ता यत्र पूव हि सगरे देवतासुरं ।

अद्यापि दृश्यते तत्र शक्तिर्घातुमयी शुभा ॥

इसी प्रकार प्राचीन ऋषि-मुनियों के सम्बन्ध मे भी गढ़वाल म अनेक जन श्रुतियाँ मिलती हैं। उदाहरण के लिए वशिष्ठ, अमरत्य जमत्ग्नि, परशुराम, जहू माकष्टेय नारद आदि का नाम लिमा जा सकता है। स्वर्दपुराण व काशी खड के उत्तराखण्ड म वशिष्ठ के मुह से कहलवाया गया है कि उन्होंने वेदार की ६१ यात्राएँ की थी। वशिष्ठ के पौरोहित्य मे सुदास ने दासराज युद्ध और पूव म जमुना तक की यात्रा की थी, यह ऋग्वेद म वशिष्ठ की उक्ति (७।१८।१६) से स्पष्ट

१ विष्णुत क यदा व लिय दर्शन, अजन्तिल का लय, 'कर्मभूति' सातादिक उ अत्रैव २६६५ का अंक।

२ दखिद, पार टिप्पणी, पीसद ५० १४।



विस्तार बहुत दूर मदानी इलाका तक हुआ। दूसरी जोर उत्तरी सीमा पर निबत (भोट) के गासको से गढवाल को तीव्र सघप भेजना पड़ा। इन सघप ने गढवाल में शौर्य की प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया। जिस प्रकार हिन्दी में वीरगाथाओं का परम्परा को चारणों ने प्रश्रय दिया उसी प्रकार गढवाल के लोक गायकान पवाड़ा की सजना की। ये पवाड़े तिब्बत तथा मदानी इलाका के विरुद्ध हुए सघपों की कहानी मुतात हैं और इन दृष्टि से वे जगत अपना ऐतिहासिक महत्त्व बनाए हुए हैं।

निबत और गढवाल का सघप कत्यूरिया के राज्यकाल में ही प्रारम्भ हुआ गया था। कत्यूरी राजा देवपाल (८१५-५४ ई०) के अभिलेख में निबत का उल्लेख भोट और लासत (ल्हासा ?) नामा महुआ है और उस पर विजय प्राप्त करने का दावा भी मिलता है। यह स्पर्धा पेंवारा के राज्यकाल में उग्र रूप में जाग आई। महाराज मानगाह श्यामगाह महिपतगाह फतेहगाह आदि के राज्यकाल में इन सघपों के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। तिब्बत में दापा का राजा गढवाल का मुख्य प्रतिद्वन्दी था। दत्तात्रेय तक दापा के लोग इन पर आकर लूट मार कर त्रिया करते थे। मानशाह उनको एक बार पराजित करने में सफल हुए थे। फतेह मधि के उपलक्ष्य में गढवाल के राजा को प्रतिवष सवा सर साना और एक चार सींग वाला भेडा भेंट किया जाता था। श्यामगाह ने उममें एक चवरी गाय और बत्ता दी थी। सवि और करण के भुगतान हात रहने पर भी सघप समाप्त नहीं हुआ। महिपतगाह के राज्यकाल में दापा पर आक्रमण करने के लिए रिखोला लादी और माधामिह को भेजा गया था। इन दोनों भट्टों के सम्बन्ध में गढवाल में अनेक वीरगाथाएँ मिलती हैं। गढवाल और तिब्बत के इन सघपों और सम्बन्धों के कारण मध्य पहाड़ी में बित्तन गाँव तिब्बती में आए हागे इस बात का अध्ययन अभी तक होने का है।

मुगलों से गढवाल के क्या सम्बन्ध थे इन विषय में विस्तार से कुछ कहना संभव नहीं। कहा जाता है कि गढवाल के राजाओं को शाह की उपाधि उठाने ही प्रदान की थी। फरिदना में संभवतः गढवाल के विषय में लिखा था 'दिन्दी का दापागाह उसका बड़ा सम्मान करता है। गंगा और यमुना दाना के उदगम उमके राज में हैं।' इस बात के भागवत मिलते हैं कि बर लने के लिए अकबर का ध्यान गढवाल की ओर गया था। १७६६ ई० में हाडविक ने लिखा था अकबर के समय दापागाह ने श्रीनगर के राजा से राजकीय आय और उमके नवका का माँगा। राजा ने लेख के साथ एक दुमले पतले ऊँच की गजन में नवका पंग करत हुए कहा 'हमार दंग की यही सच्ची तावीर है। ऊँचा, नाचा और बहुत गरीब। बादगाह ने मुसकरान हुए बर माँगने का खपाल छोड़ दिया। पृथ्वीपतिगाह के

१ अन्वय परिचय (१), पृ० १३६।

२ उदगम बहा, पृ० १३६।

राजकाल में गार्हपत्य १६५४ ५५ ई० म खनीलुम्ना खा का जाठ हार फौज  
दकर गडवाल भेजा था। बाराज्व क मय स नाकर मुनाना गिका गडवाल  
का राजधानी थीनार पहुँचा था। जब गडवाल क राजा पृथ्वीनरिगाह न मुनाना  
का लीटाना स्वीकार नहीं किया ता औगगरेव न इस घाटी पर टाडना किना।  
वृत्रिहासकार बनियर का कथन है 'औरतद्व थीनार न राजा न एका डरता था  
कि पहाड़ी नगी की बाट की तरह वह एन साम्राज्य का न ल डूव। मुजों  
क इन आक्रमणों की स्मृति खाद-जीतु म टनन न जनक गाता म जाव भी  
नुरमित है।

जनजावन और सांस्कृतिक दृष्टि से भी गडवाल इस समय नैदानों मा स  
असम्बद्ध नहीं रहा। नायविदों और कवार-पदिना न समन्त गडवाल का प्रभावित  
रिया। डॉ० पीताम्बरदत्त बज्जान की सात्रे हना कथन की पृष्टि करती है।  
हिन्दी क महाकवि भूषण का भी इस समय में सम्बन्ध किया जा सकता है। यह  
निश्च है कि भूषण न (मतिराम नीलकंठ और रतन न भी) श्रीनार क राजा  
फतहशाह क राजकाल म गडवाल का भाता की था। रतन कवि का फतहप्रकाश  
गडवाल क इसा राजा फतहशाह का कीर्ति का दातक है। भनवग मिश्र-ब-बुआ न  
गडवाल क श्रीनार का कामीर का श्रीनार माना है। मतिराम क सम्बन्ध म  
उन्होंने दुम्नल-पठ में श्रीनार की कल्पना क गडवाल-नरय फतहशाह का फतह  
गाह दुम्ना कहन की भूषण का है। हान ही म श्री गुरुवीरचिह न जन कवि  
निलित 'फतहप्रकाश' का सम्पादित कर प्रकाशित करवाया है जिससे हिन्दी  
कविता क विकास म गडवाल क योगदान का आभास मिलता है।

गडवाल क इतिहास की दृष्टी से सबसे बड़ी घटना गारजा जाक्रम क रूप म  
घटी जिसका नामना का ग्वानी या आज भी 'गारब्बा' के नाम से स्मरण  
करत है। १७६१ ई० में नगानी मना न गडवाल की बार प्रयाग किया। १८०४  
ई० म जब दहरादून क सुठवुग नामक स्थान पर उसका मुकाबला करत हुए  
महाराजा प्रद्युम्नशाह का प्राधान्य हो या ता गडवाल गारम्बा क हाथ म ला गया।  
तनी अग्रजों न उरका वना दृष्ट गकित का रावन का प्रयत्न किया और १८०५  
ई० में व गडवाल का गारजों से मुक्त करान में ही सफल नहीं हुए बरन् राजा  
उनसल में उसक जाये मा क अधिकारी भी बन बडे। फलत गडवाल दा मागा  
म विनम्र हा गया। गिरा-गडवाल को पँवार बग क गायन से मुक्ति पान के  
लिए शान्ति करनी पही और जब स्वतन्त्रता के पंचान समन्त गडवाल चा  
जिमा में बँटकर भी अपनी एकता का बनाए हुए है।

गडवाल के इस भौगोलिक पार्याप्त और ऐतिहासिक अध्ययन के परिचाय  
यह कहना अनुचित न होगा कि इन सब परिस्थितियों और उपस्थितियों का बड़ा  
१ उरक गुरुवरिचिह, पबेदनाग क मुद्रिका ६० १।

की भाषा और लोक साहित्य पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। आगे के पृष्ठा में गढ़वाली भाषा का विवेचन करते हुए हम इन सम्बन्ध-सूत्रों की व्याख्या करने का प्रयत्न करेंगे। गढ़वाल एक प्रदेश है, किन्तु एक प्रादेशिक इकाई नहीं है—यह भारत का सूक्ष्म रूप है। इसकी भाषा और सस्कृति में कोल, भील, किरात, किन्नर, यक्ष, नाग, खण्ड, ङ्ग, द्रविड, गक गुजर और आय आदि अनेक जातियों की सस्कृति का समावेश है। इससे माय हो, यह भी निर्विवाद सत्य है कि अपूर्व सौन्दर्य, शक्ति, तप-साधन, कारण राज्य लिप्सा आदि अनेक कारणों से समय पर भारत के विभिन्न भागों से यहाँ अनेक जातियाँ आती रही हैं। इसीलिए यह क्षेत्र राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब वगैरह जैसे मुद्दूर प्रदेशों से भी आश्चर्यजनक निकटता का निर्वाह करता प्रतीत होता है। वस्तुतः अगर हम गढ़वाल की भाषा और सस्कृति को रचना चाहता लगता है जैसे वहाँ की भाषा और सस्कृति के ऊपर इतिहास एवं के बाद एक तह जमा करता गया है।

गढ़वाली भाषा में अधिक साहित्य नहीं मिलता। गढ़वाली में लिखित साहित्य की नींव तो बहुत बाद में उनीमवा गताब्दी में पड़ा किन्तु लोक-साहित्य का भंडार वहाँ गताब्दियों से निरन्तर भरता रहा। लोक-साहित्य का रचने वाली लोक की प्रत्येक मनीष मवाक इवाई हृदय से बवि होती है। जिस प्रकार आदिकवि का विषाद स्वयं काव्य बन गया था उसी प्रकार अनजान गढ़वाली नारी के एकान्त क्षणा का विषाद प्रसादमयी वाणी स्वतः गीत बनकर प्रस्फुटित होती है और लोक साहित्य का अपनी गरिमा में भर देती है। गढ़वाल के गायक नए जाति के बांधी लोग तो आधुनिक ही हैं। उसी प्रकार गायत्री पुरोहित देवता को नचाते उनका जागर गायत ए भक्ति भाव के उद्रेक में अनजान ही काव्य की सृष्टि कर जाते हैं। वना में घास लकड़ी काटते हुए युवक युवनियाँ बनायास ही गीतों की रचना कर डालते हैं। भेड़ बकरियाँ चराते हुए छोटे बच्चे बुझीबल बनाते और बूमते हैं और उल्टे सुलान और मन बहलान के लिए बच्चाओ और कुलबधुओं व मुख से मृदु मध लोरियाँ और कथा कहानियाँ न जाने कैसे आप-से आप जन्म ले लेती हैं। और फिर इस प्रकार लोक की अनुभूतियाँ लोकभाषा की ममता प्राप्त कर गायत कथा कहावत बुझीबल आदि विविध रूपों में सिलप ग्रहण कर लोक साहित्य भाषा और सस्कृति के विंगल बट वगैरह का पुष्ट करत मिलते हैं।

मध्य पहाड़ी  
गढवाली





## गढ़वाली बोली

गढ़वाला मध्य पहाड़ी के उत्तगत आती है। ग्रियसन ने भारतीय आय भाषाशा का विभाजन करने हुए मध्य पहाड़ी की स्थिति भीतरी उपभाषा में निर्धारित का है।<sup>१</sup> बाद में डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने ग्रियसन की स्थापना से मतभेद प्रकट करने हुए भारतीय आय भाषाशा का वर्गीकरण बहुत कुछ अपने ढंग में अवश्य किया पर पहाड़ा भाषाशा के सम्बन्ध में उनकी सूझ ग्रियसन से आगे नहीं बढ़ी। उन्होंने भी उन्हें दरद अथवा त्वश प्राप्त से सम्बन्धित बनाकर और मध्यकाल में उन पर राजस्थान की प्राकृत और अपभ्रंस का प्रभाव घोषित कर अपने वक्तव्य की इतिश्री कर दी।<sup>२</sup> तब मद्रिणीय मद्र परम्परा बद्धमूल-सी वपों से हिन्दा के विद्वानों का वाच निवाच रूप में निभाई जा रही है।

ग्रियसन के वर्गीकरण का आधार हानन की स्थापनाए थी।<sup>३</sup> जायुतिक आय भाषाशा के सूक्ष्म अध्ययन परस्चात के इस निष्पत्ति पर पहुँचे थे कि आय भारत में क्रम-क्रम से आये और नवागत आयों के जान के कारण पूवागत आयों को पूर्व दक्षिण और पश्चिम में फटना पडा। ग्रियसन ने इसी सिद्धान्त का उपयोग करते हुए अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया था। डा० चाटुर्ज्या का वर्गीकरण भी गो लिख है और वे बाहरी जोर नातरी उपभाषा का विचार का ममथन नहीं करते। किन्तु स्वयं डा० चाटुर्ज्या ने इस बात को मानते हैं कि भारत में आयों की अनक गायारों प्रजा करती रही और प्रत्येक गात्रा की बोनी की अपनी विशेषताएँ थी।<sup>४</sup> ग्रियसन की धारणा एकदम अविचारणाय नहीं है। गढ़वाल के कुछ विद्वानों ने भी इस आर सफल किया है कि आयों के एक दल न गढ़वाल में होकर प्रवेश किया था और उहोंने वहाँ अपनी बस्तिया भी बसाई थी। ये तथ्य भाषा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण ठहरते हैं। वस्तुतः, मध्य पहाड़ा के वार में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत स्थापनाएँ भ्रामक हैं।

दूसरी बात पहाड़ी भाषाशा के सम्बन्ध में डॉ० चाटुर्ज्या की एक और विचित्र

१ निम्बिकि क सर्वे श्रौत इतिशा प्र० ११, पृ० १००।

२ ओरिजिन एव डेवलपमन्ट आव बैंगाली लैंग्वेज, पृ० ६।

३ स्टन हिन्दी डैगर, भूमिका पृ० ३२।

४ मरनाय श्रयभाषा और हिन्दी, पृ० ०३।

धारणा से सम्बन्धित है। वे पहाड़ी भाषाओं को अपने वर्गीकरण में उदीच्या प्रतीच्या, मध्यदेशीय, दक्षिणात्य और प्राच्या में वहाँ भी स्थान नही देने। केवल अलग से उनका मूलाधार दरद पेशाची या खग उल्लेख कर उस राजस्थानी की ही एक शाखा बताकर एकाध पक्ति में ही अपना निणय द डालते हैं। यही नहीं, वे गुजरा की भाषा को भी जिसमें राजस्थानी और गुजराती को प्रभावित किया (और जिसने उनके अनुसार वाद में गढ़वाली का भी प्रभावित किया) सन्नेह का दृष्टि से दरद ही मानते हैं।

यह स्थापना वास्तव में इस धारणा पर आधारित है कि गढ़वाल के निवासी खग को दरद माना जाता है और प्रागतिहासिक काल में वे हिमालय के उस भाग में बहुत प्रभावशाली रहे हैं जहाँ की भाषा आज काश्मीरी लहदा, गीणा, कोहिस्तानी आदि हैं। हिंदुकुश और भारतीय सीमान्त का भाग दरदिस्तान कहलाता था और वहाँ के निवासियों को पिशाच कहते थे। पेशाची और दरद भाषाओं को लेकर यदि गढ़वाली बोली का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो स्पष्टतः साम्य में बहुत कम आधार मिलेंगे। दरद मूल का वात तो दूर रही, दरद प्रभाव भी गढ़वाली पर उस मात्रा में नहीं है, जिसमें वह उदीच्या पर विद्यमान है। हिमालय में ज्यों ज्यों हम पूव की ओर चले जाते हैं, यह प्रभाव कम दिखाई देता है। इस सत्य को ग्रियसन ने भी स्वीकार किया है और सम्भवतः डॉ० चाटुर्ज्या भी करेंगे। वास्तव में काश्मीर का निकटवर्ती क्षेत्र ही दरद भाषा का केंद्र है मध्य पहाड़ी और नेपाली उससे बहुत कम प्रभावित हुई है। दरद भाषाओं की ध्वन्यात्मक विनोपताएँ उनमें नहीं प्राप्त होती। हाँ पश्चिमी पहाड़ी पर अवश्य दरद प्रभाव है।

खग का प्रसार हिमालय में हिंदुकुश में नेपाल तक था। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु मध्य और पूर्वी हिमालय में वे उतने प्रभावशाली नहीं रहे जितने कि पश्चिम में। यदि सभी पहाड़ी भाषाओं का मूल दरद या खग ही होता तो उनमें बहुत बड़ी समानता होती। ठीक इसके विपरीत काश्मीरी आदि दरद भाषाएँ मध्य पहाड़ी तथा पूर्वी पहाड़ी से विनिकृत पृथक् अस्तित्व प्रकट करती हैं।

इसी सन्दर्भ में इस धारणा पर भी विचार कर लेना चाहिए कि मध्य पहाड़ी का सम्बन्ध पेशाची से है। ग्रियसन के अनुसार पेशाची का प्रारम्भिक स्थान पश्चिमात्तर क्षेत्र था और सम्भवतः हिमालय तथा हिमालय की तराई का बहुत सा भाग उसमें सम्मिलित था। वयाकरणानुसारेण गोरखेन और पांचालपेशाची के साथ साथ चूलिका पेशाची का भी उल्लेख किया है। किन्तु जहाँ तक पूर्वी और मध्य पहाड़ी का प्रश्न है यह निश्चित है कि उस पर दरद जयन्त्रा पेशाची का प्रभाव नहीं है। उदाहरण के लिए बररधि, हेमचन्द्र से लेकर पुष्पानम देव तक वयाकरणों में

लिखा है कि पँगाची म आदि रहित वर्गों के तृतीय और चतुर्थ वर्णों के स्थान पर प्रथम और द्वितीय वर्ण हा जान है (जस नगर > नकर) किन्तु मध्य पहाड़ी में यह प्रवृत्ति नहीं है। रफ और णकार का लकार और नकार हो जाना, ष्ट स्त का मट सन, ण, ष्य 'य का ञ्ज हा जाना मध्य पहाड़ी म सम्भव नहीं। धातुरूपा म पँगाची म वनमान काल में तिङ् विभक्ति का त का द नहीं हाता—भवति > पगाची फोति, गटवाली > हाट ।

अब रही छग प्राकृत की बात मध्य पहाड़ी के लिए अलग से एक प्राकृत की कल्पना भी धामक है। ऐसा कोई नाम प्राचीन ग्रन्था में नहीं मिलता। उत्तर म बोली जान वाली भाषाआ में पगाची तथा चूलिका पँगाची नाम अवश्य मिलत हैं किन्तु पगाचा उत्तर म हा बोली जाती हो, ऐसी बात न थी। गेपत्रप्य की प्राकृत चंद्रिका म ११ प्रकार की पगाची का उल्लेख मिलता है। राजगखर ने अवन्ती, परियात्र और दशपुर तक को पँगाची का क्षेत्र माना है और लक्ष्मीधर न उसकी सीमा को और आग बढाकर बाहूलीक पाडम कुतल, नेपाल गांधार आदि सुदूर प्रदेश तक विस्तृत कर दिया। एक और बात ध्यान देने योग्य है कि माकण्डेय ने पँगाची क जो तीन भेद गिनाए हैं, उनम एक गौरसेन पगाची भी थी, जो गौरसेनी पर आधारित थी। यदि हम गौरसेनी का दूतना व्यापक रूप स्वीकार कर लें कि उमका प्रसार हिमालय तक सम्भव मान लें तो वहाँ गौरसेन प्राकृत क किसी रूप की कल्पना अवश्य की जा सकती है। किन्तु प्रत्येक मध्य भारतीय आय भाषाओ और विभाषाओ के लिए पृथक् पृथक् पूर्ववर्ती प्राकृत या अपभ्रंश की अतिवाय रूप से कल्पना करना मुक्तिसंगत नहा जान पडता। ऐसा अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि गौरसेन पगाची के समान ही गौरसेनी का काई और पवतीय रूप भी रहा होगा। वास्तव म मध्य और पूर्वी पहाड़ी का मूल काई छग दरद या पगाची प्राकृत नहा है। व स्पष्टत गौरसेनी स सम्बन्धित हैं। मध्य पहाड़ी की मूल भित्ति गौरसेनी की है। उम पर बाह्य प्रभाव पडे हैं यह सहसा अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु व प्रभाव इनने निणायक नहीं हैं कि मध्य पहाड़ी को भारतीय आयभाषाआ से विलग मान लिया जाए। स्वयं त्रियसन ने, जिनके मामले लक्ष और दरद मूल का बात ही मुख्य थी, मध्य पहाड़ी के सम्बन्ध म इस सत्य को हल्के ढंग से स्वीकार किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आधुनिक आय भाषाआ का स्तिनि निर्देशक पट्ट उम बात का प्रमाण है। त्रियसन द्वारा प्रतिपादित दरद मूल का विचार फिर भा प्रचलित रहा। मौमाय्य की बात है कि जज हिन्दी के विद्वानों न इस पर मौलिक ढंग से विचार करना प्राग्भ कर दिया है और व पहाणी भाषाआ का गौरसेनी से प्रभूत मानन लग हैं। इस दृष्टि से डॉ० पारेड्र वना क विचार विगय रूप स महत्वपूर्ण हैं। उहान पहाड़ी भाषाआ का

सम्बन्ध गौरसेनी अपभ्रंश से निर्धारित किया है।<sup>१</sup> यही नहीं, ब्रजभाषा का अध्ययन करते हुए उन्होंने पहाड़ी के साथ उसके साम्य के अनेक उल्लेख भी किए हैं।<sup>२</sup> डा० उदयनारायण तिवारी ने भी उस गौरसेनी से ही प्रसूत माना है।<sup>३</sup>

पर ये स्वीकृतियाँ इतने धीमे स्वर में यक्त की गई हैं कि डा० चाटुर्ज्या द्वारा उत्पन्न भ्रांति ज्या की त्या बनी रही। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खग और दरद भी आय य। उनकी भाषा भी आयों से मिलती-जुलती रही होगी, किन्तु भारत में उस भाषा ने पश्चिमोत्तर में जो रूप धारण किया उसका मध्य पहाड़ी से कोई साम्य नहीं। वस खग या दरद लोग पजाब और बंगाल तक भी फले, पर पजाबी और बंगला दरद भाषाएँ नहीं हैं। उसी प्रकार चाहे मध्य पहाड़ी क्षेत्र के लोगो को हम हठपूर्वक खग ही मानें, किन्तु उनकी भाषा खस या दरद वदापि नहीं। वह गौरसेना की ही कोई उपभाषा थी, जिसका प्रसार पहाड़ों तक था।

उत्तर भारत की सभी भाषाओं और बोलियाँ का उदगम स्थल मध्यदेश ही है। इन भू-भाग की सीमा का विकास यद्यपि बाद में बड़ गया, किन्तु प्रारम्भ में केवल बुरु पाचाल और हिमालय प्रदेश के लिए ही इस शब्द का प्रयोग होता था।<sup>४</sup> यह प्रदेश अपनी भाषा के लिए सर्वोत्तम माना जाता था। समय की गति के साथ यहाँ की भाषा न केवल छद्म सस्कृत पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि कई रूप ग्रहण किए। दमवी जयवा ग्यारहवीं शती में जाकर आधुनिक भारतीय आय भाषाएँ विकास में आयीं। मध्य पहाड़ी का विकास भी इसी क्रम में हुआ है। उनकी उदभव कोई आकस्मिक स्फोट नहीं है बरन् वैदिक भाषा से गौरसेना अपभ्रंश तक की सारी परम्परा उसमें समाहित है।

पीछे कहा जा चुका है कि वैदिक आय गणवाल से अपरिचित न थे। यह प्रदेश सदा से ऋषि मुनियों की दृष्टि में रहता आया है। जनश्रुतियाँ और लोक विश्वासों के आधार पर ऐसे अनेक तपोधनों के नाम गिनाए जा सकते हैं जिन्होंने तपस्या के लिए इस क्षेत्र को चुना था। महाभारत और पुराण में भी इस विषय पर विस्तृत सामग्री उपलब्ध है। बौद्धकाल में चुल्ल हिमवत ख्यात प्रदेशों में से था और बौद्धों का उम पर कम प्रभाव न था। वस्तुतः प्राचीन आय भाषा से गणवाल का सम्बन्धित होना कोई अस्वाभाविक और आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है। आज भी गढ़वाल की बाली में अनेक ऐसे गण उपलब्ध हैं जो वैदिक हैं और जिनका प्रयोग हिंदी अथवा भारत की किसी अन्य भाषा में प्रचलित नहीं है। वास्तव में उत्तर की मौखिक भाषा सस्कृत के बहुत निकट थी और बहुत दूर तक भी वह उस

१ डॉ० धारद्वरना हिन्दी भाषा का इतिहास पृ० ४८ ।

२ डॉ० धारद्वरना अज्ञान ।

३ डॉ० उदयनारायण तिवारी भाषाशास्त्र प्रारम्भिक पृ० १७१ ।

४ डॉ० धारद्वरना हिन्दी भाषा का इतिहास पृ० १ ।

परम्परा का निभानी रही।

भारतवासी आदिवासी काल में जब उनके उन भाषाओं का विकास हुआ, तब पहाड़ों में उसका कौन-सा रूप विद्यमान था, यह बताने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है। किन्तु इतना स्पष्ट है कि प्राकृत भाषाएँ जिस घनिष्टता के साथ बहिक बालियाँ न सम्बन्धित रहीं। उसी सम्बन्ध का निर्वाह उन्होंने अपना और मध्य भारतीय आदि भाषाओं के साथ भी किया है। यद्यपि प्राकृत भाषा का मूल में मसूदा के समान और बोलियाँ भी रची हैं फिर भी मसूदा का दाय प्राकृत भाषाओं का ही मिला और प्राकृत का उसकी परवर्ती भाषाओं को। गडवाली बाली में भी प्राकृत और अपभ्रंश का दाय बहुत स्पष्ट है। प्राकृत ध्वनि रूप-परिवर्तन क्रिया तथा आदि में उन आदि भाषाओं का प्रभावता या सकृता है।

सभी आधुनिक भारतीय आदि भाषाओं का नाति अपभ्रंश गडवाली की जनता है। छन्दे गणना के बाद मध्यकालीन आदि भाषा का विकास के तृतीय चरण में अपभ्रंश का उदय माना जाता है। अपभ्रंश में बहल गारमती अपभ्रंश का ही पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। इसलिए गौरवनी अपभ्रंश से निम्न भाषा बालन वाले सम्बन्ध की साथ भाषाओं के सम्बन्ध में विचार करना मरल नहीं है। किन्तु गडवाल के सम्बन्ध में यह कठिनाई नहीं है। भरत मुनि के कथन के अनुसार हिमवत सिन्धु और सौवीर में उकार बहुला भाषा का प्रयोग होता था। विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि यह उकार-बहुला भाषा अपभ्रंश थी। एसा प्रतीत होता है कि हिमवत सिन्धु सौवीर प्रदेश का आरम्भिक अपभ्रंश का क्षेत्र था। डा० नामवरसिंह की व्याख्या के अनुसार तीसरी गणना की में जो परिवर्तन के बाना थी, वही अपभ्रंश विकसित होने लगे मध्यम और परिवर्तनी भारत तक फैल गई। इस सब का मनचन इस प्रकार किया जाना है कि अपभ्रंश का आरम्भिक गिरा अबका भाग बाधा कहा गया है। भाग नाति के ला विधान में बड़े प्रभावगाना रहे हैं। गडवाल के सम्बन्ध में हम उनकी चचा पीछे कर जाएँ हैं। भाग का सम्बन्ध पाताल कहा गया है जो काश्मीर के पादशेखर नाम बताया जाता है। आनीर जाति का प्रचार मसूदा उत्तर भारत में महत्त्वपूर्ण रहा है। आनीर मसूदा बाहर से आयी हुई जाति थी। इसलिए प्राचीन काल में उनका सम्बन्ध गुरु और मसूदा के रूप में हुआ है। एक समय था जब कि आनीर उन में नेपाल तक और दक्षिण में गुजरात महाराष्ट्र और मौराष्ट्र तक दूर दूर तक फैल गए थे। इस अवस्था में आनीर के नाम से उनके बालियाँ और विनायाओं का प्रचलन आदिचमकनक नहीं। गुजरात के कई क्षेत्रों में अहीरी

१ दिग्दर्शक उम्बरारथ उद्गात् मनातिना ।

२ उकार बहुला उपनिषद् भाषा प्रयोगेत् ॥ (संस्कृतम्)

३ डा० नामवरसिंह हिन्दी के विधान में अपभ्रंश का भाग, पृ० २५ ।

स्मिय यह भी कहते हैं कि गुजर (राजपूत पवार, सोलकी चौहान, प्रतिहार) नवी दसवीं शताब्दी में फिर हिमालय में फैल गए। इस प्रकार का जो कारण बंदे देते हैं वह बिलकुल धोखा और असंगत लगता है। ग्रियसन ने स्मिय की बात को लेकर यह प्रस्थापना की कि राजस्थान का भाषा रूप में उपाजित करने के पश्चात् गुजर हिमालय की ओर उमुख हुए। इस कथन में कोई तथ्य नहीं है। राजस्थानी और पहाड़ी भाषाओं के बीच जो साम्य दिखाई देता है उसका कारण गुजरात का राजस्थान से हिमालय में जाना नहीं है बल्कि उनका—एक ही जाति का—हिमालय, गुजरात महाराष्ट्र राजस्थान आदि में फैल जाना है। स्पष्टतः इस साम्य का कारण गुजर जाति और उसका पश्चिम से पूर्व और दक्षिण की ओर प्रसार मात्र कहलाया जा सकता है।

इन तथ्यों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि गढ़वाली और राजस्थानी में कुछ समानताएँ हैं। इन समानताओं का उल्लेख करते हुए मेरी पुस्तक 'गढ़वाली भाषा की भूमिका में डा० भोलाशंकर व्यास ने लिखा है

इन समानताओं में पहली समानता ध्वन्यात्मक है। राजस्थानी तथा गढ़वाली दोनों में, उदात्त ध्वनियाँ समानतः पायी जाती हैं। यद्यपि उच्च ध्वनि परिनिष्ठित एक वक्ष्य खड़ी बोली में भी पायी जाती है किंतु वहाँ यह उच्चिष्ठ मूष्य (प्रतिबद्धित) 'ड' का ही ध्वन्यग (ऐलाफोन) है स्वतंत्र ध्वनि (फोनीम) नहीं। राजस्थानी की भाँति गढ़वाली में भी 'ड' तथा 'ळ' स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं यद्यपि यक्ष्य स्वर मूष्य तथा पदांत में ही पायी जाती हैं पदांत में नहीं। ठीक यही बात ध्वनि के विषय में कही जा सकती है। यह भी इन दोनों बोलियों में परिनिष्ठित खड़ी बोली की तरह न का ध्वन्यग नहीं है तथा यह ध्वनि वक्ष्य खड़ी बोली तक में पायी जाती है। ऐसा जान पड़ता है भारत के नए में हम पहाड़ी प्रायः संचलित खड़ी बोली के मूल प्रायः पंजाबी प्रदेश राजस्थानी, गुजराती, मराठी भाषी प्रदेशों का उस वग में विभक्त करना होगा जहाँ स्वरमध्य ध्वनि सुरक्षित रहा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि गढ़वाली ध्वनि संघटना व्रज कानीजी या कुशी की अपेक्षा राजस्थानी गुजराती मराठी के अधिक समीप है इसे कोई इन्कार नहीं करेगा। राजस्थानी भाषा से गढ़वाली में एक महत्त्वपूर्ण समानता यह पायी जाती है कि यहाँ पदमध्य महाप्राण ध्वनि की प्राणता प्रायः पदांत में व्यंजन में अन्तर्भूत हो जाती है। यदि पदांत में सहाय अल्प प्राण ध्वनि है तो उस महाप्राण न बनाते हुए भी पदमध्य महाप्राण ध्वनि की प्राणता का ताप देखा जाता है। इस प्रक्रिया से ही सम्बद्ध यह प्रक्रिया है, जहाँ पदमध्य के लोप के कारण स्थान पर आदवगित या कठनातिक रूप का उच्चारण पाया जाता है। पूर्वी राजस्थानी में पदांत की एक अल्प समानता पदांत में ध्वनि का सानुनासिक उच्चारण है। पूर्वी राजस्थानी में प्रायः पदांत अनुनासिक व्यंजन के बाद ध्वनि होने पर

उसका उच्चारण कें पाया जाता है—नानू, मामू दागू आदि। इसी तरह उसम किया व तुमत्त रूप प्रायः णू वाले पाए जाते हैं जिनका गुजराती रूप णू है। गढ़वाली में भाष्यही बोली हिन्दी की तरह ही य रूप न णू वाले ही हैं ब्रज की तरह बोली नहीं, जसे पूर्वी राजस्थानी पढ़णू पढ़सी' (पढ़ना पड़ेगा)। लेकिन जहाँ छड़ी बोली में तुमत्त रूप आकारान्त है, वहाँ गढ़वाली में व सम्भवत ओकारान्त थ, जो अनुनासिक व्यंजन के प्रभाव से कें कारांत हो गये हैं।

“राजस्थानी तथा गढ़वाली की पत्रचनामय सघटन में भी कुछ समानताएँ देखी जा सकती हैं, किन्तु गढ़वाली पर अवातर प्रभाव ज्यादा दिखाई पड़ते हैं। राजस्थानी की तरह यहाँ भी कर्ता म न, कर्म म कू, करण म से सम्प्रदान म क, ताई (गड० तई), वू अपादान म से ले, सम्बन्ध म कौ, का, की, रो (गड० ह), रा री, अधिकरण, भा पाए जाते हैं, किन्तु गढ़वाली में कई दूसरे परसग भी हैं, जो वहाँ नहीं मिलते। पूर्वी राजस्थानी मता न (हि० ने) कर्ता कर्म तथा सम्प्रदान तीनों में पाया जाता है।

‘न (गड० न) परसग का कम तथा सम्प्रदानगत प्रसार यहाँ नहीं देखा जाता, किन्तु डॉ० चातक ने इसका करण तथा अपादान वाला प्रयोग संकेतित किया है। राजस्थानी की तरह गढ़वाली के सबल सना तु० रूप ओकारान्त हैं, जिनके व० व० विकारा रूपों में मामोन, चाचौन भायौन जैसे रूपों का सबल डा० चातक ने किया है। राजस्थानी में य विकारी रूप दुहर पाए जाते हैं, माधारण रूप मामान अवधारणायक विगिष्ट रूप मामान काशान, भायान।

‘राजस्थानी तथा गढ़वाली की अय समानता भविष्यदर्थ ल वाले प्रमाण हैं। राजस्थानी में गढ़वाली की तरह लो का कर्मवाच्य वाला रूप नहीं पाया जाता। दोना भापाआ म सहायक प्रिया छ पायी जाती है। भूतकानिक वृद्धत वाले रूप दाना म घो (व० व० या) प्रत्यय वाले पाये जाते हैं राज० गड० चल्पो, गया (ग्वा)।’

इस साम्य से प्रियसन के इस कथन का समर्थन नहीं होता कि गढ़वाली राजस्थानी की ही एक शाखा है। स्वयं प्रियसन इस बात को स्वीकार किए बिना न रहे कि गढ़वाली अय पहाड़ी भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी के निकट है। गढ़वाली और राजस्थानी में साम्य के जो आधार हैं वे मराठी, गुजराती, बंगला से भी सम्बन्धित हैं।

उदाहरण के लिए, छ क्रिया को लिया जा सकता है। यह क्रिया राजस्थानी के अतिरिक्त दरभंगा और कई पूर्वी बोलियाँ में भी मिलती है। उसी प्रकार भूत और भविष्यत् काल का लो प्रत्यय मध्य पहाड़ी और राजस्थानी के अतिरिक्त भोजपुरी बंगला, असमो, उडिया, मैथिली, मराठी, गुजराती में भी उपलब्ध है। सम्बन्ध कारक क रो, रा, री प्रत्यय गढ़वाली की रवाँली बोली में भी मिलते हैं।



इसी तरह वे राजस्थानी में ही नहीं बगला में भी मिलते हैं। न का ण ही जाना बवल गढ़वाली और राजस्थानी में ही सम्भव नहीं, अन्य भाषाओं में भी ऐसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। गढ़वाली की छ छत्रि राजस्थानी व समान अक्षर भी मिलती है। स का ह में परिवर्तन गड़वाल व एक क्षय विशेष में प्रचलित है किंतु यह परिवर्तन पूर्वी बगला, सिंधी, पंजाबी लहन्दा, अरुमी, मराठी और पछाहा हिन्दी में भी सम्भव है।

वास्तव में राजस्थानी का उत्पन्न जिस गौरवता अपभ्रंश में छोड़ा जाता है, उसी का एक पवतीय रूप मध्य पहाड़ी का स्वर भी है। दूसरी बात यह है कि हूण गऊ गुजर आदि लामा व महबाम और प्रसार ने इन क्षयों की भाषाओं को कुछ सम्मानता प्रदान की है। किंतु इसी जाघार पर उन भाषाओं को एक दूसरे की भाषा कहना उनके भाव्य अर्थात् करना होगा। अगर गुजर आदि राजस्थानी का उपाजित करने व पश्चात् हिमालय मध्य हाते तब ता राजस्थानी और पहाड़ी भाषाओं में काइ मौलिक अंतर न होना चाहिए था। फिर एक और प्रश्न उठता है कि अगर पहाड़ी की उत्पत्ति राजस्थानी घोलन वाले लोग व हिमालय में प्रवेश करने व बाद हुआ तो उस समय वहाँ के लोग कौन सी भाषा बोलते थे? और क्या राजस्थानी भाषी लोग तुक इतने प्रभावशाली थे कि वे अपनी भाषा का वहाँ के मूल निवासियों पर दाप करें? ग्रियसन न सम्भवतः इस दृष्टि से विचार करना आवश्यक नहीं समझता। पूर्वी पहाड़ी व मध्य में मिलते हुए भी उपाजित भूल की है। व नपाती व विराम को गारखा-आक्रमण से सम्बद्ध करते हैं अर्थात् मध्य यह है कि नेपाली का जो उमस बहुत पहन हो चुका था। इसी प्रकार हम अधिक हास्यास्पद और कोई बल्पना नहीं हासिली कि मुसलमानों व भय से मदानवी भाषा से राजस्थानीकरण व लिए पहाड़ों में चले आए और वहाँ प्रान्त गए। प्रश्न यह है कि भागकर आए हुए लोग (1) क्या इतनी बड़ी सख्या में आए थे कि वे किसी प्रान्त को भाषा का प्रभावित कर सकें? ताक परम्परा और स्तिहास में इसके लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं।

मराठी यह विश्वास है कि छ (सहायक क्रिया) और स (प्रत्यययुक्त क्रिया) वर्गीय भाषाएँ किसी समय जगत मूल में एक ही रहीं अथवा वे किसी एक स्तर पर एक ही जाति (उत्पत्ति गऊ सार आदि) के लामा और उनके प्रसार से सम्बन्धित रहीं हैं। हम दृष्टि से मध्य पहाड़ों ववल राजस्थानी से ही नहीं, बरन् गुजराती मराठी बगला पंजाबी खसड़ी भोजपुरी आदि से भी थोड़ा बहुत एक-दूसरे और रूपांतर साम्य प्रकट करता है। किंतु इन साम्य का कारण बवल यह नहीं है कि गुजरात माराष्ट्र या पंजाब से आकर लाम मध्य पहाड़ी क्षेत्र में आकर बसे हैं बरन् यह है कि सब सामान्य जनसंख्या तत्व सभी क्षेत्रों में भाषा व विराम व लिए समान रूप से सन्निध रहें हैं। यही कारण है कि मध्य

पनाडा पर एक बार मागधी और अघ मागधी का साधारण प्रभाव दृष्टिगत होना है दूसरी बार वर रातस्थानी, गुजराता, पंजाबी और हिन्दी अथवा उनकी बातिया से निरुद्ध का सम्बन्ध निर्वाह करती दीसती है।

इसी मन्दन म मध्य पहाड़ी और हिन्दी के पारस्परिक सम्बन्ध-सूत्र पर भी विचार कर लेना उचित होगा। हिन्दी के कुछ विद्वान् पहाड़ी भाषाओं का हिन्दी की बातिया में नहीं गिनते। उनके अनुसार वे स्वतंत्र विभाषाएँ हैं और इसीलिए वे उन्हीं हिन्दी के प्रकृत क्षेत्र में मानने पर प्रश्न बिल्कुल लगात हैं। इस तरह का बहिष्कार भाषा विज्ञान के नाम पर बिलकुल अनुचित ठहरता है। यदि इस तरह मोचन लगे तो खड़ी बोली तक ही हिन्दी सामिल रह जायती और परिनिष्ठित हिन्दी और उसकी तथाकथित बहुत-सी बोलिया में सम्बन्ध-सूत्र निकालना कठिन हो जायता। प्रश्न हो सकता है कि हिन्दी और ब्रज, अवधी भोजपुरी, मैथिली आदि में कौन-सा सम्बन्ध-सूत्र है जिसके कारण उन्हें हिन्दी की बोली और जिसके अभाव में पहाड़ी भाषाओं को हिन्दी की बोलियों में भिन्न कहा जाता है? पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी में कौन-सा साम्य है? निरवयव भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से वे भी परिनिष्ठित हिन्दी से उतनी ही स्वतंत्र हैं जितनी कि पहाड़ी। सब यह है कि सम्बन्ध-सूत्र का खोजने के लिए केवल भाषा-वैज्ञानिक आधार ही पर्याप्त नहीं है। भाषा वैज्ञानिक आधार के अनिश्चित सांस्कृतिक तथा जातीय एकता तथा साहित्य के प्रयोग की भाषा का भी ध्यान रखना आवश्यक है। हिन्दी पहाड़ी क्षेत्रों के साहित्य की भाषा है। मध्यकाल में यह गौरव ब्रजभाषा का प्राप्त था। इसीलिए गणवाल के मुद्रनिष्ठ चित्रकार मोताराम न ब्रज में ही काव्य रचना की थी। आज भी गणवाल के घर घर में हिन्दी बोली और समझी जाती है। एकता का दूसरा सूत्र सांस्कृतिक पहलू है। हिमालय सदा से मध्यदेश की सांस्कृतिक चेतना में समाहित रहा है। इसीलिए जब हम 'हिन्दी' नाम लेते हैं तो ब्रज, बुन्देली, अवधी भोजपुरी, मैथिली मालवी गणवाला, कुमाऊँनी आदि अनेक बोलियाँ का ध्यान स्वतः ही हो जाता है।

वस्तुतः गणवाला हिन्दी के बहुत निकट है। वर्षों पहले केलाचन इस तथ्य का स्वीकार किया था। 'महारकर आदि भी गणवाली का 'पहाड़ी हिन्दी' मानते हैं। स्वयं त्रिपुरार उक्त हिन्दी के सम्बन्धित जाना है।' यह सत्य है कि गणवाला आदि मध्य गणधी को विभाषाओं में दुर्लभगी विशेषताएँ हैं जो हिन्दी तथा उनकी विभाषाओं में नहीं मिलती किन्तु फिर भी समानमूल के कारण वे हिन्दी के वस्तु निरुद्ध की बरतें हैं।

१ नवीन मध्यम-संस्कृत-दीर्घ १३ पृष्ठ ६६।

२ निरुद्ध-१, पृष्ठ ६६, भाग ६, पृष्ठ ३३१।

## शब्दकोष

यह सभी बोलिया और भाषाओं के लिए सत्य है कि उनमें शब्द कई द्वारा से प्रवेश करते हैं। जहाँ तक गढ़वाली बोली का सम्बन्ध है, उसके लिए यह कथन और भी सायक है क्योंकि गढ़वाल में अनेक जातियों का आवास रहा है, जिन्होंने समय-समय पर प्रवेश कर गढ़वाली को अपना शब्द समूह प्रदान किया है। राजनतिक सम्भव ने भी कुछ नये शब्द प्रदान किए। इस दृष्टि से गढ़वाली बोली का शब्द समूह निम्नलिखित स्रोतों से सम्बन्धित है और उसका स्थूल विभाजन इस प्रकार सम्भव है

- (क) तत्सम शब्द
- (ख) तद्भव शब्द
- (ग) अनाथ भाषाओं के शब्द
- (घ) आधुनिक बोलिया से उधार लिए हुए शब्द
- (ङ) शैली शब्द
- (च) विदेशी शब्द

विभिन्न स्रोतों से प्राप्त इन शब्दों को गढ़वाली बोली ने अपने ध्वनि और रूप तत्त्व के अनुकूल इस प्रकार पचा लिया है कि वे अब उन्हीं के बन गए हैं। संस्कृत अरबी फारसी तथा अंग्रेजी शब्द इस प्रकार गढ़वाली की प्रकृति में ढले मिलते हैं कि वे विदेशी प्रतीत ही नहीं होते। यहाँ तक कि कई संस्कृत शब्दों में ध्वन्यात्मक परिवर्तन ही नहीं हुए बरन उनमें अथ परिवर्तन के भी अनोरजन दृष्टान्त मिलते हैं।

गढ़वाली में तत्सम शब्दों की अपेक्षा तद्भव शब्द अधिक हैं। फिर भी उनमें असौमिल तत्सम और अथ तत्सम शब्द मिलते हैं। उन सबका विवरण प्रस्तुत करना सम्भव नहीं। यहाँ कुछ विचित्र शब्दों को ही लिया जा रहा है।

आकाश के अर्थ में प्रयुक्त संस्कृत शब्द आकाश गढ़वाली में जया का अर्थ प्रयुक्त होना है। इसके अनिश्चित कुछ शब्द इस प्रकार हैं अन्न अथ, अवस्था अस्त अनि आतुर, आचार, आयु, आकाश, इति, इष्ट, उदार, उत्पान, उदय, उत्तम, अन्तु अण, एकान्त कति, कम, कया, कया, कृपा क्रिया, कठ नण, काना, काल कुण्ड, कल्याण, कुत्त, कथाय, कोण, कुशल, कुवटुर, यद,

गीत, गोत्र, गौ, गुप्त, गति, धान, चिता, चरण, चूण, छद छाया, छवि, जन्तु, जन, जातक, जार, तस्कर, तल, तन, तप, तरुण, तीथ, तण, भास देग, दुष्ट, दगा, द्वि दया, देह दिशा, दव, धार, धम धातु नित्य, नीति -याय, निद्रा नाग, प्रनीति, पशु प्रताप, पापड, पवत, पित पय, प्रेत, पुण्य पोप, प्रयाण, पातक, फल, फेन, नाड, मान, मास, मन्द, मध्यम मन मति, मौन, मृत्यु, मुख, मुड, माया, मण्डप, मूर्ति, मूल रोप, रेखा, रुचि, रोम, राशि, लख नीला, लोक, लेश, व्यया, वास्तूक, वासना, विचार, वाधा, शील, शीश, शूल श्यालो, सन्नेह, सामध्य, हवन, हत्या, जान आदि।

कुछ शब्दों के मूल अर्थ अर्थ बोलियों में दूसरे रूपों में विकसित हुए हैं किन्तु गढ़वाल में ऐसे कई शब्द अपने मूल सस्कृत अर्थ को सुरक्षित रखे हैं। उदाहरण के लिए रवाली में प्रयुक्त घीण < घणा शब्द को लिया जा सकता है। इसी प्रकार रवाड़ में अपने मूल सस्कृत अर्थ (दया) में प्रयुक्त किया जाता है। इसी प्रकार सस्कृत के 'उत्तर' शब्द को लिया जा सकता है। यह शब्द सस्कृत में उद (ऊपर) में तर प्रत्यय लगाकर ऊपर का अर्थवा 'अधिक ऊंचा' अर्थ व्यक्त करता है। अनेक अर्थों में इसका एक अर्थ अधिक अच्छा भी होता है। गढ़वाली में यह शब्द इस अप्रचलित अर्थ में भी प्रचलित है, जैसे, तू मैं से उतर नी छर्द—तू मुझसे बढकर नही। तू मैं से उतर होली स्या राड होया—जा मुझसे अधिक (सुदर) हो, वह विधवा हो जाए। खार द्रोण, प्रस्थ आदि पुराने माप थे जा वैदिककाल में प्रयुक्त होते हैं। गढ़वाली में य खार द्रोण पायो जीर माणो (< मान) रूप में प्रयुक्त होते हैं। तुला के लिए सूळ शब्द प्रयोग में आता है। सख्या सम्बन्धी शब्दों में एक, द्वि दश (एग्यार में एकादश का ए सुरक्षित मिलता है) कति तति, यति (जति) ज्यो के त्या प्रयुक्त होते हैं। काल-सूचक शब्दों में परारि पोर (पस्त), जुग (युग) परसे (परदव) उल्लेखनीय हैं। नात रिशत को 'यक्त करने वाले सभी शब्द सस्कृत के अनु रूप तत्सम या तत्सम रूप में मिलते हैं। इस दृष्टि से श्रावत शब्द विचारणीय है जो गढ़वाली में सस्कृत भावुत्त से भिन्न नहीं है। हृडका गढ़वाल का सुप्रसिद्ध वाद्य है और चाँचर या चाछड एक लोकप्रिय नृत्य। सस्कृत में इनके लिए हृडकक और चचरी या चचरी शब्द उपलब्ध होने हैं। सस्कृत में छट शब्द इच्छाधिक भाव को व्यक्त करता है किन्तु गढ़वाली में उसको अवसर में अनुकूलता के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। गड का सस्कृत में अर्थ होता है—नी अनुकूलता के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। गड का सस्कृत में अर्थ होता है— इसी प्रकार खेती पाती और पशु पालन सम्बन्धी कुछ शब्द लीजिए साट्टी द्रव रूप में बहना। सम्भवत इसी कारण गढ़वाली में नदी को गाड कहते हैं। पाण्डिक साठ प्लिन में पक्ने वाला धान, कौदी कौद्रव पराळ पलाल, पुड पुड, बुतो बुस, आवो आद्रक, दायवो दाद्रक, गाण छाग गढ़वाली—छागभात, सस्कृत छक चकरी भात भवत, भड भेड, खोल खिल—कास्त न की गई जमीन, गति अथवा

गडि (आलसी और मजबूत बल गढ० गनिया, गळ्या), कुटलो कुहानक, कडे  
 वडोल तारळी तकू, कीलो कीलक, कूल कुल्या, छाळ तल्ल, गुवर, ग्वर गुहेर  
 सुगपो गूय, पटुका पटक पडाली प्रणाली, कया, चोखू चोय, मूसो मूय,  
 अगनियाळ आरङ्गघर जादि ।

### तद्भव शब्द

गडवालो म तत्मम, अथतत्मम शब्दा वं समान ही तद्भव शब्दा का बाहुल्य  
 है । जगने के ध्वनि विचार सम्बन्धी अध्याया म ध्वनिया की उत्पत्ति के सद्भव ने  
 तद्भवा की विस्तृत सामग्री उपयोग म लायी गई है । यहाँ केवल कुछ ऐसे तद्भव  
 दिए जा रहे हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र नहीं हुआ है ।

अयत्र > अण्य, अकुर > अगरो, अरण्य > रण, आरणी, अये > आग्ने,  
 अग्निम्बध > औषा जक्षाट > अखोड अमित > अमिध्या, अहगण > हरगण  
 अनुग्र > अवार अगता > आगळ अम्माल > अग्वाळ, अपुनक > जीतो, अचन  
 > ऐंचळ, जटालिका > अटाली आत्तव > वात, आया > इजा, जिपा, पी जावन  
 > औन, उतान > उताणू उत्तधन > अलक्षण, उनिद्र > उणदो उध्व > उबो,  
 उखेर > उखेर उळवाम > उकसासी, उहीपन > उयी, उत्तूल > उरस्यानू  
 ऋत > रिक्क ।

कीनक > कीला कुडल > कुडालो, कुल्या > कूल, कत्यवत > कलेऊ कति  
 > कीली श्रोड > कोळ कल्याहार > कत्यार, कूचिका > कजी कुहेलिका >  
 कुरदी कोनानाति > कूजापो, कुठिन > खुडा कृति > कतडा, कत्यवत > कतऊ  
 वाळक > काठगो कुटी > कूडी कणदार > कद्रूड कठमाला > कठवालो, कौष्ठा  
 गार > कौठार कनीपस > काणसो कूच > कुछना कठ > कौठी, कुवसट >  
 कुखडो, कुणि > काख, कर्णाधार > धुनार, कुतत > कौळ कुब्जक > कूजा कृति  
 > कनहा रण > कास, घनस्थान > खल्याण ग्रमि > गाँठ गोण्ड > गोठ गुरक  
 > गग गोविष्टक > गवौंशो गास्वामी > गोख गजर > गजार गगर > गगर  
 ग्राहक > गाय, धूर > धुगू घूटक > घुडो घरट्ट घट्ट > घट्ट ।

चत्वारिमा > चौरी, चतुप > चौय चाग > चाखू चीनव > चाणा, चिरा  
 मितन > चिरैरू छत्र > छपर छाद्य > छाया चाना > भन जना > भना  
 जोवन > ग्युणा गीर > गू जाण्य > जा गे जभीर > चैमर जिस्वर > जितार ।

गुमर > तोयना, तप > ताता ताप > ता तियि > नीध तपा > गीस दुग्गल  
 > गुन्ना दात्रिना > गथा दम > तवा दाग्मि अथवादाग्मि > दातिमो द्रोण  
 > शण दहना > डेना दूर > धना, दुग्गिना > ध्याग दरर > दरदरो, पापट्टे  
 > पाकूर धम्मिन > धमली नतहि > नितर, पण्ड > नाटी नास्ति > हाति,  
 निमित्त > निन ननाद् > गाट्ट तवनीन > नीण, नीधो > य गग्गिना नन्दनी >

नौनी, नवान > नवाण नगर > नल > नारा। नबुली नुपूर > पूरी निम्बुदुर > निमी, नेष्ट > नटी, निम्तार > निस्तार।

प्रवाल > पीला प्रस्य > पायो, प्रावृत > पता, प्रवृति > पाका, पियक > पीना प्राघुण > पीपा पुटक > पुटका, प्रपाली > पडाली, पट्ट > पाट पटक > पट्टा पिष्टान > पिनान। परस्व > परम, पम् > पैया परारि > परार पदन > पौर, प्रालय > पाळा पलाल > पराळ प्रकाळ > पाखडा, पत्रक > पातगी पक्ष > पायो प्रग्गन > प्रपा पन्नाण > पन्वाण प्राकार > पगार, पयक > पारी पन्चरात्रि > पगरात पात > फामु पिड > पीडा भयवला > भान भूमि > भुइ मृत्य > मूर्त्या, नवत > नात भानवधू > भौ बौ भातजाया > भौन मारिप > मारछो, मान > माणो, मुदा > मुदडो मड > माड, मसि > माना मुत्तार > मुगरो, मारिका मारी या मधुकरी > म्वारी मस्तक > मये।

यत्र > यत्य, यत्र > जातो जात्रा यक्ष > जाख, यष्टि > छटटी लडटा। यमत्त > जौल्या, यानि > जान युवती > जार् याकत > जौत्ता यवनाल > जानला यमराज > ज्युरा रद्र > र्द रमणी > रण रुपमि > रुम्मी रहस > रोम। मोहित > लोह साला > लाळो, लिप्तक > लिच्छक सवण > लोण, लसीका > लीमू, लिखा > लीखा लसक, लग > लीगा, वलावद > वलद वधू > वीऊ, वलयकार > बलार, विस, विष्ट > विटट, विगुण् + न या विपममाण > विमूण वलयकार वठ > बड बननीर > भगजीर, विमण > व्याम्न विकाल या विगतवला > व्याले, वात > रथो वणिज > वणज, व्यक्ति > बस, बलकल > बवल, विमान > व्याणो वाट > वाट, दाल > सिल्ला, गत्य > सलन, नेप > छिपाण शीतल > सळू शरीर > शरील, गुचि > मूच स्वामिनी > स्वैण शिवाण > मिताणू सिंह > गिऊ म्यूप > मुप—डा मोमा > सू सच > सणो, स्वात > संत सकाण > मागडो मुरा > सुर सपुट > सापुडो सरिसप > सरसू सीवानी > स्वर्णा स्तोत्र > याक, स्थौर > थार + डा स्तिमित > तीदो हिता > हीम क्षत्रपात > छिनरपाल क्षार > क्षारा, रक्षा > रामो, क्षुधा > छुधा, क्षुच > खुद।

य कुछ ही तम्भव शब्द हैं। हिंदी में प्रयुक्त अधिकांश तम्भव शब्द गटवानी म भी प्रयुक्त हात हैं। उन्हीं में सम्मिलित नहीं किया गया है। आठ ध्वनि और रूप तत्त्व पर विचार करत हुए गटवाला मैं व्यवहृत अर्थ तम्भव शब्दों में परिचित होने का भी अवसर मिलेगा। तब यह अनुमान लगाना सरल होगा कि गटवाली में सस्वत की शब्दवली कितनी महत्त्वपूर्ण है। इन तम्भव शब्दों की तुलना प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों से करत पर आश्चर्यजनक समता देखिगाचरहाया है। उदाहरण के लिए प्राकृत और अपभ्रंश के निम्नलिखित शब्दों का किया जा सकता है

प्रा० उम उड गवाला उडवो इस्ता गरिस्ता या राष इति इति इमोन्ते

अञ्जू अञ्जी, जी, जिधा, इजा अल्ल, ओल्ल > आद्रम गढ० झालो, जइ (ज < यदा), तइ (त तदा), गरुअ गरो मउलइ मौलणो, मुविण सिविणो, स्वीणो, धरओल (गहगोली) घिरालो, णत्थि नाथि छूटा, छुहिय (मुघा > छोई), वअल शकण् णैल कत्ति वृत्ति कतडा, जोण्हा (ज्योल्म्ना > जोन), णेउरम यूरो, भडो (भड < भट) देउलम् दूल, अग्गी आग्गी, चूल (चूळा—पहाड की चाटी चूली, जमे पच चूली), गाहा (गा गा करणा), जक्को जाल्ल, तलाअ तलौ, दिट्टी डोट, डिट्टि, धम्मिल धमेली, धोआ धिया भत्तारा भतार, मउड (मौड < मुकुट), राउ रो, सहोअर सो रो जोई < युवती विहाण् घ्याणू माणसो मण्ण, रण्ण रण, राउउ रौळ रिडो रीदो सुत्तो सूतो, सीहांसू अच्चराआछरो, वभो वामो छइल छल नवल्लो नौलो उबी उम्मी वडच्चू करछुलो कल्लोडा लल्ला चउक चौक, जोण लिया ज्वण्डला, भक्करी भक्कोरा, डलो, तांत, पणाल पडालो बहुडि वीडि सुहाली स्वाळी, हट्ट हाट सण सणी, चक्कलक चौकलो कहुव, काद दगावर देसौर अवत्तो घौत, वणो खादो, अज्ज अज्जु अजेज्जा अभीज < अविद्या, खाल खाळ, छुद = सुद < क्षुद, जुत्थ < जौठ < यूथ, चग चगो, भक्कट शक्कड, डिट्टी डोट, दुहिय धोया < दुहिता मत्थ माठो < माट मापडो (मापरो > मात) । गज्जर गजार चडअ चडो, छुच्चु चूचो, जोदअ जोई थोक थोक, धम्मिया धामी, पाहुणअ पौणो युक्क बुक्को, थोक्कस थोक्को, थोक्कड थोक्कया, भिट्टा विट्टो भोलइ भोल, मट्टु माठो, लट्टिआ लट्टी, लुक्कइ लुक्कणू लुचइ लूछणू वन बागो, वट्टु वाटो, विआ अइ घ्याणू विद्याओ घ्याले सन्ना सान आदि ।

वस्तुतः भारतीय आद्यभाषा के मध्यकालीन विवास की लक्षण परम्पराए गढ़वाली में ज्यों की त्यों सुरक्षित मिलती हैं। यद्यपि प्राकृत और अपभ्रंश की ध्वनि और गठन रूपों के समीकरण और ध्वनिलोप आदि की प्रवृत्ति आधुनिक गढ़वाली में अधिक नहीं फिर भी इस प्रकार के लक्षणों का अनेक संख्या में देखा जा सकता है।

### अनार्य भाषाओं के शब्द

यह पीछे कहा जा चुका है कि प्रागतिहासिक युग में गढ़वाल कोल भीत विरान यम, नाग यम आदि जातियाँ संभवचित रहा है। इनमें कई जातियाँ आम्ब्रिक थीं। गढ़वाल के रवाई प्रान्त में हरिचना की एक जाति कोल + टा कहती है। उसी प्रकार भिलगना नाम भील जाति की थार सेत करता है। नंदारखंड में भी हिमाचल में भीला का उल्लेख किया गया है। 'येछा भीलों का एक जाति है। गढ़वाल में येछा जाति के लोग आज भी मिलते हैं। इतक अनिश्चित

गढ़वाली वीर गीता में मालों का उल्लेख वीर पुरुषों के रूप में आता है। यह शब्द मूल रूप में मल्ल है। मल्ला का उल्लेख हमें बौद्धकाल में मिलता है। व सम्भवतः गोकुल और मूलतः कोन या मुवा का के थे।<sup>१</sup> कहा जाता है कि आर्यों के आक्रमण के पूर्व यह जगति उत्तर भारत में गया जमुना के दोआब और हिमालय प्रदेश में निवास करती थी।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि आस्ट्रिक लोगो ने आस्ट्रिक कृषि प्रणाली को विकसित किया था। 'गोले' की तकड़ी के लिए उन्होंने खण्ड, लड़, लिड गन्ना का आविष्कार किया था। संस्कृत में हून के लिए लिंगल गन्ना का प्रयोग होता है। गढ़वाली में इसी अर्थ में एक संयुक्त शब्द हल-नागल तथा लुगना शब्द प्रचलित है। अन्य आस्ट्रिक मूल वाले शब्दों में कपाळ (मुड़ा कपार मोनखर बबाल) चडो (मुड़ा चाडा) बोई बई (मुड़ा बाइर) भेंटणू, भेरू (आस्ट्रिक भेरो), लिंग, लाग, कामळा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आस्ट्रिक जाति पंजाब और हिमालय तक फैली थी और नदियाँ को उपयुक्त में रहती थी। नदियाँ के लिए गंगा गन्ना का प्रयोग इन्हा की दन है। गढ़वान में अनेक गंगाएँ हैं और वहाँ यह एक नदी वाचक शब्द मात्र है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि ये आर्यों के भय से पहाड़ों की ओर भाग हा। इसीलिए आस्ट्रिक बोलियाँ हिमालय के महारे महार पश्चिमोत्तर तक फैलीं।<sup>१</sup>

इनके अतिरिक्त दूसरी जातियाँ में किरात बहुत प्रमुख रहे हैं। 'कुमारसम्भव' में उनका उल्लेख हिमालय के निवासियों के रूप में हुआ है। महाभारत में भी हिमालय का किरात लोग, कुलिंद आदि का आवास बताया गया है।<sup>१</sup> इनका रंग पीला होता था। आज भी रवाई क्षत्र में बहुत से लोग इस रंग के दिखाई देते हैं। भारत का उत्तर पूर्व इनका मूल स्थान था। बाद में वे कुमाऊँ, गढ़वाल, नेपाल में तथा फल ही इनके अतिरिक्त मूडूर वगान और त्रिहार तक भी जा पहुँचे। इन्होंने भारत में आयुष्माप और सम्पत्ति का पयाप्त मात्रा में प्रभावित किया है। ये जाति चीन नाट क्षेत्रों की भाषा बोलते थे। गढ़वान के सीमान्त पर आज भी नोटिड बस हैं। इनके अतिरिक्त उत्तरकाशी का अभिलष भी तिब्बती सम्पत्ति का सान्ध प्रस्तुत करता है।

गढ़वाली की कुछ बालियाँ पर किरात प्रभाव विद्यमान है। कुछ भागों में जो हिमाचल प्रदेश और जौनमार वावर के समीप पड़ते हैं, वे वग का दत्व रूप से सपर्यो उच्चारण मिलता है जो इन्हीं का प्रभाव है। इसी प्रकार गढ़वाली में पूर्व-वास्तिक कृदता का अधिक प्रयोग भी उसी प्रभाव का प्रकट करता है। यही नहीं,

१ ई० १००० ई० में का डरण विन्दु सम्पत्ति पृ० २३३।

२ डॉ० चाडुर्गी भारत में अर्थशास्त्र और दि०, पृ० ५३।

३ महाभारत वनपर्व, अध्याय १४०।



कई गढ़वाली शब्द किरात मूल से सम्बन्धित हैं। उदराहण के लिए, भाई के अर्थ में प्रयुक्त गढ़वाली शब्द दा दिदा, दादू लिया जा सकता है। उसी प्रकार छोटे भाई के लिए गढ़वाली शब्द किरात भाषा में बो लो, वा लुरुप में उपलब्ध होता है।

अनार्यों में द्रविड सबसे अधिक प्रभावशाली थे। द्रविड भी उत्तर पश्चिम में आए थे।<sup>१</sup> हड़प्पा और मोहनजोदड़ो आज भी उनकी स्वर्णिम सभ्यता की जार इंगित करत है। हिमालय से ये लोग सहसा अपरिचित न थे। दिवोदाग और सुदाम के जिस शम्बर जसुर से लोहा लेना पड़ा था, वह द्रविड या किरात ही रहा होगा। गढ़वाली में कई द्रविड शब्द विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए पट के अर्थ में प्रयुक्त पोटगो शब्द लिया जा सकता है। संस्कृत में पटिका प्राकृत तथा तेलगु में यह पोट्ट रूप में मिलता है। इसी तरह कठण, मरिच (मच) कज्जालो (कज्जल) कठ (गढ़० कांठी, कठ), कण्णा (कनक), कुटि (कूडी), छानी (तमिन चानी), उल्लुखल भी द्रविड शब्द हैं।

इसी प्रकार गढ़वाली में माँ के अर्थ में प्रयुक्त ब बई या बाइ शब्द का संस्कृत अम्बा से व्युत्पन्न माना जा सकता है किंतु यह वाकणी भाषे, तथा द्रविड अब्ब (सवाधन में अब्बो) के अधिक निकट प्रतीत होता है।

कुछ अन्य शब्द इस प्रकार हैं कूटणू कालो उरम्बालू भडी चेलो गाजळ हलुको खाव आदि। पिता के लिए प्रयुक्त गढ़वाली शब्द बाबा मुडा में बाबा, बा तिबती बर्मी में बोद्या घोबा, आराव में बाबा बाहुई में बाबा रूप में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार, गढ़० बोगठया (बवरा) तिबती बर्मी बोकरस आराव द्रविड बोकरा एडा, गोंड बोकरस, वाकणी बोबडो, गढ़० बई, ब्ये द्रविड कोलमी में गढ़० ठोंट (चोच) वाकणी खानगी टाड गढ़० कूडी, कूडो, मनपाल में कूडी तमिल कुरे, गढ़० काळो बनारी काडू, तेलगु कर, गाड कोस्तो, आदि।

इन अनाय जातियों ने प्राचीन आयभाषा के किम रूप में प्रभावित किया इस विषय का अध्ययन विद्वानों द्वारा हो चुका है।<sup>२</sup>

टी० बरोन अपनी पुस्तक संस्कृत लिंगेज और विटेल न 'संस्कृत इण्डिया' टिबनरी में ऐसे अनेक शब्द दिए हैं जो अनाय भाषाओं से संस्कृत में प्रविष्ट हुए हैं। उनमें से कई गढ़वाली में भी विद्यमान हैं। सम्भव है कि गढ़वाली में प्राचीन और मध्यकालीन आयभाषा के माध्यम से आए हों। किंतु ऐसा भी सम्भव है कि उसमें ऐसी भी अनेक अनाय शब्द सम्मिलित हुए हों जो केवल गढ़वाली आदि पहाड़ी बोलियों में ही रत मिले हों। ऐसे शब्दों का अभी अध्ययन हान की है।

१ डॉ० रामकृष्ण मुकर्जी : हिन्दू सभ्यता, पृ० ५१।

२ ए० ए० बरोन का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, पृ० २०८।

## आधुनिक बोलियों से उधार लिए शब्द

उधार लिए हुए शब्दों में हमारा तात्पर्य उन जिन आधुनिक आय भाषाओं के शब्दों से है। ऐतिहासिक कारणों से गढ़वाली में सम्मिलित हुए हैं। बरनाली और केरनाली भाषाओं और यमनाली, रणकुंड और हमकुंड की यात्रा करने से जाने कब से अमरस्य जन भारत के विभिन्न भागों में आने लगे हैं। उन यात्रियों के सम्पर्क में गढ़वाली के अनेक शब्द लिए हैं। गढ़वाल के प्रायः जीविका के लिए गहरे जाकर भी जनक शब्द लेकर आते हैं। हिन्दी की भाषाओं की इमीति गढ़वाली के लिए अपरिचित नहीं है। इसमें भी पूर्व यह बात विचारणीय है कि राजस्थान गुजरात आदि प्रदेशों में गढ़वाल किन्हीं-न किन्हीं रूप से सम्बन्धित रहा है। राजस्थान और गुजरात का यह सम्बन्ध भाषा विकास के किस स्तर पर रहा है यह कहना कठिन है। जैसा कि कहा जाता है मुसलमानों के समय से राजपूत हिमालय की ओर भागे हैं यदि यह सत्य है तो यह सम्पर्क मध्यकालीन उत्तरता है। जैसे न. गढ़वाल का परिवार का सम्बन्ध राजस्थान अथवा गुजरात से सम्बन्धित था। इस स्थिति में भाषा पर कुछ प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस स्तर पर राजस्थानी और गढ़वाली के साम्य की बात की जाती है पर यह साम्य वास्तव में प्रथम प्रवस्था का साम्य है जब राजस्थान में फैलने से पूर्व गुजरात हिमालय में था और व एक एसी भाषा भी रह गई थी जिससे राजस्थान से आया।

उसी प्रकार ब्रजभाषा से गढ़वाली का लगाव हाना दूर के एक ही मूल के कारण स्वाभाविक है। इससे भी अधिक ब्रजभाषा का व्यक्तित्व बहुत विराट रहा है। एक युग में वह उत्तर भारत का साहित्यिक भाषा और गढ़वाली में भी गढ़वाली में उपस्य अपरिचित न था। गढ़वाली कवि भानाराम (१७४३-१८३२) ने अपने काव्य की रचना ब्रज में ही की थी। इससे भाषा के विकास की बात यह है कि एक बार नाक-गीता का सप्रह करत हुए जब मैं गढ़वाई पहुँचा तो एक बुढ़िया ने, निम्न श्लोक जिनके पूर्वजा ने कभी अपने गाँव में बाहर पर न रखा था मुझे कई एने गीत सुनाए जिनकी भाषा ब्रज थी। वास्तव में इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ब्रज की अपनी एक प्रचार-परम्परा थी जोर उसका क्षेत्र कभी मुक्त हिमालय तक भी रहा होगा।

ब्रज और गढ़वाली में प्रयुक्त कुछ समान शब्दों का यहाँ दिया जा रहा है

जिबिया—गढ़० जी, जिबिया आउजी—जानाउ > प्रा० जाउज > जाउज  
> आउज वन० आउऊ आवम गढ़० औजी—डाल वजान वाला कनार  
बल्हाही < बल्हा चिक लकें गूजर गुडराल कनारी कनारी जवरी जवरी  
दावरा बौटी मुरति सुता, बरवानी, मगा, मगुलो, पाग + डा, मूनका  
दुलाक, खगवारी खगवारी, हंसुली, पहुँचा, मुदरी, मुरकी बलेज. प्रा०

पिढाळू पिडाळू, भटा भट्टा < वग, छाक, मरसा भाछो, नवनी नौणी, अदरसा  
 घासा, महर, खाळ, साहिलो स्वोलडो, मुलकडो, पतीरा पत्पूड, म्हौचग मोछग  
 पटुका पटुगा, पेप, जोह जोन < ज्यात्सना, हौस, जववार अग्वाल < अकमाल,  
 ठाडो ठाडो, ठाव ठौं, मॉह सौं घोरी खोळी, ठौर, विरानो, घयाणो, सयानो,  
 मोर भोळ, वानि बाण, वानक, भातह, नेरे नेड, सरि सअर, सन सात, घवेर,  
 कलेउ नत नेतण, ओछा होचो, जायो अनत अण्य < अयत्र, निसान निसाण  
 टासा डिस्याण, साल (गढ० डक के अघ म) हेत, धोरी धोळी, रतनारी  
 रतयाळी, पोरि पडी, फडी, आदि।

गढ़वाली की विसरणू भाजणू बाँचणू पत्याणू, मुचोणू भेंटणू, गाडणू (ब्रज०  
 काटनी), मीडण आदि कई त्रियाए ऐसी हैं जो हिंदी की अपेक्षा ब्रज म अधिक  
 प्रयुक्त होती है। मना और त्रिया रूपा भोकार की बहुलता और घनियों के  
 विकास की दृष्टि म ब्रज और मध्य पहाड़ी म पर्याप्त समानता दृष्टिगत होता है।  
 आगे के पठो म यथास्थान उसका उल्लेख किया गया है।

ब्रज के समान ही अवधी आदि स भी गढ़वाली का हलका सगाव दिखाई  
 देता है। उदाहरण के लिए अवधी और गढ़वाली क ये शब्द लिय जा सकते हैं

अउल गढ० श्रोत, अजुगि, अजुगति अजगती, अजहु धजू अमो, अनुहारि  
 प्रवारी, उकाई, उघार उघाडो, कलोरि कल्होडो ओवरी, कउली कौली  
 वबरा कबरेणो खउरा खौडो, खप खकार खकार, गबह, गपफा, गलवा  
 खिखा गाती, गुडी गट्टी गल धाटी घान घाण, जोई, झालि झल्ल, झुर,  
 झुलवा झुल्ला, झगुला, डंगर, टांच टिचन, घोक, दवाइ दाइ, डघ, धराऊ,  
 (ह नाघेनो, पट्टी, पतुरिया पातर, पयलउठी पसोठी, पलभेती, पंवारा  
 पवाडा, पाग, पितकोप, पीठो, पिसान, फगुनहट फगुणटो, फाँट, फाँड,  
 ग्यार बकतर, गटुना बठुडो, भटा भट्टा, भउरा भूरी, मवजा मौजा, लहुरा  
 रोड्या मउरी स्वोली सदरी, सौं, सोरारी स्वाळी आदि।

बुद्ध त्रियाए का गढ़वाला और अवधी म समान रूप स मिलती है किंतु खडा  
 ावी म चिनना प्रयोग नहीं होता

निररद—ग० निबडणू भुट्ट भूट्टणू सनकारव सनकीणू बुजाइर बुजाणू  
 पेपना तोपणू (पना)।

इस प्रसंग म दरद का उल्लेख भी हो जाना आवश्यक है। गढ़वाली म दरद  
 ापणाकी क अनुकूल घबचारमक परिचयन नहीं होा है। फिर भी दरद शब्दा  
 गढ़वाला म पाठव की जोनकारी तथा अय परिचमी पहाड़ी बोलिया क माध्यम  
 प्रयोग करना सम्भव है।

वाम्तव म गढ़वाला पर दरद प्रभाव की वान बुद्ध वडा चडावर की जानी  
 । इस सम्भ म दरद भाषाभा क ापणा का उदाहरण लिए जान हैं, वे मूनन

मन्वृत क गण हान हैं अरु क अने गण नरा । उनलिये उहे मूनन दर गण कहना अनुचित हाग । गणवाली म दरद मूल बाल गण का बाहुल्य नही है । इन प्रकार क कुछ गण जमान मिलत हैं, जैसे—गण० डाडा गिगा ठागू कागमागै डोनड, गड० ब्याडे इन्द्र ध्यान गिग ब्याले गण० ह्रिपू कागमागै हुडग गण० सुडा गिगा सुडा गण० हुडेरो कागमागै होंडू गण० काओ गिगा बन बादि, किन्तु इनका भी दरद मून नदिन हे क्योंकि मन्वृत दड विहाय हुडा, कउ आदि म इनका व्युत्पत्ति निरासित का जा सकनी है ।

गुररात्री, नरानी पत्रादी जोर कागमा क भी बहुत स गण गणवाला म विद मान हैं । जहा तक पत्रावी यौ गणवाली का सम्बन्ध है गणवाली में पत्रावी की नाति ध्वन्यात्मक परिवर्तन नहीं हात किन्तु कई क्रियात्मक तथा गण म्प ग्क-दूसरे में मल जात है । निम्नतम जिन तर गणवाली का राजस्थानी की एक गाछा ग्क है उसो तरह पत्रावी का ना उहोंने राजस्थानी म मिला हाया ह ।<sup>१</sup> य कयन प्राक्निष्ठा सम्बन्ध ह किन्तु अन्य बाहरी क्षेत्र की जानभासात्रा क बाच गणवाली पत्रावा, राजस्थानी बादि की न्यति और उनक गण-समूह की साहा बूत एकना ध्वनित हानी है ।

गुनना क लिये आधुनिक भारतीय भाषाओं जोर गणवाली क गण नाच प्रस्तुत किए जा रह हैं

### गणन्यानी

जडड, गण० घौना (<जनुनक), आगाड (<जाता) अछालो अंग अगाछा अगिली, अरू अने जात गण० अणवा अछरी, आगी घाट वावड गण० घौर जाकग-काकग गण० (कजा) काकडो, घाडवद, आला उरडा उला अगिगला उम गण० उय एकगई गण० एकग जाळ गण० आनो कवाडी ककोडा, रुद बनरो, कनि कदो कनेदी कागा काई (कया), काओ कावी गण० कालो किनाही गण० कनोडा, कई (किनन ही) कुडी गण० कौडो काट, कोडार खंकार गण० मसार खडका खाड खाड मुनन गण० खान बुगाछी गण० खवाछा मल घटा गण० घट्ट, खाचो, करडा, करबानो, जादि ।

ह्रिपू ममान क्रियाए इन प्रकार हैं

राग० आअही—टावन का भाव गण० अहीगू टोकना डाउन के जय म, इतडका गण० जडकगो, उकडगा। अछेखू विडगो गण० गिटकगू बुना गण० खानपू खरीपू धोकपू, गोडगो जादि ।

<sup>१</sup> मित्र 'दिन-न अम पत्र', ३० १, वि० सु० ३० वा गण कागमा गण ।

## पजाती

अक्करो—गढ़० अक्करो, अगत अनेतो, अणकी अण्णु, अल्लण अल्लण, अडबद, उम्म उम्मो, ओलार, उह्ला ओलो, उलारा उत्तार नी सौड, सररा (अधि), सरहादी सिरोंडी, साडा कौली, कद कदि, कक, कारी कुनाल कुडाळो खप्प (गढ़० खपतोळा—खपतोळो) खफगी, खाल, खचल गजी गाजी, गपफा, गभरू, गीटी गुमटी, गुडगुडी, गल गोहा गोंसा, गोरू चोपड, छोहरा छोहरी जीजू शिज्जू, जुल्ल मुल्ला, जेडडी, झल्ल भुनका, छुतका, टक्क, टप्परा (गढ़० टिंडा टपडा), टरड टाणस, टुडा डुडो टूल टोअेल ठुणा ठूणा, डब्बू, डभखा डोंडा डोंडो, डाम तौलो तलमटी थोर थोबडू थुमको थो दगल, दाऊं, धौण घडा (गढ़० धणा या घडाई पडणू) धिपाण धूडा पडता पडा बनडा बरी बरो, वाणडा वाखडया वाडी, महेडू भगर मजल, भाडा रौ, खोर खोड, लीर, चिपला चिपळो।

बुद्ध सामान्य रूप से प्रयुक्त त्रियाए य हैं

सटणणा, नशणा, कथणा, सतणा, कथणा घस्सणा गढ़० खोसणू, खट्टणा गढ़० खटणू, गुडरुणा गढ़० गिडक्णू, घुट्टणा गढ़० घूटणू घटना गढ़० घोटणू, चांडणा गढ़० चादणू, टुरणा गढ़० ठुरणू, नठणा फरोळणा गढ़० खरोळणू, फोळणा गढ़० फोळणू, बट्टणा गढ़० बौडणू, धोचणा गढ़० कोचणू खिडणा गढ़० खडौणू हिडणा गढ़० हिटणू आदि।

## मराठी

अटका, अडबद पीठ गढ़० पीठी अलन, ओराई आडोमा-गढ़० अडासा मांडो मांडी, शोळी (कही) ओलगण० अल वनकी गढ़० कणसी, काकडा गढ़० काखड वाटकी गढ़० काठगी, कुदळी गढ़० कुटळी गवर जीला गढ़० आलो गाण गढ़० ग्वोंडो चकला गढ़० धोक्लो घट्टी चुरकन गढ़० घर कड घूनो (पिसान), टाग, छोरा छोरी जाई जोडा (जूता) जूडी जोई शगुली झांगला कला गढ़० झालर चिल्ला झुमका भुनका गढ़० झुल्ला, झूमर झूर शोळ टुडा गढ़० डुडा डूम (गढ़० डूमछला) ठठ गढ़० ठट्ट ठसक धोति धोक् दावरी दुद नतर (नातर, नातर, नतर ना) गण० नितर पोंवाडा, पहाळ गढ़० पडाळो मुडासा पातुर पाली फकी कपि यांगर मावामी गण० मयासी रन वन गण० रण-यण साकूड समटर, साक आदि।

## गुजराती

आन गढ़० हाठ इगार अगार, उछाह उछी, उसान उखतासी कट्टा

कभी कू-बान्डी कूण काइ नीनाकी वाली म काइ (कनों) को का (कौन) गुरु गरी गति गत्या, घणी घणू (जघिक्) छई छई छोरी छोरे जो ज नु उनाल उकाळ उठाण भौनाण उवाळ पवाळ उंघू उठू उनु उबो उोड काळ काट कडो कूडी कूडो, कुकडो कुतरा कुतरु काडो कौदा खट खड खाळ लाटो खाव खोल खुटा खेप, खारड खोड खोळ गाजार गजार घाम चाकलो चीडा चिडो चडो चाखा चौखो छात्रु छक् जुडी जूमी टकी टसका ठमक दादरो नाटो पाण, पाटा पाठो पाला पाळ पाट विपाह व्याह राड रेलो राडू साडो मुनटा मुन्टो साङडू सागडो।

तुद गटवाली क्रियाए नी गुजराती म ज्यों की त्या मिन्ती है जस कावू कोरू घनपू घावपू भीष्पू आदि।

वाना

जाता गट० जाला, नविगट० उबो एयो जोउ भो कउकमि काकुटकाकडा कावु कावु कासल किना सिन्ना कूत्र कूजो कुडिया कूडा कौदो खता गटा गाजे गझर गझर गुरवा गहना गाव गाना गाव, गानो गिरा गरो घाम चडा चडो चाकना चौकला चाकला चालन चाळो चिटछा चाउ चौखो चवा चगा छुव छुवो चुवा झळ झूमका झोप ठसक टफू डोल डौळ देपा टेक दिखो नवा तुमडो थोप थपडो थोफ दा टिद, दा, दाडू पाना पाटो माड माथो रला रेनु लाडा साहडो सान रुना मुप्या स्वीणा तातो जोहारा बुबारा बराल ग० विराटो काहाडा कुरेडो कुतकुति कुतकुताडो कुतगाडा।

कुछ नमान क्रियाए

न नी लू टाळू टीरू लूफू टफू टाळू दूकू आदि गटवाली क्रियाज क जनुप वणा म नी अनक समान अय और मूल वाली क्रियाए व्यवहृत हाता हैं।

इन गण-शुची म हिन्दी जोर सख्ख म सामान्य प्रयुक्त गण्य का नही रजा गना है। जो लभव शब्द लिपि नी गए हैं व तुवना नक दृष्टि स विकान नी समान लिपि की जार सकेन करत हैं। जर नी दूद गण-शुची म जनक समान गणों का प्रभुत्व किना गरा है किनु पर उमानता समान मूल के कारण नी हा मन्नी, है नीर नायात्रा क बीच आदान प्रदान क कारण नी। इसलिये यह ज्ञान जिन है कि न गणाना न ही विकसित है है जनवा अय नातीय नायात्रा गणवाली म प्रविष्ट ए है। लिपि क नाजन न जन नायन नायात्रा से गणवाला म प्रविष्ट हुए गणों की संख्या भी कम नहीं है। लिपि जन की विभाया हात क माने यह न्यानाविक है। इवीनिग हनने तुवना क लिए नन गण का ही अधिक विषय है किनहा प्रयोग परिनियमित लिपि मे नहीं हाता। लिपि

गढ़वाली में उन शब्दों का प्रवेश भिन्न रूप में ही हुआ होगा। टनर न नेपाली शब्दों का अध्ययन करते हुए विविध भारतीय भाषाओं में उपलब्ध समान शब्दों को प्रस्तुत किया है। उसी आधार पर कुछ गढ़वाली शब्दों का इस प्रकार का अध्ययन गढ़वाली का मूल प्रकृति, उदगम और विकास की दृष्टि से, महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

गढ़० झालो < अल्ल प्रा०, < आद्र, जिन्सी मलो (ताजा), बगला झाला, पजाबी झल्ला (कच्चा), सिन्धी झालो मराठी झाले (ताजा)।

गढ़० उदो < अध, कुमाउनी उदो, नेपाली उधो सिन्धी ऊधो, गुजराती ऊधू, हिन्दी औंधा।

गढ़० उब्बो < उब्भ < ऊब्ब पश्चिमी पहाड़ी उभू कुमाउनी उभो, नेपाली उबो बगला उभि, उडिया उभा, पजाबी उभ, लहदा उभा, सिन्धी उभो गुजराती उभू, मराठी उभा।

गढ़० व्याळे < विक्काले पाली विक्कालो (साया), दरद थ्याल (रात्रि), शिणा व्याले, पश्चिमी पहाड़ी बियालु, असमी बियाली (दुपहर) तुलनीय हिंदी बियालू-शाम का भोजन।

गढ़० बुवारी असमी बोवारी कुमाउनी बुवारी, नेपाली बुवारी बगला बोहारी (< यवहारिका < चाटुज्याके अनुसार) दासी, तुलनीय प्राकृत बोहारी < यापार।

गढ़० खेप < खन, कुमाउनी, उडिया गुजराती, अवधी ब्रज मराठी पजाबी रूप।

गढ़० हिडणू सस्टन हिडते पाली हिडति प्राकृत हिडइ गुज० हिडवु मराठी हिडणे, पश्चिमी पहाड़ी हणठणा, काश्मीरी हुडणू नेवारी हिडणू।

इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन गढ़वाली के सन्दर्भ में अभी हान को है। यदि कभी यह सम्भव हो सका, तो मेरा विद्वान है कि पजाबी गुजरानी मराठी राजस्थानी और कुछ सीमा तक बगला से उसके सम्बन्ध मूलों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा और तब यह निश्चित करने में सरलता होगी कि गढ़वाली हिन्दी वग की विभाषा है या वह किसी ऐसी जाति के प्रसार से सम्बद्ध भाषा है जो किसी समय अपने अभियान में पजाब राजस्थान, गुजरात महाराष्ट्र और मुद्गर बंगाल तक फैली और जिसने भाषा की समान परम्पराएँ विकसित कीं। यदि इस दृष्टि से देखें तो गढ़वाली में हिन्दी का अंश विपुल होते हुए भी उतना विलक्षण नहीं है जितना गढ़वाली का वह अंश, जो हिन्दी से विलक्षण विलग है, किन्तु जो उपरोक्त अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बद्ध प्रतीत होता है।

## विदेशी शब्द

विदेशी शब्द मुसलमानों और अंग्रेजी प्रभाव से आए हैं। गढ़वाल पर मुगल मारों का शासन नहीं रहा, पर दिल्ली दरबार से उसका सम्पर्क रहा ही है जिसके फलस्वरूप अनेक अरबी, फारसी के शब्द गढ़वाली में घुस आए और जिन्हें बोलने हुए गावा में रहने वाला गढ़वाली यह महसूस नहीं करता कि वे गढ़वाली के शब्द नहीं हैं। ये शब्द कुछ हिंदी, उर्दू के माध्यम से प्रविष्ट हुए हैं कुछ जन-सम्पर्क से और कुछ कचहरिया के द्वारा लाके म घुल मिल गए हैं। इनकी संख्या हजारों में है।<sup>१</sup> इनमें से अधिकांश शब्द अपने मूल अरबी और फारसी रूप में उच्चरित हात हैं किंतु कई शब्दों में ध्वनि परिवर्तन भी हुआ है

आलाचार (लाचार) इकत्तार (अस्तित्पार) अदौट (अदावत) आम्ने (आहिस्ता), आइनदा (आयन्दा), बरार (इकरार), उस्तान (उस्ताद) हुग (ओहग) दरगा (दरगाह), कीसा (किमह), क्वाज (क्वायत्), ख्वन् (खाविद), ख्वादा (खाहिदा) खप्नी (खपनी) खामुखाम (खामखा) खिजमत (खिजमत) गुनो (गुनाह), मुगल (मुदिकन) गद्दस (गर्दिश) जगा (जगह), जुही (जुदा), जिददी (जिद्दी) जफन (जत) बजा (बजा) जनाना (जनाना), जिनत (जिस) जदात (जायदाद), तजरना (तजुवा) ताफन (ताहमत), दशकत (दस्तखत) डिगर (टीगर) दसट (दहगत) दरखान (दरखास्त), दुरस (दुरस्त), नसत (नसोहत), परघस (परिवरिण) फनाणू (फला), फजीत (फजीहत), फरजट (फरजद) वम (वहम) वुजरग (वुजग) वदी (दी), मुलाजू (मुलाहना), मुकरिब (मुकरर) मस्तज (मुस्तैद) मानूल (मटमूल), मतवल (मतलब), ह्यार (शार) रवत (रफत) रम (रहम) लवज (लपज) ल्याज (लिहाज) लख (लायक), ल्याकत (लियाकत) मुक्कर (मुफ्र) शहर (शहर) शेकी (शेखी), शोदा (शोहदा), शवम (शरम), मप्पर (सफर), खाल (खाल), सिरप (सिफ) सुवा (सुबहा), सौलियत (सहलियत) सगार (शहर) सलेका (सलीका) हिक्मत (हिम्मत), हसूल (वसूल), तोफत (तोहमत) मौवत (मुहवत), मुकाम (मकाम)।

आरम्भ में इन शब्दों को ग्रहण करने में पर्याप्त कठिनाई रही होगी। इसीलिए बोलचाल में बहुत से समानार्थी अनुवाद समान प्रयोग में आ गए। दद पीड़, धीर-बादर यी निसाब, ज्यू पराण, अबकल मति लाज गरम, आर-खात्र, हाल-समाचार, बीज-वस्त, ख द गुम्बू।

यह ध्यान देने योग्य है कि अरबी, फारसी शब्द जब गढ़वाली में प्रविष्ट हुए



तो उनमें कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन हुए बिना न रहे। कुछ परिवर्तन इस प्रकार हैं द > त जस मदद > मदत ण > न उस्ताद > उस्ताज। वही अनुस्वार का आगम भी हुआ है, जम बेजा > बेजा। त > ट जस दहसत > दहसट।

जहाँ तक यूरोपीय शब्दा का सम्बन्ध है, व भी हिंदी या हिन्दी भाषा भाषी लोगों के माध्यम से ही गन्वाली में प्रविष्ट हुए हैं। इनमें से कुछ ण द पुनगाली हैं और कुछ अग्रजा

अस्पताल, अपर, अपील, जोडर, इतकूल, अफसर सास (साइस) निसपेटर, मिडिल, मास्टर कुमेटी (कमिठा) परात मटिंग (मीटिंग), क्लकटूर डिप्टी, गिलास, गस, जेल, लाट, पुलिस टम, टिंगट, डवल डीन (डाउन) लम्बर, तमाखू, लौट (नाट), पलटन, पिनसिन (पेसन), फोटू, बटन फेता मशीन पमासन (फशन), माचीस, मिलट (मिनिट), मोटर रुस लम्पू होटल, सिगरेट लेट, रेट गटरोल, मुसटी, रडू मोट (वोट) चागस (चास) डानस (डान्स), फुटगोन (फुटवाल), रासन (राशन), कोरट (कोट)।

### देशज शब्द

देशज शब्दा का सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहने की अपेक्षा केवल कुछ अनुमान लगाए जा सकते हैं। गन्वाली बोली में अनुकार ध्वनियुक्त णों का प्राधान्य है और यदि हम आरम्भिक भाषा की निर्माण की प्रक्रिया ध्वन्यानुकरण, अनुकरण और प्रतीका पर आधारित मानें तो गन्वाली देशज शब्दा का अनेक मनोरंजक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। ऐसे कुछ शब्दा का उत्सव आगे अनुकार सूचक अक्षर और अनुकरणारम्भक धातुओं में किया गया है। कुछ और शब्द यहाँ भी द्रष्टव्य हैं कतमत, काई बाई छद्मद सिस्याट, चुच्याट, निमडाट, सतरत, छतयत, छुतबुत चुतपुत, सुरसुरया, घुरघुरया दणमण, छणमण चचरणू चचडाणू भुसमुस लुडकयालू फुरकयालू राळगळा, करकरो जरजरा चचकार।

शब्द निर्माण की यह प्रक्रिया स्पष्टतः प्रारम्भिक है। बहुत सम्भव है इस प्रकार के शब्दों का सम्बन्ध गढ़वाल के मूल निवासियों में रहा हो।

ध्वनि-तत्त्व



## स्वर-ध्वनियाँ

गढ़वाली बोली की अधिकांश स्वर ध्वनियाँ हिन्दी के समान ही हैं। वस अपनी स्वर सम्पत्ति उसे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से प्राप्त हुई है और हिन्दी में अ ते-आते कई प्राचीन स्वर ध्वनियाँ अपना उच्चारण बदल चुकी हैं किन्तु गढ़वाली में अभी भी वे सुरक्षित हैं। यही कारण है कि गढ़वाली में हिन्दी के अति रिक्त भी कई पद्यक ध्वनियाँ विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए उसमें ह्रस्व स्वरो का अति ह्रस्व उच्चारण भी प्रचलित है। उसी प्रकार प्लुत का प्रयोग केवल सम्बोधन तक ही सीमित नहीं मिलता। इसका कारण भौगोलिक प्रतीत होता है। पहाड़ों में लोग दूर से भी आह्वान करते हुए वातों कर लेते हैं और वहाँ नदियाँ के 'कल-कल' मय अवरोध के बीच ध्वनि को श्रय बनाने के लिए प्रायः लम्बे सुरों का प्रयोग भी आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार गढ़वाली में निम्नलिखित स्वर ठहरत हैं

5 1

अ, अ, अँ अ, आ आ, इ इ, ई उ उ, ऊ, एँ, ए, ऐँ, ए, ऐँ, ओ, ओँ, ओ,

औ, औ ।

इस प्रकार सस्कृत में जहाँ अ, आ केवल दो ध्वनियाँ हैं, वहाँ गढ़वाली में उसने कई उच्चारण विद्यमान हैं। वास्तव में अ ध्वनि का उच्चारण गढ़वाल के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न भिन्न रूप में होता है। उदाहरण के लिए घर शब्द विभिन्न पट्टियाँ में घोर घौर, घौर, घँर, घर, घर, घर आदि रूपा में बोला जाता है। गढ़वाल के रवाइ जौनपुर क्षेत्र में अ ध्वनि औँ में ढलती प्रतीत होती है। जिला गढ़वाल की कई बोलियाँ में वह औँ अथवा औ हो जाता है। इसलिए डॉ० धीरेन्द्र वमा ने गढ़वाली अ ध्वनि का उच्चारण पूर्वी भाषायाँ भीली और मराठी के समान अथ सबत ओ तथा सबत ओँ बताया है।<sup>1</sup> गढ़वाल के कुछ भागों में अ ध्वनि अए रूप में भी विकसित हुई है जैसे हिली डर डर ।

<sup>1</sup> डॉ० धीरेन्द्र वमा, अत्रभाषा, पृ० ८२

अ का दीर्घ विलम्बित उच्चारण अः गन्वाली म मामाय है, जैसे कलः, घरः, झः, चः, दः। इसी प्रकार अ या स्वरघात रहित ह्रस्व उच्चारण अ भी गढ़वाली म ध्यापक है। यह अद्य विवत उदासीन स्वर है। तड़ोबोनी म यह ध्वनि प्राय नहीं मिलती किन्तु हिन्दी की बड़ बालिया म इसका प्रयोग होता है। अपभ्रंश म भा इस प्रकार की ध्वनियां विद्यमान थीं। यही नहीं वरन् म भी ह्रस्व स्वर थ और अ का उच्चारण प्रतिशाक्या क समय म ही अति ह्रस्व रूप में होने लगा था। गढ़वाली में अ का यह अति ह्रस्व उच्चारण अ गः के प्रारम्भ, मध्य और अन्त तीनों स्थितियां में मिलता है, जैसे, कल, मट, शौताम चुलि सौतीम भलू। बंदर का मुडम टोपलि नी स्वानी। मध्य म यह ध्वनि या तो उदासीन स्वर की तरह उच्चरित होती है या पूर्व स्वर के साथ मंत्री कर उसके उच्चारण को अधिक विन्वत करती है। व्यजन-लाज व कारण जब अ उच्चरित स्वर के रूप म रह जाता है तो उसके उच्चारण का यही रूप होता है। उदाहरण के लिए, छादन > छादन > गडः छादन अथवा छान घात > घाअ > घोम, घो। जिन शब्दों के अन्त म ल, ल ण, ड ध्वनियां आती हैं, उनमें निर्मल उच्चारण के साथ अ श्रुति मिलती है काधली (मूछ) अथवा पूर्व स्वर स मंत्री कर लेने पर फाली, रामणी राणी रामण्ड रौड वाधली बौळा रामड राड आदि। ऐसी स्थिति में यदि पूर्व स्वर आ हुआ तो उसका उच्चारण आ के समान पदच, गोल ओष्ठ वाला और चौड़ा होता है। वज और राजस्थानी में भी इस प्रवृत्ति के दृशन होते हैं।

अ गढ़वाली की अद्य विवत पदच ह्रस्व ध्वनि है। इसका उच्चारण अँ और आ से नीचा है। यस्तुत यह अ की विचिन बतुल ध्वनि है। गढ़वाली म यह ध्वनि अ, अ से परिवर्तनीय है। यह बहुत कुछ व्यक्ति और क्षेत्र पर निर्भर करता है। बहुधा एक ही गः विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न लोगों के मुँह में विभिन्न रूप धारण कर लेता है। पीछे घर गः का उदाहरण दिया जा चुका है। अ के वतुन उच्चारण के उदाहरण प्राय उच्चरित अ व पूर्व स्वर में अधिव मिलते हैं जैसे दहन > दहन > वन पवत > पँड, मतर > मँडो गकट > शँळ।

अँ ध्वनि की चर्चा पीछे की जा चुकी है। गन्वाला आ ध्वनि अघेड़ो आ (जग कौंज) ध्वनि की अपगा वम वतुन है। इसका उच्चारण ह्रस्व और उच्चारण स्थान दीर्घ आ की अपगा कुछ ऊपर हाता है। यह ध्वनि प्राय सस्तुत के शिथ व्यजन मुक्त गः के तद्भव रफा, अनुनासिकी तथा मूधय व्यजना के पूर्व स्वरा म गुना णी है। उदाहरण के लिए, वाघ > वाँजो अनाघ > नाग

रग > राग, इसी प्रकार टाण, छाड काळा, नाँट अनुच्चरित ध्वनि के पूव म्वर म, हिन्नी सहारना गठ० मारणो, आदि।

दोष आ हिंदी के अनुरूप ही है। इसी प्रकार गटवाली की इ, ई, उ, ऊ, ध्वनिया भी हिंदी से भिन्न नहीं है। गटवाली म वन दन क लिए दोष ध्वनिया का अधिक दोष करने की प्रवृत्ति भी मिलती है जमे साअल फूल बहुत साल फूल। इन वाले इसने (किसी और न नहीं) कहा।

ह्रस्व ध्वनिया म बहूधा ह्राम के दान हात है। यह ह्रास इ ध्वनि म विगप रूप से हुआ है। इ गटवाली को अण-भी ध्वनि है जिनका उच्चारण अति ह्रस्व रूप में फुसफुसाहट वाले स्वर के रूप म हाता है। यह स्वर मध्य ओर अन दो बदस्थाआ में मिलता है। अत्य ब बहूत कम सुरक्षित मिलता है, जैसे औन्दइ अपना मतइ कडाली प्यारा, क बीइ धीत्यो क बोतिइ धीत्यो। बानी बेंटीइ मुणी स्वारी, मारी पीटिइ भागी गए, बाटइ पुगडी तमापून उडी। अयथा वह अपन पूव स्वर से मंत्री कर लता है अथवा क्षतिपूर्ति के लिए अपना स्थान किमी परमग का प्रदान कर दता है औन्दइ औद मतइ मत या मतकी दीइ दीक, बेंटीइ बेंटीक, बाटइ बाट आदि। मध्य म भी इस ध्वनि को सुरक्षित रखना न रखना बहुत कुछ उच्चारणकर्त्ता पर निर्भर करता है, जस, महत्त मँत, दत्त दँत, छाइक सँक आदि।

उ के उच्चारण मे गटवाली म हिन्दी उ की अपना हाठा का अधिक भाग बचाना पडता है, पर वगला का भाति इसमें होठ अधिक बर्तुन नहीं हात। इस स्वर की प्रवृत्ति इ के समान फुसफुसाहट वाले म्वर म टल जाने की ओर अधिक लगती है। इ क समान ही गटवाली म अति ह्रस्व उ का व्यापक प्रवाग मिलता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं अपनी चादयोउ गचा कू जुतार, अपना पिडीउ किरमोली तटाव देंदी, बीउ प्यारा दिउर जनानी को दिम्पुउ भाग अर वत का कादमुउ पास, आदि।

गटवाली म ए, ऐ, औ, औ का उच्चारण मामा यत यइ, आइ, बी आउ हान सगा है। ए ध्वनि गटवाली मे ह्रस्व रूप म भी उच्चरित होती है। अथ मवून ह्रस्व अप्र स्वर ए क उच्चारण म जीम का अग्रभाग ए की अपना कुछ तावा हाता है और बोलन म एकार की अपेक्षा अधिक त्वरास उच्चरित होता है। उदाहरण के लिए अति, भें ट एत्य, एक्क, जेंडानी, तेंरो, बेंटी, एति, भेंरो, स्ये, त्वें, ज्वे आदि। अपभ्रंश म भी लाघव की यह प्रवृत्ति विद्यमान थी। महत्त में भी इस

प्रकार के उच्चारण का अभाव न था। यह माना जाता है कि सामवेदीय शाखाओं में इस प्रकार का उच्चारण विद्यमान था।<sup>१</sup> राजस्थानी, गुजराती, कुमाउनी आदि में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

अर्धविवृत दीर्घ अग्र स्वर के रूप में गड़वाली में ए की एक अर्थ ध्वनि एँ का प्रयोग भी मिलता है। इसका उच्चारण स्थान ए से ऊँचा है। कुछ भागों में इसका उच्चारण अधस्वर यँ की भाँति भी होता है जैसे केँक (किस लिए) क्येंक, क्येंक तेल त्येस, त्येंल बेटा ब्येंटा, ब्येंटा आदि। एँ ध्वनि के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं एँक, एन, एनो आदि।

गड़वाल व कुछ क्षेत्रों तथा कुमाऊँ में एँ एँ ध्वनियाँ य, या रूप में परिणत हुई मिलती हैं चेला च्येंला, च्याला दश द्यंश, दयाश तेरा त्यरी, त्यारो, आदि। उसी प्रकार जौनपुरी और रवाँली उपबोलियाँ में ऐ ध्वनि ओइ और अइ रूप में उच्चारित होती है, जैसे, वैरी मोइरी, दरय दइत, चत चइत। उच्चारण की यह परम्परा प्राकृत में भी मिलती है। ए, ऐ व लिए अइ लिखने का विकल्प तब भी विद्यमान था (पिणल ६१)।

इस स्पष्ट है कि वही ए और ओ भी मूल स्वर रहे होंगे। गड़वाली में आ ध्वनि आ और ओ रूप में भी मिलती है। आ ह्रस्व रूप में बलाघात के साथ उच्चारित होता है जैसे काँ जा, बोदा जाँन आदि। ओ का यह ह्रस्व सकृल उच्चारण आ ह्रस्व उकार अथवा वकार के बहुत नजदीक पड़ता है। इसीलिए कई गणना प्रकार के उच्चारण प्रचलित मिलते हैं रोटी रंटी, रटि, रवति। कुछ भागों में ओ या में परिवर्तित हो जाता है, जैसे रोटी रवाँटि, बोन्न ब्वॉज, ब्वज आदि। ओ ध्वनि प्रायः आउ अथवा अउ से परिवर्तनीय है पौर पउर। पाणिनी व 'एचो यवायाव सूत्र से स्पष्ट है कि ए ओ, ऐ, औ ध्वनियाँ प्रथम अय, अव, आय, आव ध्वनि युग्म हैं। अतः अ+उ, आ+उ, अ+ई, आ+ई का ओ और ऐ उन्वय स्वर से सघ्वक्षरक रूप में परिवर्तन हो जाता है। यह प्रवृत्ति अपभ्रंश में भी मिलती है। गड़वाली में इसी प्रकार तम्भय दाँधो की पदांत ओ ध्वनि कत्ता की सु विभक्ति ( ) के प्रतीक रूप में अनेक गणों में सुरक्षित मिलता है जग कटक >काडो वातुल >बोळा।

इन स्वरों की प्लुत ध्वनियाँ अधिक व्यवहार में तो नहीं आती किन्तु सवोधन, आह्वान में प्रायः सुन्न में आती हैं। वाकु अथवा बनकर बोलने में भी वही प्लुत का प्रयोग मिलता है। गुणाधिक्य, मात्राधिक्य, आदेश्य चोत्कार परुणा आदि भावाँ को व्यक्त करने के लिए स्वरों में सामान्यतः प्लुतिलापी जाती है। उदाहरण के लिए—

भलीऽ नौनी (बहुत) भली लडकी ।  
 ह नौनाऽ हे लडके ।  
 मैं जाऽण नी मैं (बिलकुल) नहीं जाऊगा ।  
 हे राऽम दऽव हे राम, हाँ देव ।  
 क्याऽ क्या (क्या हो गया) ?

ऋ की गणना मन्वृत म स्वर म हुई है किन्तु गढ़वाली मे ऋ तिपिचिह्न होते हुए भी उसका उच्चारण अब रि मात्र रह गया है और तद्भव गब्दा मे तो जैसे उसका लोप ही हुआ गया है। केवल कुछ ही शब्दा मे ऋ ध्वनि सुरक्षित है, जैसे ऋण, ऋतु, ऋवि आदि, अथवा ऋ रि रूप म ही विवक्षित हो गया है—ऋम > रिक्त ।

गढ़वाली स्वरा का विवरण इस प्रकार है —

	ध्रप	मध्य	पद्व
			उ
सवत	इ इ		उ, ऊ
अधमवत	ए		ओ
	ए		ओ
		।	
अधविवत	ए	अ, अ	ओ, ओ
विवत	अऽ		आ

### अनुनासिक और अनुस्वार

गढ़वाली मे प्रत्यक स्वर का अपना अनुनासिक रूप है। उसम अनुनासिकता निम्नलिखित रूपा मे मिलती है

वर्गीय अनुनासिक के पूर्व का वण दीघ होजाना है यथा पाणो > पक, दांत > दन, पात > पक्ति, जात > मत्र, राग > रग, आंग > अग। ऐसी अवस्था मे अनुस्वार ह्रस्व हो जाना है। अनुस्वार क ह्रस्वोकरण के और नी उदाहरण मिलते हैं कठ > वाँठा सस्कार > सँसकार अकमाल > अँगवान, अगार > अगार, महत म त, दड > डाँड। यह प्रवृत्ति ब्रज आदि बोलियों म भी विद्यमान है।

सन्वृत के नपुंसक लिंग प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन म शब्द के अन्तिम न् और म अनुस्वार म परिणत हुए मिलते हैं। सस्कृत का बनानि गढ़वाली म बनाई हा जाना है। मध्य का म के बनकर पूव वण मे मँत्रो कर लगा है, कमन > कौळ।

नासिक्य ध्वजनों के परवर्ती स्वरा मे भी आनुनासिकता के दर्शन होते हैं नौनी, पराण, गौणी, चणा, गणा (गहना) पाणी, काँणी। म् का उच्चारण अनु-



स्वार के साथ करने की प्रवृत्ति अनेक शब्दों में मिलती है—मैं, भी मुँ माँज, माँमा मौन आदि। सपक्व सानुनासिकता के उदाहरण न, ण, प, म के साथ ही अधिक मिलते हैं। प ध्वनि के साथ प्यार, पाँख, पाँन पाँणी, फाँग (पास), प सा, चौ तिरफ, तथा स ध्वनि के साथ साच, साँत (साध), साँप, सास (श्वास) के रूप में जो सानुनासिकता मिलती है उसकी व्याख्या भिन्न रूप से ही की जानी चाहिए। गढ़वाली में स्वतः अनुनासिकता का भी अभाव नहीं है। इस सदभ में कुछ शब्दों का अध्ययन मनोरंजक है नाटक, जपणू जपना, स्पूण सेवनी, साँसो (साहम), छायाँ, रचना, मुगरो मुद्गर, नमसकार नमस्वार, नग नख, ककोडो कर्कोटक उग्दो अध, साँ दापथ > सवहो > साँ, बाँगे वत्र, पछी पछी, जोंटयूथ, सग्त सवत्र, यू नीवी, दत दत्य, कूजो कुब्जव हत्या हत्या, सुगर सूकर, सिवाल शवाल। दूसरी ओर ऐसे भी अनेक शब्द हैं जिनकी अनुनासिकता गढ़वाली में आवर लुप्त हुई है वसत (रवाँल्टी में वसत के लिए) मास मास सिऊ सिंह प्रलक्षण (उल्लघन), घूटणू √ घुट म० आ० भा०।

स अथवा ण के साथ जहाँ सस्कृत में अनुस्वार होता है, वहाँ उसके गढ़वाली उच्चारण में गू का आगमन होता है, जैसे सगसार ससार, दग्ग, भग्ग, मागल आदि। इन वर्णों के साथ अनुस्वार का यह उच्चारण 'गुम्' रूप में यदि काल में भी विद्यमान था।<sup>१</sup>

गढ़वाली में प्रायः सभी मूल स्वरों के अननासिक रूप मिलते हैं

- अ अघेर पछी पछारो चदर  
 ऌ अंगुळि अँवँ, अँवाळ, अजूळ  
 आ वाद, वाट, राठ भादा  
 आँ आँट, आँदू, आँस, वाँदर, जण्याँ, रुआँळ  
 इ पिढाळू, निँ, इसाक  
 इ पुळ याइ, हीस, मळी, छुइ  
 उ फुडो, डुडो, पुगटी, मुजमुज्या  
 ऊँ ऊँन, देरूपू नऊ, ग्यऊँ  
 ए मेदू बँट लँच, बोलेँद  
 ऐ ऐँच, ऐँचळू ऐँसू, हैसण  
 औँ हाद, आँस, दाडो, फाँदा  
 औँ आँग, आँळा, चौँळ पडोँद, रोँम

### स्वर-भयोज

गढ़वाली में दो या दो से अधिक स्वरों का संयोग पाया जाता है। कभी-कभी

यह बोलने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह उन ध्वनियाँ का उच्चारण सध्वस्वर के रूप में कर अथवा विभिन्न स्वरों की पृथक् सत्ता बनाए रखे। हा बुद्ध शब्द ऐसे अवश्य हैं जहाँ सध्वस्वरो और समुक्त स्वराक उच्चारण में सतकता की आवश्यकता होती है क्योंकि उनका द्विविध उच्चारण भिन्न भिन्न अर्थ का ज्ञातन करता है

सऊँ सवाँ	सौँ कसम,	जई फूल	जँ जय
बऊँ तैरना	बौँ भाभी	ताई सरमा	त तिए
रउ तालाब,	रौँ राव,	साइ मामी	स सौ
देउ दब	दौँ आकास	भाउ भाव,	भौँ दर
कुई कुआँ	कवी कोई	कई जिनने ही	क वमन

इस प्रकार क शब्दा के अतिरिक्त गटवाला म सध्वस्वरा क अन्तक उच्चारण मिलत है

- (अई वई, छई अपमुई, त्वई
- (अए कय, गये, विछये
- (अउ कमउ, सउ पउ, दऊँ, अउर
- (आओ व्याआ, त्याओ
- (आई उकाई, बुआई, बिपाई जुवाई
- (आऊ व्याऊ, प्याऊ, विसाउ, घराऊ
- (आए लाए, द्याए, बुलाए
- (इए णिए, जिए, सिध
- (उभा कउवा लउवा, रआ, लुवा
- (उई कुइ, मुइ छुइ, दुई
- (एए देए देखेए रखेए
- (ऐइ ऐइँच ऐइँसू ऐइँही तनई
- (ओम लौअल, बाअण जाअन
- (भोई जोई घाई, रोई, हाई
- (भौउ विसोउ, पडोउ, लौठ, धौऊ 'यी

## अथ स्वर

अथ स्वर य और घ गढ़वाली में विकल्प रूप स अ, इ तथा ओ, उ से परिवर्तनीय है। प्रारम्भ का य ज म परिणत हो जाता है किन्तु जहाँ य का उच्चारण इ की ओर ढलता मिलता है वहाँ य प्रायः सुरक्षित रहता है। वास्तव में प्राकृत तक आते आते य का दुहरा विकार होने लगा था। दौरसेनी अपभ्रंश म भी य का उच्चारण लघु प्रयत्न कर और अपूर्ण था। गढ़वाली की य ध्वनि भी ऐसी ही है। इ गढ़वाली म अनेक अवसर पर य रूप म उच्चरित होता है विदु व्यदु। व उ सानुकूल ध्वनियाँ हैं स्वप्न > मुद्गा। अपभ्रंश म भी यह प्रवृत्ति विद्यमान थी।

गढ़वाली में य और घ श्रुति का प्राधाय है। यह परम्परा उसे प्राकृत और अपभ्रंश से प्राप्त हुई है। गढ़वाली में य और व श्रुति व जो कुछ रूप मिलते हैं वे उन्हीं व अनुकूल हैं नगर > नैल हृदय > हियो गुक > मुवा, शृगाल > स्याळ, बीजपूर > विजोरा अधकार > अध्यारो, कुन्तल > कौळ, सूकर > सोर। लौकिक संस्कृत में य की अपेक्षा य श्रुति का सध्यात्मक ओ रूप अधिक मिलता है। गढ़वाली में ओ और औ दोनों रूप सम्भव हैं। गढ़वाली की घ ध्वनि बहुधा जब सधि नहीं करती तो प्रायः य म परिणत हो जाती है। य को कभी शब्द के साथ जोड़ देने की प्रवृत्ति भी पायी जाती है जैसे गाम श्याम परेगान परयासान। य श्रुति का मुख्य आधार प और म ध्वनियाँ हैं।

## स्वरों की उत्पत्ति

गढ़वाली म प्रयुक्त स्वर ध्वनियाँ की उत्पत्ति इस प्रकार सम्भव है।

## अ ध्वनि का मूल

प्राचीन भारतीय आयभाषा के अ से जसे—

भणा < जन, दइ < अधि सत्न < गत्य।

स्वराघात के अभाव म प्राचीन भारतीय आयभाषा के आ से,

अगाश < आकाश निरवार < निरावार,

वत्वाणी < वात पानीय, अळमो < आलस्य,

पगाण < पापाण, कवासी < कार्पासी,

वमगाळ < वर्पासाल, मग्वाढी < गाव वाटिका।

प्राचीन और मध्यकालीन आयभाषा व इ, ई से,

कगो < कीदग वमूत < विभूति, परषो < परिषय

कयो < कियत, उगो < उनिद्र जोन < ज्याति

काणसो < कनीयस्।

प्रा० भा० आ० भा० य उ, ऊ (विशेषतः मध्यग) से

गरो < गुक्, मणूम < मणुप्य, घत्तर < चतुर,

वस्तु < वस्तु कुखडो < कुक्कुट, कत्य < म० आ० भा० कत्य < कुन ।

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ऋ से,

मौळीक < मुकुलीकृत भावत < मान + पुत्र,

ठकार < शृगार

स्वर भक्ति से,

जुगम < युगम, विधन < विघ्न, नेतर < नेत्र ।

घ्रा ध्वनि का मूल

प्राचीन भारतीय आयभाषा के घ्रा से,

क्वात < ववाय, व्याणो < विमान, लीखा < लिखा ।

समुक्कन व्यजन के पूववर्ती ष से,

माये < मस्तके, आधि < अस्ति माल < मल्ल, राता < रक्ताक,

वाङ्गनू < वल्ल रूप वाङ्गडी < रकटी, माम्मो < मम्मक

पायो < प्रम्य, आछरी < अप्परा, सामल < मवल, पाछ < पश्च ।

इस प्रकार द्वित्व वर्णों से पूव का ष घ्रा से परिणत हो गया है ।

ससृष्ट के ष घ्रा तथा घ्रा ष के सयोग अथवा स्वर सकोच से,

अ-यारा < अघकार, काठार < काष्ठागार, कल्यार < कल्याहार,

अग्वाल < अकमाल, खल्याण < खलस्थान, ऐत्वार < आन्तित्यवार ।

द्वित्व व्यजना के पूव प्रयुक्त ऋ से

माटो < मृत्तिका, माकल < शृङ्खला, माठ < मूठ ।

इ ध्वनि का मूल

प्रा० ना० आ० भा० के इ जोर म० आ० भा० के इअ < इक, इका से,

निमो < निम्बुक, मुठि < मुष्टि, पातगी < पत्रिका ।

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ष से,

लिसो < लणक, जिउरा < यमराज वरिस < वष, उत्तिम < उत्तम,

रिटणो रिडणो < पयटन, छिमा < यमा । इत्ये < मध्यकालीन आय-

भाषा इत्ये < प्राचीन भारतीय आयभाषा षत्र ।

प्राचीन भा० आयभाषा के ऋ से

रिक् < कृक्ष, किरमोलो < क्रमि + ल, मिरतक < मतक, सियाळ <

शृगान, पिऊ < धन हियो < हृदय ।

प्राचीन भारतीय आयभाषा ए तथा ऐ से,

खितरपाल < श्वेतपाल, मिवान < शवाल ।

ई ध्वनि का मूल

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ई से,

गौग, गौन घनी < उरणो, सगती < सगार्थो ।

अत्य स्वर के लुप्त हो जाने पर प्रा० भा० जा० के इ से,  
तीथ<तिथि, हीस<हिमा, जीव<जिह्वा, इस्ति<म० जा० भा०  
इमिसि<ईपत ।

प्राचीन भा० आयभाषा के उ अथवा म० आ० भा० के—य से,  
बाई<वायु आयु<आई राक रैव<राजुव ।

प्राचीन भा० आयभाषा के ऋ तथा ए से,  
तीस<तृपा, पीट<पृष्ठ, डोट<दृष्टि, मलीच<मलच्छ ।

#### उ ध्वनि की उत्पत्ति

प्राचीन भा० आयभाषा के उ स, यथा—

तुडा<कठा, सुद<सुधि उच्छौ<उत्सव ।

प्राचीन भा० आयभाषा के ऊ से

भुइ<भूमि, 'धुव<ध्रुव सुप्पा<सूप, सुज<सूय,  
धुप+डो<स्तूप, सुध्र<सूय ।

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ओ तथा (विसर्ग)अथवा सु प्रत्यय स  
धुरोध<त्रोध, भणू<जनो—जन ।

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ऋ से,  
भाउज<भात जाया मुडया<वद्ध ।

विभी व्यजन स सयुवन व से,

सुभी<स्वभाव मुपिना<स्वप्न, सुँता<स्वण ।

#### ऊ की उत्पत्ति

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ऊ स,  
ऊन<ऊण, भूत<भूत, बीउ<वधू ।

प्राचीन भा० आयभाषा के उ स

अमूर<असुर, पूच<पृच्छ, पूठा<पुष्टा, ऋठ<रुद्र, कूल<कुल्या,  
बूढी<बुटी निहूर<निष्ठुर, मूर<मुरा, गूव<गुचि ।

ओ ओ स यथा—

जूगत<योग्य, पूप<पौप, गूस्पू<गोस्वामी दूण<द्रोण, बूणो<बाण ।

गद के अंत की भव ध्वनि स,

भरू<भरथ, सडू<सधक, दानू<दानव ।

#### ए, ऐ की उत्पत्ति

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ए से,

नँ तु<वेत मजे<मध्य बेँल्ल<बेना जँ ठो<ज्येष्ठ,  
ए वली<एक+स ।

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ऐ से,

## स्वर ध्वनिमाँ

सैंज < सैंम्पा, ते ल < तल ।

प्राचीन भा० आद्यभाषा के अ तथा आ से,

मगध < म० आ० भा० मक्कह < मक्क, मेडका < मडक, पटलो  
< पटन, केमू < कमुक ।

प्रा० भा० आ० भा० की इ ध्वनि स,

छेमी < गिम्वा, दउदर < दरि, धमेली < धम्मिय  
पवनर < पवित्र, चरत्तर < चरित्र, समत < शिम्बत ।

य अघवा व के नाथ स्वर मजोग म,

वेड < म्मविर, रम्बे ई < रमवनी, कलऊ < कन्धवन  
उवइ < ताय़ा परस पररव ।

## ऐ ध्वनि का उत्पत्ति

प्राचीन भारताय आद्यभाषा के ऐ स

बद < बैद्य, दव, कनाम ।

प्राचीन भा० आद्यभाषा के आ से,

ऐचलू < आचल मत < मातृगूह, सैत < स्मात् ।

य क साय हई स्वर सचि म,

सभ < समय, परद्धिन < प्रायश्चित्त निच्छ < निश्चय रामेण < रामायण ।

प्राचीन भारताय आद्यभाषा के ए स,

ऐषु < एषम पणा < प्रदान ।

हकार के लोप तथा अवशिष्ट स्वर की पूव स्वर के साथ मत्री हो जान स,

गल < ग्राहक भसी < महिषी, गैर < गह्वर ।

उद्वत्त स्वरा व साय पूव स्वर की मत्री ने,

रण < रमणी, नैल < नगर, स्वण < स्वामिनी,

पैनरवाण < पन्त्राण वैण < भगिनी ।

## ओ ध्वनि की व्युत्पत्ति

प्रा० भा० आ० भा० क ओ तथा औ से

बाठ < जोष्ठ, जोतो < योत्र तथा गारो < गौर ।

ससृत्त के अ से,

मध्य भारताय आद्यभाषाओं म ससृत्त की प्रथमा विभक्ति लुप्त हो गयी ह किन्तु हिनाली वालिया म यह ओ (अथवा उ) रूप म शब्द क साथ ही जुडी मिलती है । ओ ससृत्त म भी विद्यमान था और बाद म प्राकृत म भी रहा । यह अत्त (सु ) का प्रतिरूप है । गडवाला म यह पुलिय गण म सवय विद्यमान है

बाळ < बाल, पाला < पाल, सूरु < गूर, कुळओ < कुवुट ।

य तथा य ध्वनि क पव स्य के साथ ही ससृत्त के

परचो < परिचय, कोदो < कोद्रव, मल्यो < मलय ।

उ, ऊ से,

सत्य यह है कि उ तथा ओ ध्वनिया परस्पर परिवर्तनीय हैं। गढ़वाली म शब्द के अन्त में जब ये ध्वनियाँ होती हैं तो इनका ऊ अथवा ओ उच्चारण दोनों चलते हैं जैसे जाना, जाणू, कोदो कोदू आदि । शब्द के प्रारम्भ और मध्य में भी कभी इस प्रकार के परिवर्तन उपलब्ध हो जाते हैं जैसे समोदर < समुद्र, आदर < उदर आदि ।

उ, ऊ की ओ में इस प्रकार की परिणति प्रायः समुक्त व्यंजना के पूर्व होती है

तोमी < तुम्बक कोख < कुशि मोल < मूल्य ।

प्रा० भा० आयभाषा की ओ ध्वनि से,

चोच < चचु, मोळ < मल आदि ।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि गढ़वाल के कुछ भागों में ओ का उच्चारण कुछ ओ का सा होता है बड़ा बोंडा बन वोंण ।

ओ ध्वनि का मूल

प्राचीन भारतीय आयभाषा के ओ तथा ओव या आव से

गो > गौड़ी, औत < आवत लौग < लवग भौन < भवन उच्छो < उत्सव

जो < यव सुभो < स्वभाव ।

प्राचीन भारतीय आयभाषा के उ से

काती < कुन्ती, ताद < तुद ।

एक के मध्य में आने वाले प, म, य से,

मोत < सपत्नी, औना < अपुत्रक वौळ < कमल गौत < गो मूत्र ।

मध्य में त् व लोप हो जाने पर ओ तथा उ के संयोग से,

चौरी < पत्वारिका, चौव < चतुष्क, चौपो < चतुष,

वौळ < कुन्तल वौळो < वातुल ।

## स्वर परिवर्तन

प्राकृत और अपभ्रंश तक आते-आते भारतीय आयभाषा ध्वनि सम्बन्धी अनेक परिवर्तनों में होकर आगे बढ़ी है । मध्य भारतीय आयभाषाओं को ये परिवर्तन उत्तराधिनार में प्राप्त हुए हैं । गढ़वाली में इस प्रकार के अनेक परिवर्तन स्वरों के पारस्परिक विनिमय, दीर्घाकरण, ह्रस्वीकरण स्वर-संकोच सप्रसारण, स्वरभक्ति आदि रूपा में हुए हैं । स्वरों की उत्पत्ति सम्बन्धी अध्ययन से यह स्पष्ट है ।

गढ़वाली में प्राचीन तथा मध्यकालीन आयभाषा के अनेक स्वर निम्न होकर लुप्त हुए हैं । कइया का बहुत ही अस्पष्ट, अपूर्ण तथा लुप्त होना हुआ उच्चारण

## स्वर ध्वनियाँ

बड़ी कठिनाई से पकड़ म आता है। स्वराघात के कारण स्वर लोप के अनक उदाहरण मिलते हैं।

## आदि-स्वर

गड़वाली में आदि-स्वर प्रायः सुरमिल मिलते हैं, किन्तु स्वराघात मुख्य अर्थात् पर न होने के कारण ह्रस्व का प्राप्त होती ध्वनियाँ प्रायः लोप हा गयी हैं।

वासो < आवास, हार < आहार, ह्वार < अह्वार, सीक < इपीका, गुठी < अगुठिका, कटठा < एकस्थित, नाज < अना, हगण < अहगण, जी < आया, इति < ति (काटी' ति क्रिवाइ), रण (-वण) < अरण्य।

स्वराघात के कारण जहाँ स्वर लुप्त नहीं होता वहाँ कहीं ह्वार और र या सकार का आगम होता है

तिवसू (इसू > इवसू) हवाम < अम्यास, रीस < र्ध्या, हीर < अपर।

जसा कि स्वरा की उत्पत्ति सम्बन्धी अध्ययन से स्पष्ट है, गड़वाली में आदि स्वर में इन रूपा में परिवर्तन हुए हैं

१ मयुवन व्यजना के पूर्व प्रयुक्त आदि स्वर दीर्घ हो जाते हैं

भक्त > भात, मिधा > भीष।

२ स्वराघात के अभाव में दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं

मूय > मुज, सौभाग्य > मुआग, आलस्य > अँलसा।

३ ओ औ स्वर ज्यों के त्यों मिलते हैं। फिर भी स्वराघात के कारण ह्रस्व हो जाते हैं और कभी उ में परिणत हुए मिलते हैं।

४ प्राचीन भारतीय आवभाषा के अ, इ, उ, ऋ, ए, आ स्वर एक-दूसरे के स्थानापन्न बने भी मिलते हैं

वायु > वाई, बिदु > बुद तथा वदु। उर > आदर।

५ उदवत्त स्वर अ, आ, इ, उ अपने पूर्व स्वर में मन्त्री कर लते हैं सपत्नी > सौत नाम > नौ, खदिर > खर माहित > म्वत, वधिर > वैरो। मध्यम व और य भी पूर्व स्वर से मन्त्री कर लते हैं अम, घवल > धौलो, भय > भ, नवन > भौन।

## मध्य-स्वर

गड़वाली में मध्य स्वर लोप के जा उदाहरण मिलते हैं वे उसे भाग्यीय आवभाषा के मध्यकालीन विकास से उत्तराधिकार में मिल प्रतीत होते हैं।

साधारणतः उनमें अ, आ का लोप मिलता है। इ ध्वनि या ता निवृत्त अथवा अनि ह्रस्व हुई मिलता है या उदवत्त स्वर के रूप में वह पूर्व स्वर में मन्त्री कर लती है भगिनी > बण, प्रहर > पॅर। इससे विपरीत स्वराघात के कारण दीर्घ ई



सुदीर्घ हो जाता है। स्वराघात के सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि जहाँ अन्त में भारतीय आयभाषाओं में व्यंजन ध्वनियाँ के सस्वर उच्चारण सम्मान हात जा रहे हैं, वहाँ गढ़वाली में व्यंजन ध्वनि के साथ स्वरवदिक काल की तरह पूरी तरह उच्चारित होते हैं। कुछ अन्त विशेषताएँ या हैं

(क) संयुक्त व्यंजनों के पूर्ववर्ती स्वर पर बल पड़ता है, जैसे ग'ज्जा, खा'द दे'द, मि ठठो, गि'च्चो सा'त्तू।

(ख) यदि तीन स्वर ध्वनियाँ का शब्द है और मध्य की ध्वनि हल्का है तो स्वराघात मध्य में होता है जैसे, बिज'ली वादु ली नक'ली दग डी, ह्म'दी।

(ग) स्वराघात लुप्त होनी अथवा हुई स्वर ध्वनि के पूर्व स्वर पर पड़ता है म नखी, क मल, च'ट अ पडा।

(घ) दा अक्षर के शब्दों में स्वराघात पहले स्वर पर होता है ही र (और) द'शा आ ग आ'म, जा'ल।

(ङ) तीन अथवा अधिक अक्षरों के शब्दों में अन्त के तीसरे अक्षर पर स्वराघात होता है यदि उससे पहला स्वर दीर्घ हो बुराग', कविलाग', पराणि', सुबदार'।

## व्यंजन ध्वनियाँ

गढ़वाली की व्यंजन ध्वनियाँ इस प्रकार हैं

स्पर्श स्पर्श मधर्मी नामिक्य पार्श्वक सुठित उल्थिप्त सधर्मी

कठय	क	ख्					
	ग्	घ्		ङ्			
तालव्य		च्	छ्				
		ज्	झ्	ञ्			श
मूर्धन्य	ट्	ठ्					
	ड्	ढ्			ळ्	ण्	
यत्न्य				व्ह्	ल्	र्ह्	स्
					व्ह्	र	
दय	त्	थ्					
	द	ध्					
मोळय	प्	फ्					
	ब	भ्		म्	म्ह्		
				स्वरप्रमुञ्चो	ह	अपस्वर	य्

गढ़वाली की अधिकतर व्यंजन ध्वनियाँ हिन्दी और उसकी बालियाँ में पायी जाती हैं। ङ और ण दो उसकी विनिष्ट ध्वनियाँ हैं। कठय ध्वनियाँ (क, ख्, ग, घ) का उच्चारण स्थान हिन्दी की अपर्या गढ़वाली में कुछ पीछे प्रतीत होता है। मभवत प्राचीन आयभापा में इनका उच्चारण कुछ वैसा ही था। ङ और ण ध्वनि के सहाय में य ध्वनियाँ अपने उस प्राचीन रूप का स्पष्ट आभास देती हैं।

अवर्गीय (च्, छ, ज्, झ) ध्वनियाँ हिन्दी में मधर्मी मानी जाती हैं। गढ़वाली में ये किञ्चित अधिक सधर्मी हैं और इनका उच्चारण अवर्गीय ध्वनियाँ के उच्चारण के स्थान से कुछ पीछे प्रतीत होता है। गढ़वाल के कुछ भागों में, विनियन जो जीनमार बाबर के निकट पड़ेते हैं अर्वाय ध्वनियाँ का दन्त्य उच्चारण भी सुनने का मिलता है। हिमाचल प्रदेश की बोलियों, नेपाली और राजस्थानी में भी इस प्रकार का उच्चारण विद्यमान है।

अवर्गीय ध्वनियाँ गढ़वाली में भी मूढय हैं। मसूत अ ध्वनि मारोपीय त

का विकास है। गड़वाली में भी विदशा गण्य म त के ट म परिणत होने के उदाहरण मिलते हैं।

त वर्गीय ध्वनियाँ हिन्दी के समान ही हैं। य जोर में महाप्राण ध्वनियाँ हैं पर उनका महाप्राणत्व गड़वाली में बहुत हलका प्रतीत होता है।

प वर्गीय ध्वनियाँ भी हिन्दी में भिन्न नहीं पर गड़वाली में उनका उच्चारण में हाठ हिन्दी की अपेक्षा कुछ आगे बढ़ाने पड़ते हैं।

म् ड, ज ण, न् प्रादि अनुनासिका का उच्चारण कोमल तालु से होता है। इनमें म् ण जोर न् ही अधिक प्रयुक्त ध्वनियाँ हैं। ड का उच्चारण ग होता है और शब्द के मध्य में कभी यह ध्वनि सुनाई देती है भाड ला। अने स्थान का ये ने घट्टण कर लिया है यथा, छुन्नी उइ लाजा, लाया। किन्तु सत्य यह है कि (न समुच्चय व्यञ्जन के रूप में जोर न पथक ध्वनि के रूप में) इन ध्वनियों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह गया है।

ण गड़वाली में उभ्रिप्त परिवेष्टित ध्वनि है। इसका उच्चारण ड के निकट पड़ता है। हिमाली बोलियाँ में मध्यम और अत्यन्त ण हा जाता है। ण से न् ही जाने के उदाहरण विरल हैं। यमें उनमें ण और न् दोनों ध्वनियाँ पायी जाती हैं। ऐसे भी अनेक गण्य हैं जिनमें न् ण में परिवर्तित नहीं होता। प्राकृत में ण आद्य अक्षर के रूप में भी मिलता है गड़वाली में ऐसा संभव नहीं। यमें प्राकृत में भी आरम्भ में न् लक्षण की आज्ञा थी।

न् भी गड़वाली में अत्र दत्त ध्वनि नहीं रही है। अपने उच्चारण में वह ण के पास रहा है। गड़वाल के कुछ भागों में विशेषतः रवाइ त्रोनपुर में न की एक महाप्राण ध्वनि भी मिलती है। हिन्दी की कुछ बोलियाँ में यह ध्वनि विशेष रूप से पायी जाती है। गड़वाली न् और ह दा पथक ध्वनियाँ हैं जैसे नाती और गति (नास्ति), हा ग (जाता है), हानो (सहवा) नीनो।

गड़वाली में म् की अनुनासिकता हिन्दी की अपेक्षा थोड़ा अधिक है। इसकी एक महाप्राण ध्वनि म् ही कुछ भागों में प्रचलित है। यह ध्वनि शब्द के प्रारम्भ में भी आती है तस म्हेक म्हेन, म्हाँव, म्हेँस। मध्य और अन्त में इसका प्रयोग विषय रूप से होता है, बाम्हेण, बरम्हा।

ल गड़वाली की बहु प्रयुक्त ध्वनि नहीं है। उसमें इसके स्थान पर प्रायः उभ्रिप्त परिवेष्टित ल का प्रयोग हुना है। ल ध्वनि सम्भवतः उदा धोलो में बन मान थी जिसका आधार पर ऋग्वेद की साहित्यिक भाषा बनी।<sup>१</sup> ल और ल्ह दोनों ध्वनियाँ ब्रह्मि गम्य में प्राप्त हैं।<sup>१</sup> पगाधी प्राकृत में आकर ल ल होने लगता है। म्मन्त ता ल्म्वर मध्यम ल का विभक्त रूप माना जाता है। गड़वाली में भी

<sup>१</sup> शि० पं यो दि । साहित्य का इतिहास पृ० १४

<sup>१</sup> शि० ब० ग० ग० का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, पृ० १०६

टवर्गीय ध्वनियाँ और र प्रायः ल म परिवर्तित न हा जान हैं, यथा पीडा < पिडा बोल (क्रोड) > काळ, डेग > डळा। पाली और अपभ्रंश मे भी लकार की इस मूष-यौकृत ध्वनि का पदास्त व्यवहार हुआ है। गडवाली म यह पार्श्विक उत्प्राण मूषय व्यंजन है। नव्य भारतीय आयभाषाओं म यह राजस्थानी, हरियाणवी, मराठी गुजराती पंजाबी, सह्या, सिंधी और उर्दिया म भी पायी जाता है। गडवाल के रवाइ क्षत्र म ल, लक स्थान पर ड का ही प्रयोग होता है, काला काटो, काडो। उसी तरह कडजो (कलजा), दाड (दाल)।

ह्ल की महाप्राण ध्वनि है। आह्वान म यह स्पष्ट सुनाई देती है जम, हे ली (ह ली !), उसी प्रकार भेडा का पुकारने म, अह्या ल्ह ह् ! साधन गंगा म भी इसका प्रयोग व्यापक रूप से मिलता है, जस, ल्हैक, ल्हार्क, ल्हमक, र्हाम। लोकगीत की पक्ति हैं गयाळी बी द् ह्स।

ड् की एक महाप्राण ध्वनि ड्ह रूप म भी सुनने को मिलती है जिसमे ड की अपेक्षा महाप्राणत्व की मात्रा कम होती है। वास्तव म गडवाली म ड् का प्रयोग विरल है, उसके स्थान पर ड्ह का ही प्रयोग पाया जाता है जैसे हिन्दी—किताब पढ़ गडवाली—किताब पड ह्। उसी प्रकार र् की महाप्राण ध्वनि र्ह का भी गडवाली म प्रयोग मिलता है जस र्हैत, रहान, रहीत, र्हैस आदि।

गडवाली की र, ड, ल, ल ध्वनिया पारस्पर परिवर्तनीय हैं। वसे र और ड का विनिमय बहुत ही विरल है। र का ल या ल (न का ल नी जैसे प्राकृत म लिम्ब लिम्ब, गडवाली लिम्बू लवर, लोट) हो जाता है पर ल का र रूपांतर सम्व नहीं। र > ल के अनक उदाहरण मिलते हैं दरिद्र दलेद्र स्मरण समलूण निष्कम निष्कम, बदरिका बडाली, शरीर शरील। र और ल का यह विनिमय जाक स्मिक नहीं है। पालि मे दो स्वर ध्वनिया क मध्य म अवस्थित ड, ड बदलकर ल लह हां जाते थे, जस स्फटिक > \*फटिक > फटिक। विद्वानों ने यह निष्कय निकाला है कि प्राचीन काल म आय भाषा की तीन पृथक शाखाआ म र, ल ल के पथक रूप प्रचलित रहे होंगे। बाद मे एकीकरण से यह गिणिलता आनी स्वाभाविक थी।

ह्ल, म्ह र्ह ह आदि महाप्राण ध्वनिया मिलता हैं। ए की परिणति या तो श, स र्म हो गई है या उमका उच्चारण ख रह गया है। ए का ख उच्चारण सस्कृत कान मे ही हो गया था।<sup>1</sup> गडवाल क ब्राह्मण आज भी सस्कृत ए का उच्चारण ख रूप मे ही करत हैं। ग और स गडवाल म दोना ही उच्चारण मिलते हैं किन्तु कुछ भाग में लोम केवल ग का ही बालते हैं और कुछ म स को ही। रवाइ और कुमाऊं म भीमावती गडवाली क्षत्र म स भी ग ही जाता है शेष भाग म लाग ग का उच्चारण भा स ही करते ह। रमोली, उत्तरकाशी आदि क्षेत्रा म सह म परिवर्तित

हा जाता है। सिन्धी, राजस्थानी, पच्छिमी हिंदी, असमी और पूर्वी बंग की बंगला, मराठी आदि में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

ह ध्वनि सघोष और अघोष दोनों हैं। अघोष ह विसर्ग रूप में संस्कृत में विकृत मान था। संस्कृत के विसर्ग युक्त शब्द ओकारान्त (या उकारान्त) होकर गढ़वाली में आए हैं। उनमें ओ ध्वनि के पश्चात् ह ध्वनि अपनी पूर्ववर्ती ध्वनि से मिली हुई आज भी स्पष्ट सुनाई देती है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं उध्व > उन्वोह, नौनोह, बीळोह, गीडाह। यह ध्वनि राजस्थानी और गुजराती में भी पायी जाती है।

गण के प्रारम्भ में महाप्राण वर्णों में ह ध्वनि प्रायः सुरक्षित रहती है जैसे, खोळ खार, छाट, घात, छप्पर, कणा, ठड, डोर, यण, धार, फाळ, भाग आदि। रवांटी में ऐसे उदाहरण अवश्य मिलते हैं जहाँ प्रारम्भ की महाप्राण ध्वनियों अल्पप्राण हो जाती हैं, यथा, भूमि > बुद्ध, भाई > बाई।<sup>१</sup> यह प्रवृत्ति समवत वदिव संस्कृत में भी थी। गढ़वाली में प्रारम्भ का हकार सुरक्षित मिलता है किन्तु मध्य और पदांत की महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण होकर ही रहती है, जैसे, व्याघ्र > वाघ, साँझ > साँज। पर यह नियम केवल सघोष ध्वनियों पर ही अधिक लागू होता है। ह यदि पदान्त का भाग हो तो उसका प्रायः लोप हो जाता है और पूर्व स्वर से मिल जाता है कहीं > काँ नहि > नैँ सिंह > स्यू।

मध्य की महाप्राण ध्वनियों में कभी हकार का लोप सा मिलता है। उस अवस्था में ह अपने पूर्व वर्ण से मिल जाता है, यथा जहर—जहैर, लहर—लहैर, सहज—सहैज, बहिर—भर, दुहिता—धिया। ऐसी अवस्था में वह अपने पूर्व वर्ण में महाप्राणत्व ले आता है। किन्तु इससे भी एक भिन्न स्थिति वह होती है, जहाँ हकार का लोप बननी में तो हो जाता है किन्तु उच्चारण में उसका अवस्थान सूचित होता है। ऐसी ध्वनि को डॉ० चाटुर्ज्या ने आश्रयित या पुनर्द्रुत कहा है और उसे [ ] रूप में प्रकट करने की विधि अपनायी है।<sup>१</sup> गढ़वाली में ऐसी ध्वनि के अनेक उदाहरण हैं गहन देन, प्रहर पर। इस प्रकार हकार के लोप से स्वर वियोग बदन जाता है।

मध्य में ही बाहरी साक्षात् की भाषाभाषा विनयन पञ्जाबी हिन्दी, गुजराती मराठी बंगला राजस्थानी उडिया और पहाड़ी में महाप्राण एव हकार के विभिन्न रूप मिलते हैं। गढ़वाली में अनेक गणों पर हकार का जागम भी हो जाता है। हकार की वृत्ति की दृष्टि में डॉ० चाटुर्ज्या ने भारतीय आय भाषाओं को दो

१ परिनिष्ठित गढ़वाली में दिना और उमदा शब्दों की भाँति बुद्ध अन्य उदाहरण मिलते हैं नै, बैल < भौला साँझ < श्रमना, साँझ < पाँचैक भाँति।

२ डॉ० सुनिभुवार चाटुर्ज्या 'सामयान' भाग, ५० पृ०

बागों में विभक्त किया है और हिमाली भाषाओं का उस वर्ग में रखा है जिनमें हकार की विकृति नहीं होती।<sup>१</sup>

य और घ ध्वनियां श्रमण ज और घ में परिणत हो जाती हैं किन्तु वे अपन मूल में सुरभित भी मिलती हैं। प्राकृत में सञ्चृत म का दुहरा विकास हुआ है। सञ्चृत का स्वर मध्यगत म उनमें लुप्त हुआ मिलता है। गढ़वाली में वह पूव वर्ण से मंत्री बन लेता है। वास्तव में म और घ के उच्चारण में वदिक काल में कुछ भेद था, जो बाद में प्राकृत ने अपनाया। सनवत यही विभिन्न उच्चारण वाला य (य अद्ध स्वर नहीं) ज में परिणत हो गया। इसी प्रकार व का उच्चारण भी विशेष रूप से गुण था।<sup>२</sup> व के इसी गुण उच्चारण का विकास व रूप में हुआ होगा। गढ़वाली में म और व के ये दोनों रूप मिलते हैं यल, जिऊरा (यमराज), जस (यस), यान, वन् (वलीवद), वन (उसने), वदना (वेदना)। जहा य और व अद्ध स्वर की तरह उच्चारित होते हैं वहाँ व या तो सुरक्षित मिलते हैं या ध इ, उ ए रूप में परिवर्तित। किन्तु अपन दूसरे विकास में (जिसमें वे व्यञ्जन ध्वनि का रूप धारण कर लेते हैं) वे ज और व हो जाते हैं। इसके विपरीत ज के म रूप में परिणत होने के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं लाजा > लाया, राजन > राया, राऊ। म भी कभी घ रूप में परिणत हो जाता है, जैसे न्याम > न्याव > चो। प्राकृत में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान थी। (पिणाल, अनु० २५४)।

अरबी फारसी और उर्दू के प्रभाव से इ, छ, घ, ज आदि का विन्दीयुक्त उच्चारण आज हिन्दी में सुपरिचित है किन्तु कई पवतीय भाषाओं के अध्ययन से इस विषय पर नया प्रकाश पड़ता है। परिनिष्ठित गढ़वाली में तो नहीं किन्तु रवाली और जैनपुरी बोलिमा में इस प्रकार के उच्चारण मिलते हैं और इस कोटि की अरबी फारसी ध्वनियों के अतिरिक्त भी कई और ध्वनियां पर भी ऐसे उच्चारण का आरोप मिलता है। य ध्वनियां हैं—इ, छ, घ, और ज। किन्तु वस्तुतः यि गनीरता से विचार किया जाए तो इनका उच्चारण रवाली या अन्य पवतीय ध्वनियां में विदगी उच्चारण जैसा नहीं है। इस प्रकार का उच्चारण आदिवासीयों में व्यापक है। पवतीय बोलियों में यह उच्चारण उन्हीं के प्रभाव में आया होगा। विशेषी उच्चारण से यह अगत भिन्न है। उदाहरण के लिए गु ग और घ व बीच का उच्चारण है। ज का उच्चारण करत हुए जीन का अग्र भाग चपटा करके दाता के मूल की ओर झुकाना पड़ता है और उसमें ऊमाभरा की नाति मिश्रण का आभास मिलता है। इस प्रकार यह उच्चारण महाप्राणधोष उच्चारण है। इसी प्रकार से श्वसित अघाप, सधर्षी, वास्त्य, स्वरयत्रमुखी ध्वनि है। य और छ का उच्चारण भी इसी प्रकार होता है जिसमें बठोर शीर्षकार की

१ डॉ० चड्डा, राजस्थानी भाषा, पृ० २४

२ डॉ० व्यम म्पूत का म पाठान्त्रिय अध्ययन, पृ० १४४

ध्वनि सुनाई देती है क्योंकि इनके उच्चारण में मुह खुला रहता है और श्वास वायु को तेजी से निकलना पड़ता है। इस प्रकार इन ध्वनियों का उच्चारण बस, छत में ढलता हुआ प्रतीत होता है। गिमला बागडा कुल्लू (पश्चिमी पहाड़ी) की कई बोनिया, अशत नेपाली गढवाणी की र्वाल्टी उपबोली बागडू आदि में यह उच्चारण पाया जाता है। संभवतः बागडी और देहात की गुजराती में भी इस प्रवृत्ति के किंचित् दृग्गन होते हैं।

### व्यंजनो की उत्पत्ति

मध्य पहाड़ी की व्यंजन ध्वनियों की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है

#### क ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्राचीन भारतीय आयभाषा के क से,  
काद < कदम कडाळी < कदरिका।
- (२) प्राचीन भारतीय आयभाषा के क और कृ से,  
केमू < कमुक, कुरोध < क्रोध, विमाण < कृपाण, विक्ट < विकृत।
- (३) प्राचीन भारतीय आयभाषा के क्क और क्क से  
काक् < क्कद चौक्क < चतुक्क।
- (४) प्राचीन भारतीय आयभाषा के क्क और क्क से  
कक्कल < क्कक्कल, छिवक्कल < गतक्कल।
- (५) प्राचीन भारतीय आयभाषा के क्क से,  
भीक्क < भिक्षा सीक्क < शिक्षा।

#### ख ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्राचीन भारतीय आयभाषा के ख से,  
खल्याण < खलस्थान खर < खदिर।
- (२) प्राचीन भारतीय आयभाषा के ख से,  
खेप < खप पाखो < पखव काख < कख खारो < खार, खेम <  
खेम आवर < अखर खोखू < खोग खीन < खीण।
- (३) स्वरापात युक्त क से,  
खुडो < कुग पाखडो < प्रखोष्ठ, खीळ < बलि।
- (४) प्राचीन भारतीय आयभाषा के ख्म  
खिगान < विपुवन दोग < दोप, बला < वर्षा भाख्या < भाषा,  
खिड < विप, खितिद < निपिड, पाखड < पापण्ड।
- (५) प्राचीन भारतीय आयभाषा के ख्क, ख्क से,  
खाना < ख्कद, बाखडो < क्वटी।

ग ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्रा० भा० आ० भा० क ग से,  
गाहू < मोहू, सौंगो < सुगम सग < स्वग, गौ < ग्राम, गास < गाम  
गैछ < ग्राहक ।
- (२) प्रा० भा० आ० भा० के ग से,  
गाहू < अगता, गागर < गगर ।
- (३) ग्न तथा ग्य से,  
लाग < लग्न, आग < अग्नि, नांगो < नग्न, तथा भाग < भाग्य,  
जोग < योग्य ।
- (४) प्रा० भा०, आ० भा० की ज ध्वनि के उच्चारण परिवर्तन से,  
ग्यान < पान जग्म < यज्ञ ।
- (५) प्रा० भा० आ० भा० क क् स  
सुगर < गूकर वागा < वाक्, जगाग < आवाग, गात्रल < कज्जल  
सोग < सोक डागीण < डाविनी, गुद्गाल < कुद्दान ।
- (६) प्रा० भा० आ० भा० क स से,  
पग्म < पन्न, रागम < राक्षम, जग्म < यज्ञ, माग्म < मौल, विरग्म <  
वृक्ष, रग्मा < रक्षा ।
- (७) जब ग् अथवा स ध्वनि के पूर्व अनुस्वार होता है तो उसके साथ ग  
ध्वनि भी सुनाई देती है जैसे, समार (समार), वग्ग (वग्ग), चाग्ग  
(अग्नेयी चात्) ।

घ ध्वनि का मूल

- (१) प्रा० भा० आ० भा० तथा म० भा० आ० मा० के घ से,  
घूटणू < म० मा० आ० भा० √ घूट, धाम < घम ध्यू < घृत, बाघ  
< द्वाघ ।
- (२) प्रा० भा० आ० भा० के द घ से,  
उघाहणो < उद्घाटन ।
- (३) ग् के आगे हकार के अपसरण से,  
घर < गृह घेंटुहा < गहू-नीह ।

च ध्वनि का मूल

- (१) प्रा० भा० आयभाषा के च् से  
चौर > चमर, चित्त चरण चाव < चाच, चाच < चचु ।
- (२) प्राचीन भारतीय आयभाषा के च् च् ट, च् ट च्  
नाच < नृच, मलीच < म्लेच्छ, सच < सत्य ।



## छ ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्रा० भा० आयभाषा के छ स,  
छत्तर < छत्र, छेणी < छैनिका छमना > छलना, छानी > छादनिका।
- (३) प्राचीन भारतीय आयभाषा के श् से,  
छेमी < गिम्बा, छछर < गनिश्चर।
- (३) प्रा० भा० आ० भा० के ष स  
माणछो < मानुष, मारछो < मारिष।
- (४) प्रा० भा० आ० भा० के श्च से,  
पाछ < पश्च, बिछी < वृश्चिक, छछर < क्षनिश्चर।
- (५) प्राचीन भा० आ० भा० कं क्ष से,  
छालणो < प्रक्षालन छिमा < क्षमा, छुद्या < क्षुधा, छिन < क्षण,  
लछन < लक्षण आदि।
- (६) प्रा० भा० आ० भा० के त्स तथा प्स से,  
उच्छो < उत्सव, वाछलो < वत्सरूप, माछो < मत्स्य, तथा ब्राछरी  
< बप्तरा।

## ज ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्रा० भा० आ० भा० के ज् से  
जतम् < जम ज्यू < जीव जोत < ज्योति भोज < भातुजाया।
- (२) प्रा० भा० आ० भा० के ष से,  
उपाजू < उत्पाद्य छाजो < खाद्य, बाजो < बाद्य आज < अद्य।  
अभीज < म० आ० भा० अभेज्जा < प्रा० आ० भा० अविद्या।
- (३) प्रा० भा० आ० भा० के ज्व तथा ष्ज से,  
जर < ज्वर उज्जालो < उज्ज्वल।
- (४) प्रा० भा० आ० भा० के ष तथा य्प से,  
सजोग < संयोग, सैज < गय्या वारज < वाय।
- (५) प्रा० भा० आ० भा० के ष्य से,  
सजा < मध्या मजे < मध्ये, सुजणो < शुष्य—, अलमणो < अवहृष्य,  
बांजा > बध्या।

## झ की उत्पत्ति

- (१) प्रा० भा० आ० भा० की झ ध्वनि स,  
भट (भटति)।

झ वास्तव में अत्रयान ध्वनि है। इस ध्वनि के अधिकांश गान दगाज हैं और अपने मूल में अनुबर्णारमक अथवा ध्वन्यारमक हैं। कुछ शब्द इस दृष्टि से दगनीय हैं।

भुसभुम (उपा) भकभक, भटको, भम, भुमलो भूमक, भिमभिम भन  
भन, भौड, भट भयाम् भर, भाडणो, भव भावी, भूर, भमाको भिलमिल  
आदि ।

शब्द के मध्य म इस ध्वनि का प्रयोग बहुत कम होता है । बहुधा मध्य तथा  
अंत की भू ध्वनि अल्पप्राण होकर ज म परिणित हो जाती है ।

(२) स्वरापात के कारण ज के महाप्राणीकरण से,  
ज्वाला < भळ, भणो < जन आदि ।

ट ध्वनि की उत्पत्ति

(१) सस्त्रुत के ट, टव टय ट्ट म

खटुलो < खटवा टुटी < व्रुटय नाठ < नष्ट ।

(२) प्रा० भा० आ० भा० को ट ध्वनि से  
कोष्टक < कोट, साष्टी < पाष्टिक, ढीट < दृष्टि, सेंट < श्रेष्ठ ।

( ) प्रा० भा० आ० भा० क ठ से अल्पप्राणित होकर,  
हाट < ओष्ठ, पाट < पाठ सटट < शठ ।

(४) प्रा० भा० आ० भा० के त तथा त से,  
निबटना < निवत्त विवट < विकृत, काटणो < कतन ।

(५) प्रा० और म० भा० आ० भा० के थ अथवा त्य से  
जाट < म० भा० आ० भा० जुत्य < यूय ।

(६) प्रा० भा० आ० भा० के टट से  
अटाली < अटटालिका, कुटणपाटी < कुटटनी, पाटण < पटटन,

हाट < हटट ।

ठ ध्वनि का मूल

(१) प्रा० भा० आ० भा० के स्त, स्थ से  
पठाल < प्रस्तर ठौं < स्थामन, पठीणा < प्रस्थान, ठुलो < स्थूल,

कटठा < एकस्थित ।

(२) प्रा० भा० आ० भा० के षठ तथा ष्ट से,  
काठगो < काष्ठक, कोठार < कोष्ठागार, निठूर < निष्ठूर, गोठ <

गोष्ठक, पूठा < पुष्ठा, अठ < अटठम < अष्ट ।

(३) प्रा० भा० आ० भा० की थ ध्वनि से,  
माठो < मथर, गाठो < ग्रथ ।

(४) प्रा० भा० आ० भा० की छ तथा ढ ध्वनि से, यथा,  
वठया > वद्या, वाठो > वद्ध ।

ड ध्वनि का मूल

(१) प्राचीन भारतीय आद्यभाषा के ड से,

मुडारा < मुडारि, डण < डाकिनी ।

- (२) प्रा० भा० आ० भा० क ट ल से,  
काडो < कटक । इस अवस्था में यह ध्वनि ड रूप में अधिक मिलती है जैसे, पुण्डो < पुटक, वूडी < कुटी, लाण्डो < लकुट, कीडो < कीट, चडा < चिपिटन अक्षोण < अक्षोट तथा मडो < मत । साण्डो < सपुट भड < भट वितु पडुगा < पटक ।
- (३) प्रा० भा० आ० भा० के ड से  
पूडो < पुडू
- (४) प्रा० भा० आ० भा० के य स,  
टट ( घट ) < तत्र,
- (५) प्रा० भा० आ० या के ठ द, द्र ध से,  
वैड < वठ, लुडो < कुठिन, डौड > दड ।  
डौस > दशक, रूड > रुद्र बाड > बाधा, गाड > गाध ।

### द्वि ध्वनि की व्युत्पत्ति

- (१) प्राचीन आय भाषा के ड, ड से

डाई (त्रि अक्षर तृतीय), डेड़े (द्वि अक्षर) बड़णा (बधन) आदि ।

ट वर्गीय ध्वनियों गढ़वाली में बहुत सीमित हैं । महाप्राण ध्वनियों तो वस भा अल्पप्राण हो जाती हैं । द तथा ड तथा अति अप्रयुक्त ध्वनियों हैं । य प्राय ड तथा ड में ही परिणत हुई मिलती हैं । अधिकांश ट वर्गीय ध्वनियों अनुकरणत्मक हैं और ध्वनि अथवा अनुभूति के बर्णन पदा का व्यवहार करती प्रतीत होती हैं । यहाँ कुछ शब्द दिए जा रहे हैं

टटाटर (बमनम्य), टक (साधमा) टणी (तज पीठा) टिप्पम (सम्पक) टरटरो (अस्यान्टि) ठमठम (ठूमकता), ठसाक (हृत्का स्पण) ठेमाम (गव), ठेमण्णा (घोना) ठकटक, ठनठन ठप (खन्ना) ठुरणा (उच्चाई से गिरपटना), हम्क, डमाक (आघात), डिमडिम डमडम । ये शब्द वास्तव में भाषा निर्माण की प्रारम्भिक प्रवृत्ति का द्योतन करते हैं ।

गढ़वाली में ण का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलता है । किसी शब्द का प्रारम्भ ण में नहीं होता किन्तु मध्य और अंत में ण स्थान पर ण शब्द की प्रवृत्ति मिलती है किन्तु इसके अपवाद भी हैं । यह प्रवृत्ति प्राकृत और अपभ्रंश में भी सामान्य थी ।

### त ध्वनि का मूल

- (१) प्रा० भा० आ० भा० के त से, जम  
तामो < ताम्र, तात < तनु, भूरत्या < भृय, तळा < तल ।
- (२) प्राचीन भारतीय आयभाषा क नू स

दानी < नात्रिणा, रीतला < राजपुत्र + ल, गात < गाग ।

- (३) प्राचीन भारतीय आयभाषा व वत्त, तथा प्त से,  
भात < भक्त, रीतो < रिक्त, सातु < सक्तु, सूता < सुप्त,  
नाती < नप्तव, ताता < तप्त ।
- (४) प्राचीन भारतीय आयभाषा के त तथा त्त म,  
वातलो < वतल, वात < वाता, वाँत < आतव, उदमाता < उमत्त  
प्रतूत < प्रत्युत्तर, उताणा < उत्तान, धिन < धून ।
- (५) प्राचीन भारतीय आयभाषा के थ तथा द से,  
ववात < ववाय, सतभी < सद्भाव, पतरवाण < पदप्राण ।

य ध्वनि का मूल

- (१) प्राचीन भारतीय आयभाषा की स्थ या स्त ध्वनि से, यथा,  
धिर < स्थिर धान < स्थान, धी < स्थ, धल्लो < स्थूल,  
धेल < स्थविर, मध < मस्तके, नाधि < नास्ति, आधि < अस्ति,  
धण < स्नन, धुप + ङो < स्नूप ।
- (२) प्राचीन भारतीय आयभाषा की ध, त और त्र ध्वनि से,  
वधौ < वात, अमिध्या < अमिन, कौधोक < कौतुक,  
दायहा < दात्र, यत्र < यत्य, सत्र्य < सवत्र, अण्य < अयत्र ।

द ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्राचीन भारतीय आयभाषा के द से,  
दिआ < दीप, दुव + नो < दूर्वा ।
- (२) प्राचीन भारतीय आयभाषा के त से,  
सगराद < सत्रान्ति, उकराद < उत्कर्त्ति ।
- (३) प्रा० भा० आ० भा० के द्र तथा दृ से,  
दाण < द्राण, कादा < कोद्रव, उणदो < उनिद्र, छे < छिद्र,  
करीदा < करमद भाद < आद्र ।
- (४) अल्पप्राणित होकर घ से,  
अपरया < अपराध, व्याद < व्याधि, औषदा < औषधि,  
मुद् < मुधि, दूद < दुग्ध, दुदलो < दुग्धल ।
- (५) प्रा० भा० आ० भा० के द्र, छ तथा द्र से,  
मदा < सद्य, नवेर < नवेद्य, द < द्रद, सरा < थ्याद्र ।

घ ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्राचीन भारतीय आयभाषा के घ से,  
घामा < म० आ० भा० घम्मिया < घम्मिक  
धुर्वा < धूम्र, घमेली < घम्मिल, धुर्मली < धूमिल ।

- (२) प्रा० भा० आ० भा० की द्व ध्वनि स  
बूध < बुद्धि, विरधी < वद्धि ।  
(२) ह अनुगामी द तथा ध्व से,  
धिपा < दुहिता, धुजा < ध्वजा, धुन < ध्वनि ।

#### पू ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्राचीन भारतीय आयभाषा के पू से,  
पात < पत्र, पौर < पूव, परफूल < प्रफुल्ल, तिरपत < तप्त ।  
(२) प्रा० भा० आ० भा० के प्र से  
पसारणी < प्रसारण, प र < प्रहर, पगार < प्राकार ।  
(३) प्रा० भा० आ० भा० के व अथवा व्य से  
दिप्प < दिव्य, सपत < सबत् ।  
(४) प्रा० भा० आ० भा० के स्म, प्य, प से यथा  
आपडो < आत्मन रूपा < रौप्य, दाप < दप ।

#### फ ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्राचीन भारतीय आयभाषा फ फ तथा स्प, स्फ, त्फ से,  
फल < फल फट < स्पष्ट फिलगारो < स्फुलिंग,  
फटिंग < स्फटिक तथा उफाळ < उतकाल ।  
(२) प, प्य तथा प्र के महाप्राणत्व से  
विफल < विप्लव फरपच < प्रपच फरगा < परगु ।

#### ब ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्रा० भा० आ० भा० के व तथा व्य से जैसे,  
बूध < बुद्धि बीग < व्यग, विधा < व्यधा, बलाण < व्याख्यान,  
बळ < वेला, जीव < जिह्वा ।  
(२) प्रा० भा० आ० भा० के मध्यग प से,  
बवामी < बर्षासी, ध्यवरी < व्यापारी, अव्यामान < अपमान,  
रुबमो < रूपनि मावत < मातपुत्र ।  
(३) प्राणहीन म से  
गारणी < गर्भिणी गयो < दम गावो < गभक् ।  
(४) प्र व से  
यामण < ब्राह्मण, दूवलो < दूर्वा ।

#### भू ध्वनि की उत्पत्ति

- (१) प्राचीन भारतीय आयभाषा के भू मे  
भाग < भक्त, भट < भट भैरु < भरव ।  
(४) प्रा० भा० आ० भा० के वू वू महाप्राणीकरण से,

भेत्तु < बस्तूक भर < बहिर, भगजीर < वनजीर।  
 शेष ध्वनिया अपने उदगम म सस्वृत क ही समान हैं। र और ल परस्पर  
 सम्बन्धित हैं, उछी प्रकार ल और छ भी। गढवाल के कुछ भाग म ग, घ < स हो  
 जाते हैं, वहाँ इसके विपरीत स और प भी स रूप म ही मिलते हैं। ज > य व भी  
 कुछ उदाहरण मिलत हैं जस, प्रजाल > पयार राजुक > रायुक > रँक। ङ ध्वनि  
 ट, र, ल से भी व्युत्पन्न हुई उपलब्ध होती है कुटी > कदी वल्म > बँड तूय >  
 म० बा० भा० तूर > तोढो।

गढवाली म ड ङ ण, म, न आदि अनुनासिका म ड और ङ का अभाव  
 मिलता है। उनका स्थान या तो अनुस्वार न भा ग य जैसी ध्वनिया ने ल लिया  
 है। ण गढवाली म बहुप्रयुक्त ध्वनि है। प्रारम्भ के न को छोडकर मध्यग और  
 अत्य न कुछ अवस्थाओ भे ण म परिवर्तित हुआ मिलता है किन्तु यह काइ सब  
 सामान्य नियम नहीं है। न ध्वनि आरम्भ म सुरमित मिलती है जस नाती, नगर  
 नाश। मध्यग और अत्य न क कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—बचून < बचन भजन,  
 मनखी < मनुष्य। महाप्राण ध्वनिया उम वर्णों तथा स्वराघात और द्वित्व तथा  
 रफयुक्त वर्णों क बाद का न प्राय ण म परिवर्तित मिलता है कटठण < कठिन,  
 फेण < फेन वादण < वधन उत्ताणो > उत्तान। ण > न व उदाहरणा का अभाव  
 है। अत्य न तथा मध्यग म प्राय अनुस्वार म परिवर्तित हुए मिलत हैं उदीपन >  
 उदयो उदीऊँ समत > स्यू। प्रारम्भ का म म्म सुरमित रहता है। सयुक्त वण  
 क रूप म भी म अपना अस्तित्व बनाये रखता है

(१) म < म्व

कुटम < कुटुम्ब, कामळो > कम्बल, सामळ > सम्बल  
 (२) म < म्म

लामो < लूम कुमॉर < कुम्मकार।  
 (३) म < म्म, म म

चाम < चम धाम > धम, मँडा > मत।

### व्यजन परिवर्तन के रूप

गढवाली म व्यजन परिवर्तन के रूपा म कोई नवीनता नहीं है। अधिकाश  
 परिवर्तन प्राकृत और अपभ्रंश के अनुरूप ही मिलते हैं। गढवाली म व्यजन परि-  
 वर्तन की कुछ प्रमुख विगेषताए इस प्रकार हैं

१ आदि व्यजन प्राय सुरमित मिलता है। ग्ग म हाने बाल आन्तरिक

परिवर्तन का उस पर प्रभाव पडता है और बह (विगेषत उम्म ध्वनिया व कारण)  
 महाप्राण हा जाता है जसे वस्तूक > भेत्तू परगु > फमा पाश > फास। इस प्रकार  
 का महाप्राणीकरण कभी स्वराघात क कारण भी हुआ है कूठा > खूठा प्रपच >

करपव, ज्वल > भल जा > भणा कवा > खना ।

२ आरम्भ का म किसी जय वण स संयुक्त होने पर प्रायः तुप्त हो जाता है स्थान > थान, थिर > स्थिर, म्य > थो, स्यूप > थूप स्तोत्र > तोक । स्कम > सम, सामो । इमशान > मसाण, स्त्रीमित > तीन्ने ।

३ प्रारम्भ का ग या स कुछ गणना में छ रूप में परिवर्तित मिलता है । वास्तव में छ ग का विक्रमित रूप है । छ और श का घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह पाणिनी के सूत्र गगकोटि म स्पष्ट है । गणवाली म छ का उच्चारण स श म ढलना भी मिलता है । लाभ छछ को छस कहते मिलते हैं । ग > छ के कुछ रूप इस प्रकार हैं गिम्मा > छेमी स्वगन > छौं, मुधा > छोई, शक्ल > छरकल घनिश्चर > छछर ।

४ आरम्भ का ध ग और छ रूप में मिलता है क्षेत्र > धत धन > खत खनेणू धम > धेम धमा > छिमा धत्र > छत्तर ।

५ आरम्भ क त्त य वण कभी भूषण वने मिलते हैं जैसे दण्ड > डंड, दशन > डसणा दष्टि > डोट दुहिता > डयांगी म्यूल > डुला तुम्बर > टेम्बर, गह > डा, दोत्र > डाला । मध्य और अत का त ड म परिवर्तित हो जाता है मतर > में डा पवन > पेंड । उमी प्रवार ट वर्गीय ध्वनियाँ ल रूप में मिलती हैं दाडिम (दालिम) > टालिमा गकट > गळ ।

६ कई शब्दों में प्रारम्भ म य ध्वनि ज म परिवर्तित हो जाती है और इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

७ आरम्भ का अघोष महाप्राण स्पृष्ट ध्वनियाँ जमी-की-नसी सुरक्षित रहती हैं ।

८ मध्य यजन या तो उच्चारण त्या रहता है या वन्दन जाता है और बहुत कम परिस्थितियों में तुप्त हो जाता है । गढ़वाली म मध्यजन लोप के उदाहरण अधिक नहीं हैं । जा गण मिलते हैं व प्राग्ज और अपभ्रंश की परम्परा में हैं नारो < नगर दई < दवी सेलू < सीतन गणा < गगन, पयाल < पाताल । वास्तव में मध्यवर्ती क ग ज, त प थ का लाप प्राकृत में होने लगा था । श्रुति मुक्त के लिए मध्यग प प्राकृत में बहाकर गढ़वाली म ब हो जाता है । वहाँ यह उ रूप में पूर्व स्वर स भरी कर जाता है कापीनी > क्रासी दाप > ऋषारय > सी अपुत्र > औनी । दगापर > सौर घट्टपाल > घटवाळा । यही नहीं गढ़वाली का थ भी कभी प हुआ मिलता है दिव्य > निप्य । मध्य का म प्राकृत और अपभ्रंश म ब रूप में मिलता है किंतु गणवाली म वह उ वनकर पूर्व स्वर स आ ओ रूप में मिल जाता है कमल > वीन यमन > जीन्या । थ का अतस्व ध्वनि भी इस नियम की अवस्था नहीं है । वास्तव में मध्यग व के ह्रस्व

की प्रवृत्ति का प्रारम्भ अपभ्रंश काल में ही हुआ गया था। व्यंजन लाप के कुछ और उदाहरण इस प्रकार हैं

राजा > राठ, ज्योतिषी > जोशी  
 धृत > पिठ, भूमि > भुइ  
 नगर > नैर, नल नूपुर > मूरी  
 रजनी > रण, सहोदर > साश्रंर  
 मुकुट > मोड, मोर  
 युवति > जोइ  
 विमान > विहान > वानू  
 राजकु > रक

६ मध्यवर्ती ख, घ, ष, ष, फ, भ ध्वनि का प्राकृत और अपभ्रंश रूप में विकसित हुए मिलती हैं। गठवाली में भी कई शब्द इस परम्परा का निभाते हैं। यही नहीं बल्कि अगले स्तर पर उनमें हकार का भी लोप मिलता है  
 बधिर > बैरो, मन्दिर > खर, गम्भीर > गरो, जभीर > जैमर।

१० मध्य अघोष अल्पप्राण सघोष अल्पप्राण में परिवर्तित हो जाते हैं। गठवाली में मध्यक के प्रायः ग होकर ही रहता है। प्राकृत और अपभ्रंश में भी यह प्रवृत्ति थी। सस्कृत में भी कुछ परिस्थितियों में (विशेषतः सधिस, दिक् + गत = गिगज) क ग हो जाता है। गठवाली में और भी रूप दृग्गीम हैं डाकिनी > दायाग जाकाग > प्रागाय रक्त > रगत, साक > साग, घपाकाल > घमगाल। ट ड > ड क्य > काटा कुगी > कूडी, भट > भड, घट > घाड, कर्कोटक > ककोडा। घ > ड वाघा > वाड। त > द चलति > चलदा। द जीम छ कहा ठ रूप में भी स्थावरित हुए हैं बद्ध खान्डी में—वाडो, पुरानी गन्वाना में वाडा, बचा > बठया, बाठीण।

११ सघोष वण गठवाली में अघोष नहा हाते। यह चूला पञ्चाक्षिका या दरद की प्रवृत्ति रही है। पर कुछ गण ऐसे अवश्य मिल जाते हैं, विशेषतः अरबी-फारसी के गण, जिनमें द > त रूप विद्यमान है पञ्चाग > पैनरवाण, मदद > मदन लायदाद > जैगत अथवा मदनाचार > मताणचार।

१२ अन्तिम अधस्वर में और व का प्रायः लाप होकर पूर्व व्यंजन पूर्ण हो जाता है गव्य < सक्त, पुंश्च > पुन तत्त्व > तत्त, दन्ड > दद। यज्य तवर्गीय ध्वनियों के साथ समुक्त होता है ता उमका रूप बदल जाता है त्य > छ, छ, ध्य > ज ताद्य > छाजा, छाद्य > छात्रो द्विद्यत > द्विद्यण मय्य > मज, नूय > नाव। यह प्रवृत्ति वास्तव में बहुत प्राचीन है।

१३ गठवाली की प्रवृत्ति द्वित्व व्यंजनों के सरक्षण की आर नहीं है। प्रायः दो में से एक ध्वनि का लाप हो जाता है जस उदपाटन > उघाटना, मक्त > मान,



फरपन, ज्वल > भळ, जन > भणा कथा > सता ।

२ आरम्भ का स किसी अय वण स सयुक्ता होने पर प्रायः लुप्त हो जाता है स्थान > थान, थिर > थिर, म्य > घी, स्थूप > थूप, स्तोक् > तोक् । स्कभ > खव, खामा । श्मशान > मसाण, स्तीमित > ती-दो ।

३ प्रारम्भ का श या स कुछ गण में छ रूप में परिवर्तित मिलता है । वास्तव में छ श का विकसित रूप है । छ और श का घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह पाणिनी के सूत्र गणकोटि में स्पष्ट है । गणवाली में छ का उच्चारण स ग में ढलता भी मिलता है । लाग छाछ को छाँस कहते मिलते हैं । श > छ के कुछ रूप इस प्रकार हैं शिम्वा > छेमी स्थान > छाँ, मुधा > छोई, शकल > छकल, गनिश्चर > छछर ।

४ आरम्भ का क्ष म और छ रूप में मिलना है क्षेत्र > छत क्षत > छत खतेणू क्षेम > खेम क्षमा > छिमा क्षन > छतर ।

५ आरम्भ का ङ ल्य वण कभी मूढय वने मिलते हैं जैसे दण > डाँड दशन > डमणो दष्टि > टीट दुहिता > डयाँगी, म्यूल > ठुली तुम्बरु > टेगुरु, दाह > डाँ, शोल > डाला । मध्य और अंत का त ड म परिवर्तित हो जाता है मत्क > मँडो पवत > पड । उमी प्रकार ट वर्गीय ध्वनियाँ ल रूप में मिलती हैं दाडिम (दालिम) > दाळिमा गकट > शळ ।

६ कई शब्दों में प्रारम्भ में य ध्वनि ज म परिवर्तित हो जाती है और इसके अनक उच्चारण मिलते हैं ।

७ आरम्भ की अधोप महाप्राण स्पृष्ट ध्वनियाँ जमी की-नसी सुरक्षित रहती हैं ।

८ मध्य व्यंजन या तो ज्या न त्या रहता है या वृत्त जाता है और बहुत कम परिस्थितियों में लुप्त हो जाता है । गढ़वाली मध्य व्यंजन लोप के उच्चारण अधिक नहीं हैं । जा गण मिलते हैं व प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा में हैं नारो < नगर, देई < देवी सेलू < शील ल गणा < गगन, पयाल < पाताल । वास्तव में मध्यवर्ती क ग ज, त प व का लोप प्राकृत में होना लगा था । श्रुति मुख के लिए मध्यग प प्राकृत में घ होकर गढ़वाली में घ हो जाता है । कहीं वह उ रूप में पूर्व स्वर स मथाकर नेता है कार्पांमी > कवासी दाप > ङिऊ, दापय > सीं अपुधर > ओनो । दशापर > शोर घट्टपाल > घटवाळा । यही नहीं गढ़वाली का घ ही कभी पड़ुआ मिलता है ङिध्य > दिप्य । मध्य का म प्राकृत और अपभ्रंश में र्थे रूप में मिलता है चित्तु गढ़वाली में वह उँ बनकर पूर्व स्वर स ओ ओ रूप में मिल जाता है थमल > कौन, यमन > जौन्या । घ का अतस्य ध्वनि भाइम नियम की अवस्था नहीं है । वास्तव में मध्यग व के ह्रस्व

की प्रवृत्ति का प्रारम्भ अपभ्रंश काल से ही हुआ गया था। व्यंजन लाप के कुछ और उदाहरण इस प्रकार हैं

राजा > राउ, ज्योतिषी > जोषी  
घन > घिउ, भूमि > भुइ  
नगर > नैर, नल, नूपुर > नूरी  
रजनी > रण, सहादर > साश्रैरो  
मुकुट > मौठ, मोर  
युवति > जोइ  
विमान > विहान > व्याणू  
राजुक > रक

६ मध्यवर्ती स्य, घ, घ, फ, भ ध्वनिया प्राञ्जल और अपभ्रंश म ह रूप म विवक्षित हुई मिलती हैं। गड़वाली म भी कइ गइ इस परम्परा को निभान है। मही नहीं, विकाम क अगल स्तर पर उनम हकार का भी लोप मिलता है बधिर > बरो खदिर > खर गम्भीर > गरो जभीर > जमर।

१० मय अधोप अल्पप्राण अधोप अल्पप्राण म परिवर्तित हो जाते हैं। गड़वाली म मध्यक क प्राय ग होकर ही रहता है। प्राकृत और अपभ्रंश म भी यह प्रवृत्ति थी। सस्त्रुन में भी कुछ परिस्थितियों म (विशेषतः सचि मे, दिक + गज = दिग्गज) क ग हा जाता है। गड़वाली म और नीरुप दानीय हैं डाकिनी > डागीण, आकाश > आगाश रक्त > रगत, साक > साग, वर्षाकाल > वसगाल। ट ड > ड कक > काडा, कुश्री > कूडी, भट > भट घट > घाड, कर्कोटक > ककोटा। घ > ड याघा > वाड। त > द चलति > चलदी। द और घ कहा ठ रूप म भी स्थावतरित हुए हैं बड़ खाल्डी म—वाठा पुरानी गड़वाली में वाठा, वघा > वठघा, वाठीण।

११ अधोप वण गड़वाली म अधोप नहा होते। यह चली पैशाचिका या लरद की प्रवृत्ति रही है। पञ्च कुछ गब्द ऐसे अवश्य मिल जाते हैं, विगपत अरवी पारसा म शब्द, जिनमें द > त रूप विद्यमान है पञ्जाण > पत्तरवाण, मञ्ज > मन्त, जामदाद > जदात अथवा मदनाचार > मताणचार।

१२ अतिम अधस्वर म और च का प्राय लाप हाकर पूर्व व्यंजन पूरा हुआ जाना है शक्य < साक पुष्प > पुन, तन्व > तत, दृढ > दद। य जब तथर्गीय ध्वनिया के साथ सयुक्त होता है तो उसका रूप बदल जाता है त्य > च, च, ध्य > ज साद्य > छाओ छाग > छाओ, द्विद्ये > द्विद्यण मध्य > मज, नत्य > नाच। यह प्रवृत्ति वास्तव में बहुत प्राचीन है।

१३ गड़वाली की प्रवृत्ति द्वित्व व्यंजना के सरण की आर नहीं है। प्राय दो में से एक ध्वनि का लोप हो जाता है जस उदघाटन > उधाडनो, भक्त > भात,

सुप्त > सूता, पुष्टा > पूठा, राष्ट्र > राठ, नस्त > नात, नय पञ्च > पाछ। म्ब मे केवन म ही नेप रहता है, कुटुम्ब > कुटम, उम्बी > ऊमी। परिवहन का इस अवस्था में पूव व्यजन प्राय दोष होजाता है।

१४ शब्द के मध्य और अंत में महाप्राण ध्वनियाँ प्राय जल्पप्राण हा जाती हैं। प्राय आद्य अक्षर अल्पप्राण महा होता जल्प जीर मध्यग जल्पप्राण होकर ही रहते हैं। गडवाली ध्वनि तत्त्व की यह एक सामान्य विशेषता है।

१५ सयुक्त व्यजन क्ष वही ग ग्छ, छ और कही ल रूप म आता है रागस > रागस, यक्ष > जाख, रक्षा > रग्छा क्षार > खार, क्षारी। अपनी मूल ध्वनि वष (स) रूप म वह सर्वाधिक मिलता है।

१६ रेफ रूप म र सयुक्त व्यजना के साथ प्राय सुरभित मिलता है। अधि याग शब्दो म वह अपना पूरा रूप ले संता है किरिया, बरम, बारज कागिया ममादर, पवेत्तर, पराण, मुरछा सरग सतूर। र क लाप के कुछ ही उदाहरण मिलत हैं जम पणो < प्रदगन, पासणी < प्राशन, दोण < द्राण, पाथो < प्रस्य पगार < प्राकार। द के साथ मयुक्त र ल हो गया है आद्र > थालो, भद्र > नना। उसी प्रकार त के साथ—अयत्र > जयत्र सवत्र > सग्थ यत्र > यरथ गणा म वह थहुआ मिलता है। यही नहीं गडवाली म र के आगम व भी कुछ उदाहरण उपलब्ध है—वूम्मांड गिरकेंडा भोजन भारजन विट्टेप विरदोसो उदूखल उरस्याता। वास्तव म र का आगम प्राकृत म था और बाद म अपभ्रंश म भा उसका अभाव न था। प्रणाम व्रत जाति गणों म प्रयुक्त र र बन गया है—परणाम पणाम तथा वन।

### व्यजनागम

व्यजनागम के कुछ उदाहरण रफ व सम्बंध म विचार करत हुए दिय गए हैं। गडवाली प्राय मध्यजनागम प्रारम्भ मध्य और अंत सीनों रूपा म हुआ है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

अम्याम > ह्वाम हयाम

इम्बु दग्गु > निक्गु

ईय्या रीप

यष्टि > छट्टी

धम्बुन वाणि व्यजनागम की सम्भावना कम रहता है किंतु उच्चारण मौखिक व कारण उमका मवथा अभाव भी नहीं होता, जम कि ऊपर व उदाहरणा स स्पष्ट है। मध्य व्यजनागम व कुछ उदाहरण य हैं

उनुपन > उणत > उरस्याळा

वनेग > उवळेस

भाजन > भारजन  
 उच्छ्वाम > उकसाम, उकसासी  
 सवाल > सनबवाळ,  
 विद्वेष > विरदापो

अन्त में व्यजनागम के अधिक उदाहरण नहीं मिलते कि तु वे विरल नहीं

मनुष्य > मनस्वारी  
 स्फुल्लग > फिनगारा

## वर्ण विषय

वर्ण विषय के कुछ रूप इस प्रकार हैं

वणघार > घुनार  
 गुष्क > सुक्सी  
 आनव > बात  
 गृण > हरगण  
 उरग > गुरी  
 विलान > विलग > बेगळेणू  
 गुन्मिनी > लगुली  
 आर्या > जिया  
 विनार > विराळो  
 बादन्यु > बल्दयू  
 पिगाच > पिक्चास

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि गढ़वाली में व्यजन परिवर्तन के रूप प्राकृत और अपभ्रंश से भिन्न नहीं हैं। इतना अवश्य है कि कुछ प्रवृत्तियों के अब गढ़वाली में अवशेष माने रह गये हैं। व्यवहार में अब वे कम रहे हैं। उदाहरण के लिए व्यजन चोप की प्रवृत्ति गढ़वाली में नहीं है। सम्युक्त व्यजना में व्यजन-लाप की अपेक्षा स्वर भक्ति से अधिक काम लिया जाता है। उसी प्रकार अन्य वर्णों के मूषय बनने, त वर्गीय ध्वनियों का ज में परिणत होने आदि की विशेषताएँ गढ़वाली में मध्यकालीन भारतीय आमभाषा की तरह व्यापक नहीं हैं। गढ़वाली में घाप महाप्राण ध्वनि मध्य और अन्त में अल्पप्राण हो जाती है। प्राकृत या अपभ्रंश के लिए यह ध्वनि महत्व की नहीं है।

## सम्पर्की व्यजन और ममीकरण

गढ़वाली में दाशदा के मयाग के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जहाँ व्यजनों के सम्पर्क से अन्ति व्यजन लुप्त हो जाता है, मया एक दा (एक बार)

सामा यत य दा बोला जाता है। इसी प्रकार, मास्टरजी > मास्जो, फौजदार > फौदर, मात पुत्र > भाबत, यर्पा-वाल > यसगाळ, जांद छौ > जान छौ, वर दो > कदो।

एक ही शब्द के अन्दर भी वणमत्री के उदाहरण मिलते हैं। यह वणमत्री प्रायः र, ल, न, ण, आदि ध्वनियों में विशेष रूप से हुई है, जस, मिलणो > मिनो, वरणो > कनो आदि। इसी प्रवृत्ति के कारण गठवाल के कुछ भागों में जानू, डाण्डा जैसे शब्द जानू, डाना रूप में उच्चारित होते हैं।

रूप-तत्त्व



## सज्ञा के रूप

प्राचीन भारतीय आयभाषा के मध्यकालीन विकास में ही सज्ञा के रूप में परिवर्तन हुआ लगभग। गढ़वाली में मस्कृत की जनक प्रवृत्तियाँ मूर्त रूप में मिलती हैं किन्तु अल्प नम्य भारतीय भाषाओं की भाँति उनमें भी मस्कृतिकरण की प्रवृत्ति अधिक है।

प्राचीन भारतीय आयभाषा के मध्यकालीन विकास में व्यंजन प्रातिपदिक प्रायः समाप्त हो गए थे किन्तु नम्य भारतीय आयभाषाओं में व्यंजना का स्थिति बना रही। गढ़वाली में इसीलिए स्वरान्त और व्यंजनांत दोनों प्रकार के प्रातिपदिक मिलते हैं। पञ्चम वर्गों में अंततया ड वाल व्यंजित प्रातिपदिक भी प्रायः गढ़वाली में मिल जाते हैं, जैसे भाइलो, राड, छुआ जादि।

गढ़वाली का वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य बनाने वाले माध्यमा में प्रत्यया, उपसर्गों, पञ्चों गढ़वाली और सम्बन्ध तत्त्व का भी महत्त्व होता है उससे कहीं अधिक महत्त्व प्रातिपदिक जयवा सज्ञा का होता है। गढ़वाली में व्याकरणिक सज्ञाएँ हिन्दी के अनुकूल ही हैं। भाववाचक सज्ञाएँ हिन्दी में प्रयुक्त प्रत्यया के अनुसार ही बनाई जाती हैं जैसे घाट (जाहट) बबराट, छनपाट, पो बुढ़ावा घान मिरान जादि। गढ़वाली प्रत्यय—घोड चकपाड, उल्ल दारयूळ धार मन्धार, एष्टि दनेष्टि जादि।

## लिंग

गढ़वाली में दो ही लिंग होते हैं। नपुंसक लिंग नहीं होता। लिंग नियारण का आधार मूलतः प्रकृतिक लिंग भेद ही है। इसके अतिरिक्त बन्तु या व्यक्ति में आकार का गुणत्व अथवा नपुंसक भी लिंग भेद का कारण बना प्रतीत होता है। इस दृष्टि से कभी प्राकृतिक लिंग तथा व्याकरणिक लिंग का अध्ययन बड़ा आवश्यक है। उदाहरण के लिए, स्त्री के लिए जनाना लका जनाना गढ़वाली का स्वरान्त रूप है। दोनों लिंगों में एक ही है किन्तु जनाना व्याकरण से पुलिग है, और जनानो स्त्रालिग। जनाना में पुलिग का आराम आर्य प्रयोग के लिए हुआ है। इसी प्रकार, घरवाली लिंग आदर प्रकट करने के लिए वाता का पुलिग रूप धारण कर जाता है, जैसे, वे की घरवाली (मामावन), व का घरवाली (आदर स)।



उसी प्रकार हिन्दी में बकरा पुलिग और बकरी स्त्रीलिङ्ग है, किन्तु गन्वाली में बाखरो बडी बकरी और बाखरी छाटी बकरी के लिए कहत है। बकर के लिए बोखटया (तुलनीय फारसी बोक्कटो) शब्द का प्रयोग हाता है। उसी प्रकार गौ स्त्रीलिङ्ग है किन्तु गढवाली में गौडो पुलिग शब्द है। प्राकृत में भी यह प्रवृत्ति थी। हेमचन्द्र ने भी गाडग्रो, गाग्रो पुलिग रूप लिए हैं, जिनके स्त्रीलिङ्ग रूप गडग्रा और गाई थे। गोणो और गोणी भा इसी तरह के उदाहरण हैं। यही दशा पुलिग समझे जानवाले कुछ उभयलिङ्गा शब्दों की है जिन्होंने गढवाली में अपने लिए स्त्रीलिङ्ग ढूँढ निकाले हैं जैसे आदमीण (आदमी से) मनखीण (मनुष्य से) क्षणी (जन से)। देवता शब्द संस्कृत में जाकर पुलिग बना, पुरानी गढवाली में उसका देवती स्त्रीलिङ्ग मिलता है। गन्वाली की एक कहावत है—देवती सेवती जपणा घर में मैंक थकळी लगीणी करी ग। लिङ्ग सम्बन्धी सबसे बडी गडबडी आकार की गुस्ता और लघुता के आधार पर दोनों लिङ्गों के रूप में हुई है। उनके साथ जा क्रियाएँ तथा विष्पण प्रयुक्त होने हैं वे भी प्राकृतिक लिङ्ग की अपेक्षा व्याकरणिक लिङ्ग से अनुशासित होते हैं। इसी प्रकार नपुंसक लिङ्ग को भी पुलिग तथा स्त्रीलिङ्ग में बाँट दिया गया है और उनके भी दो लिङ्ग आकार की दृष्टि से विद्यमान हैं, जैसे, आँवा आँसो लाखडा लाखडी कूडो, कूडी जादि।

जीवधारियों के नाम प्रायः उनके प्राकृतिक लिङ्ग के अनुसार होते हैं जैसे गौ स्त्रीलिङ्ग, बल्ल पुलिग। इसी तरह भसी स्त्रीलिङ्ग और बागी पुलिग।

मामागत बड़े आकार के पशु पुलिग और लघु आकार के स्त्रीलिङ्ग में ही मान जात हैं। इसमें अतिरिक्त आकार सम्बन्धी भेद के कारण एक ही प्राणी के लिए विभिन्न लिङ्गों का प्रयोग भी हाता है, यह पहल ही कहा जा चुका है। वास्तव में गढवाली का मारा लिङ्ग भेद आकार पर ही आधारित है। बड़े आकार के सभी प्राणी चाहें वे प्राकृतिक रूप में स्त्रीलिङ्ग में ही क्या न हों उनके लिए पुलिग शब्द भी विद्यमान है। उदाहरण के लिए भसी शब्द पुलिग है, क्योंकि बट आकार में बडा है। भसी कहत हुए भी यह कहत जाना जाता है कि भसी का प्राकृतिक लिङ्ग स्त्री लिङ्ग है जोर उमका प्राकृतिक पुलिग बागी या मोटा है, किन्तु भसी (भैंस) फिर भी आकार की गुस्ता के कारण उसके लिए पुलिग ही है। जब बट भसी कहता है तो उमका अथ आकार की लघुता से ही होता है, स्त्रीत्व की भावना से कल्पित उमका तात्पर्य नहीं होता।

अक्षरात् व० व० आकारात् अथवा उच्चारान्त शब्द प्रायः पुलिग होते हैं। यह भी या ऊ प्रत्यय संस्कृत से आया है जिसकी चर्चा अद्यत की जा चुकी है। किन्तु संस्कृत से जाएँ नपुंसक लिङ्ग शब्द जब गढवाली में आकर पुलिग बन तो वे सभी ओ या ऊकारान्त नहीं हो सके, जैसे लवणम् > लीण हस्तम् > हात।

अधिकांश इक्षरात् तथा संस्कृत के लक्ष्य आकारात् शब्द गढवाली में भी

स्त्रीलिंग ही होते हैं।

इस सदम में यह ध्यान देने योग्य है कि गडवाली में पुलिग अथवा स्त्रीलिंग शब्द रूप सस्कृत के अनुरूप ही हैं। प्रा० भा० आ० भा० के अ अक, इ, ई इक, उ तथा आकारात् गड गडवाली में भी पुलिग ही हैं जैसे ह्युद < हेमत, गुमाइ < गोस्वामी, पातगो < पत्रक गन्दु < गेंदुक, भणो < जन। उसी प्रकार स्त्रीलिंग शब्द भी—माला, घिया < घीता, म्बारी < मधुवरी, माई < मातवा, वीऊ < वधू आदि।

बहुत से सबनाम दोनों लिंगों में अविभक्त रहते हैं। किन्तु उनमें कबल अन्य पुरुष में भेद हा जाता है जैसे पुलिग वो, स्यो, यो, को जो स्त्रीलिंग में इन रूपा का धारण कर लेते हैं वा, स्या या, क्वा, ज्वा आदि। और इनके विकारी रूपा में भी अनुनासिक का अंतर आ जाता है जैसे, पुलिग जन, स्त्रीलिंग जॅन आदि।

वास्तव में गडवाली का लिंग भेद किसी वैज्ञानिक आधार पर अवलंबित नहीं है। इतनी सुविधा अवश्य है कि क्रिया तथा विशेषण के आधार पर सज्ञा के लिंग का नियम हा सकता है। कबल कुछ भागों में विगलित मन्दार में लोग पुलिग के साथ भी स्त्रीलिंग की क्रिया का प्रयोग करते सुन जाते हैं जैसे पु० कल छ जाणू के स्थान पर स्त्रीलिंग कल छ जाणी। किन्तु सामान्यतः गडवाली क्रिया तथा विशेषण सज्ञा के लिंग के अनुरूप ही परिवर्तित हाते हैं। उत्तम पुरुष के सबनाम अवश्य इसके अपवाद हैं। उनके साथ दोनों लिंगों में क्रिया का रूप एक-सा ही होता है।

### स्त्री-प्रत्यय

गडवाली के स्त्री प्रत्यय सस्कृत से आए हैं। यहाँ कुछ प्रत्यय दिए जाते हैं

ई क्वारी, नौनी (लडकी) गणी (तारिका)।

ईण नातीण दास्तीण।

ईड बुडीड।

णी नातणी मास्टरणी।

इष्माण दास्त्याण, मास्टरयाण, नायाण।

धा माना बठया।

उली दातुली बांसुळी, णकुली बचुली, नणतुली।

एली रीतली, घौपली, गानेली, पतली, पटेली।

उडी मुपुडी दातुडा छोटडी, खाबुडी, रानुडी।

टी घणोटी डयांटी बमणोटी बोटी।

की छोटकी, गेंडकी, गादकी, बोदगी।

इन प्रत्ययों के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना प्रत्यय विषयक अध्याय में दी जा

रही है। इनमें से टी की ली तथा डी प्रत्यय आकार की लघुता के भी परिचायक हैं। गड़वाली की रवाँल्टी उप वाली में इनका प्रयोग बहुत होता है।

### वचन

जय नय भारतीय आयभाषाओं की भाँति गड़वाली में भी एकवचन और बहुवचन ही मिलते हैं। अधिकांश जोकारांत (या उकारांत) शब्द कता कारक के एक वचन को प्रकट करते हैं। आकारांत शब्द गड़वाली में ही नहीं, केन्द्रीय पहाड़ी की समस्त वालियों ब्रज राजस्थानी, गुजराती और बुंदेली में भी इसी प्रकार मिलते हैं। कर्ता के बहुवचन में ये ओकारांत शब्द (संस्कृत मुप्रत्यय) गण वाली में आकारांत (संस्कृत अस प्रत्यय) हो जाते हैं, यथा, नौनो (ए० व०) नौना (ब० व०), कूडो (ए० व०) कूडा (ब० व०) भसों (ए० व०) भसा (ब० व०)। यह प्रवृत्ति संस्कृत के अनुकूल पड़ती है।

ओकारांत शब्द, जा बहुवचन में आकारांत हो जाते हैं वे पुलिग होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में आकारांत शब्द मिलते ही नहीं हैं। किन्तु पुलिग और स्त्रीलिङ्ग दोनों के लिए एक ही बहुवचन के प्रत्यय हैं केवल अंतिम स्वर के अनुसार कुछ वैभिन्य आ जाता है।

अब यह स्पष्ट है कि ओकारांत शब्दों के बहुवचन उह आकारांत रूप देने में बनते हैं जैसे कामलो (ए० व०) कामला (ब० व०), बाळो (ए० व०) बाळा (ब० व०), तालो (ए० व०) ताता (ब० व०) बाटो (ए० व०) बाटा (ब० व०)।

गण स्वरा में अंत होने वाले सभी शब्द (चाहे वे किमी लिंग के हों) कर्ता कारक के एकवचन तथा बहुवचन में अपने मूल रूप से परिवर्तित नहीं होते, जस नौनो (एकवचन) नौनी (बहुवचन), व्योऊ (एकवचन), व्योऊ (बहुवचन)। किन्तु जब इन शब्दों के विकारी रूप बनते हैं तब बहुवचन में रूप बदल जाते हैं।

एक वचन नौनीन साथ लड़की ने गायी। बहुवचन नौनींन साथ लड़कियां ने गायी।

ऊपर के उदाहरण में स्पष्ट है कि विकारी रूप का बहुवचन प्रत्यय ईकारांत शब्दों में भी यही है उसी प्रकार आकारांत उकारांत ओकारांत आदि शब्दों में भी यही प्रत्यय के समागम बहुवचन के रूप बनते हैं, जैसे मामान (मामा न) मामाँन, चाचाँन, भायाँन। ऐकारांत शब्दों के साथ यथुति के दान होने हैं वन बयौँन वन बयौँन आदि।

जकारांत शब्द जब विकारी रूप में आते हैं तो उनमें भी बहुवचन के रूप एकवचन में भिन्न होते हैं। पुलिग शब्दों के साथ उ जुड़ जाता है और स्त्री शब्दों के साथ इ वन पर (एकवचन पुलिग) से घरू (बहुवचन) तथा स्त्रीलिङ्ग

विताच (एकवचन) से विताची (बहुवचन) । य वास्तव म विकारी रूप है ।

इस प्रकार बहुवचन का विकारी प्रत्यय आ कर्ता कारक को छोड़कर शप सभी कारका म जाता है । उस दगा म उसस पूव का स्वर लुप्त हो जाता है या उसी से सति वर कर लेता है । इस आ की व्युत्पत्ति स्पष्टत अनाम से हुई है ।

गवाल के प्राचीन लोकगीता म ना बहुवचन का प्रत्यय है, जैसे, ऋगुना को पेप (ऋणा का पेप), ऋतुना को जौणो (ऋतुना का आगमन) । इस ना की उत्पत्ति भी सस्कृत के अनाम मे ही सम्भव है । बहुवचन का यह न प्रत्यय ब्रज भोजपुरी, राजस्थानी, पजापी और बगला म भी मिलता है ।

इमने अतिरिक्त गडवाली मे वचन सम्बधी कोई विशेषता नहीं है । अय आधुनिक जाय नापाआ की नाति ही उसम जादराय पयुक्त सजाएँ बहुवचन मानी जाती हैं । आदर प्रदान और बहुत्व की सूचना के लिए सम्बध सूचक गन्दा के साथ और तथा का जोड दिया जाता है, जैसे चाचाओर (पिताजी, या पिताजी तथा अय) चाचाओर चाचाका (चाचा और उनके कुटुम्बी) भौओर, मामाकाँ, दागाका आदि । बगला म सप्राण सना गन्दा के साथ प्रयुक्त बहुवचनवाची अयवा समूह-बोधक एरा और रा प्रत्यय इसी तरह के हैं ।<sup>१</sup>

समूहवाचक गद एकवचन माने जाते हैं । इसके विपरीत बहुत से एाधान बहुवचन म ही आते हैं, जैसे, गेऊ जी, कौणी आदि ।

बहुवचन जापक शब्दावली

ऊपर के रूपा व अतिरिक्त बहुवचन रूप बनाने के लिए निम्नलिखित शब्दा का भी प्रयोग होता है

सब तुम सब हम सब नौना सब ।

लोक हम लाक, नौकर लाक, अफसर लाक आदि ।

शणा सस्कृत जना का सङ्ख है । इससे भी बहुवचन का संकेत किया जाता है, जैसे कामेरू शणा ।

ओर यह सस्कृत अपर से व्युत्पन्न है ।<sup>२</sup> इसके प्रयोग के विषय म पीछे लिखा जा चुका है । सम्बध सूचक शर्शों म इसका व्यवहार हाता है जैसे, चाचाओर भौओर आदि ।

का इस प्रत्यय म भी परिचित किया जा चुका है । सम्बध सूचक शर्श के साथ रचना प्रयोग मिलता है जैसे चाचाकाँ भौओकाँ आदि ।

<sup>१</sup> डा० चाट ग भास्तीय नाथ भपा आर दिने पृ० १ १

<sup>२</sup> सम्भन बहुतर' (दिना बहुतेरे) से भा रसका युगति सम्भव है । तुलनीय असभिया वर' गदगती ओर' नेगाना 'इरू । नेगान ने अपने दिना भ्यकरण म इसकी युगति का माना है—इ < रवक < करक, पंगओ, केरू केरू ।

## कारक

अनेक भारतीय आयभाषाओं के समान गढ़वाली में भी सङ्कृत की विभक्तियाँ अब समाप्त हो गई हैं। उनके स्थान पर परसगों का ही प्रयोग होता है। इन परसगों का प्रयोग भी महत्ता नहीं हुआ है। सम्भवतः सङ्कृत में ही व प्रविष्ट हो चुके थे और नव्य भारतीय आयभाषाओं में आकर व विकसित हुए। गढ़वाली में प्रयुक्त कुछ परसग इस प्रकार हैं

कर्ता न अथवा ल।

कम क, कू क, सणी, हणी खुणी, छन ते।

करण ण से, सी, ती।

मम्प्रदान कं, तै (तइ) लैइ (लाई), क सणा, (हणी), खुणी, कू।

अपादान न, ती (ते) विटे, स (सी) परन।

सम्बन्ध को, का, की, ए रा रो।

अधिकरण पर, मा, मु भग मज, तन मये, उदू।

गढ़वाली में कारक चिह्नों के रूप में परसगों का ही अधिक प्रयोग होता है, किन्तु जिस भाषा से उक्त उद्गम हुआ है उगम विभक्तियाँ रही होंगी, इसका आभास स्पष्ट मिलता है। गढ़वाली में सङ्कृत की अनेक विभक्तियों के अन्वय विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए सङ्कृत की प्रथमा विभक्तिओकारात् तथा उकारात् शब्दा में आज भी सुरक्षित मिलती हैं। यही प्रवृत्ति प्राकृत में भी पाई। अपभ्रंश में ओ उचित होकर उ हो गया है। स्वल्प प्रयोग व रूप में अपभ्रंश में भी इस परिवर्तन का लक्षण मिलते हैं। इस कुछ विद्वानों ने प्राकृत का प्रभाव माना है किन्तु उत्तर परिवर्तन की अपभ्रंश में इसका प्रयोग बहुलता से होता था।<sup>१</sup> नव्य भारतीय आयभाषाओं में भी—विशेषतः ब्राह्मण और बोगली में—यह सामान्य प्रवृत्ति है। गढ़वाली में विभक्ति का लोप भी मिलता है। ऐसी अवस्था में परसगों का प्रयोग होता है। यह परसग हिन्दी में व अनुरूप है। कुछ भागों में न सहा जाता है। यह परसग राजस्थानी में नहीं रूप में प्रयुक्त होता है। पञ्जाब, मराठा, नेपाली में भी यह उपलब्ध होता है।

न अथवा (न >) ल कर्ता के समान है। करण और अपादान का परसग भी है। जैसे भूकन मर—भूकन से मरा, बखन आय—बखन से आया बांनुन ली—दाँना से खाता है। से अथवा सी परसग का करण कारक में विशेष प्रयोग होता है। यह परसग गणित का सूत्रक है, इसीलिए सम्भव है, इसका सम्बन्ध गणित से है। पर अधिक सम्भावना इस बात की है कि इसकी व्युत्पत्ति सम + एन > सएँ > सी या से रूप में हुई हो। हिन्दी की बालियाँ, राजस्थानी, तथा गुजराती में यह

प्रत्यय सू, गु मिठ आदि रूप में मिलता है, जिसकी व्युत्पत्ति सावम् (पिसेन २०६) से मानी गई है। सी के समान ही एक अय परमग सी अथवा ते गडवाली में ही नहीं, ब्रज, पंजाबी, गुजराती, तथा अवधी में भी मिलता है। अपभ्रंश में यह तण रूप में विद्यमान था। इसका मसृष्ट मूल रूप तन रहा होगा। किन्तु तन या तण परसग का सम्प्रदान गडवाली तन से भी सम्भव है। एसी दशा में ही परसग ससृष्टत से उद्भूत माना जा सकता है। राजस्थानी में सम्भवत इसके तड, षड, श्री रूप मिलते हैं। करी या कै अपने में कोई स्वतंत्र प्रयोग नहीं है। पर इन वक्त देन के लिए करण कारक की सजा के साथ जाड़ा जाता है—तेरा करी भी हाण्या मडगी करी भसा गवणा भी होया ? बटि, बाट, बटे या बिटे परसग प्राकृत में बटट या वत्त रूप में आया है। ससृष्टत में यह वत्त (अथवा कुछ विद्वानों के अनुसार वत्त अथवा वत्तम = रास्ता) रहा होगा। इन परसर्गा के अतिरिक्त मसृष्टत की मूल विभक्ति भी अभी गडवाली में अवशिष्ट है। करण कारक में एइ विभक्ति प्रत्यय का प्रयोग का मिलता है, जैसे, डडइ मारे—डडे से मारा। राजस्थानी में यट डे (इ) और इइ रूप में मिलता है। गडवाली और राजस्थानी के ये रूप सम्भवत अपभ्रंश के तृतीयोपा एकवचन के वचन प्रत्यय ऐं में तथा बद्धि एभि ( > एहि प्रा० > इति) से निष्पन्न हुए हैं।<sup>१</sup>

करण की यह ए विभक्ति अपभ्रंश में भी ए रूप में मिलती है। 'कल्पतरु और 'पद्मापा चंद्रिका' में इसका प्रयोग हुआ है। गडवाली में करण और अपादान की विभक्ति में साम्य है। एइ (ए) विभक्ति दोनों कारकों में समान रूप से प्रयुक्त होता है, जैसे वन डडइ मार—उत्तन डडे से मारा। आम डालइ म्वा पडे—आम पडे में नीचे गिरे। दो कल्लइ आय—वह कहाँ से आया ? प्राकृत में अपादान के लिए आओ आठ आदि विभक्ति-रूप मिलते हैं, जैसे पुत्रात् > पुत्राथा दीर्घात् > सोसात्। गडवाली में इही के अनुरूप अउ वाले रूप प्रचलित हैं वणउ (वणौउ) आय वा घर—वह वन से घर आया, कलउ आय—वहाँ से आया। गडवाली अउ (औ) के समान ही अपादान के लिए पश्चिमी राजस्थानी में भी आ, ओ प्रत्यय मिलते हैं। डॉ० टसितोरी ने आ की व्युत्पत्ति सावनामिक प्रत्यय स्मान से सिद्ध की है। ओ की उद्गति अपभ्रंश अहू (अहू) से व्युत्पन्न माना है। यह प्रत्यय गडवाली के अतिरिक्त सिन्धी, पंजाबी और पश्चिमी हिन्दी में भी मिलता है।

वचन और सम्प्रदान की विभक्तियाँ एक सी हैं। ससृष्टत में आय जोड़कर सम्प्रदान का रूप बनता है। प्राकृत में वह आओ रूप में मिलता है। गडवाली में अत्यंत की निबल ध्वनि के साथ यह विभक्ति सुरक्षित है, जैसे, नौना अ बोला लटके

१ पुरानी राजस्थानी डॉ० टसितोरी की पुस्तक का डॉ० ना बर्हिह द्वारा किया अनुवाद पृ० ५७।

को बहो, नीनाअ मिठाई लायू—लटके व लिए मिठाई लाया हू । बाद म प्र ध्वनि पिस जाने के कारण क, कू, तइ, सणी, खुणी आदि परसगों का आवश्यकता अपरिहाय हो गई । अपभ्रंग मे बेहि, किह तथा हि हि, हु विभक्ति बाल रूप मिलते हैं जा हिंदी की कई बोलिया म भी प्रचलित हैं । गढ़वाली म य विभक्ति रूप क (बुछ भागो मे, जसे—त्व क), इ (जमे चाचाइ दवा—चाचा का दो गणीइ बालावा—रानी को बुलाओ) रूप मे मिलन है । य रूप ब्रज और अवधी के कहु, हि की बिरादरी के निकट पड़ते हैं । इन रूपा को व्युत्पत्ति कक्ष स मानी जाती है पर कृते से भी सम्भव है । उमी प्रकार गढ़वाली परसग ताइ, तइ जयवा ल का सरिते जयवा प्रति (> प्रतइ > तइ) तथा ताई जयवा ले का लग्न जयवा लगे से व्युत्पत्त माना जाता है । ताई की व्युत्पत्ति डा० टेमिटारी न र्म रूप म मानी है—तावति > तामहि > तावेहि > \*ताअई > ताइ > \*ताइ > ताइ । गढ़वाली म राजस्थानी की भांति ही इस परसग का अथ तक भा हाता है, जैसे आज ताइ—आज तक । सणी (हणी छनि) और खुणी (बुणी कणी भी) अपभ्रंग म सड़े, मनी और कर्ण रूप में मिलते हैं । डा० हेमचंद्र जागी ने सणी की व्युत्पत्ति ससृत सते से मानी है ।<sup>१</sup> ब्रज और अवधी मे सन और सौ रूप मिलते हैं । इनके अतिरिक्त रमोली क्षेत्र की बोली म हइ परसग का प्रयोग मिलता है जसे त्व हइ दिन—तुमका दिया । राजस्थानी म इसने अनुरूप रहइ परसग का प्रयोग होना है जिसर रइ और हइ रूप भी उपलब्ध हात हैं । पुणी कर्ण का ही विकसित रूप है । अपभ्रंग में इसी के अनुरूप कर्णहि और राजस्थानी म कहई रूप मिलते हैं । गढ़वाली म बनइ लिगायाधक गइ क रूप म ही प्रयुक्त होता है—मजी वनई छा जाणी—भाईजी वहाँ (किधर का) जा रहे हा । राजस्थानी म भा कहई कम और सम्प्रदान की विभक्ति के अनिरिक्त की ओर का अथ भी देता है ।<sup>१</sup> यह परसग गुजराती म बन, कणे, मेवाही बन तथा कुमाउंती म कणि रूप म प्रयुक्त होता है । अन्य परसगों म भिन्न (भीतर) छातर, माना (कारण) निदन (निमित्त) का प्रयोग भी यदा कदा होता है ।

अधिकरण कारक ससृत और प्राइत मे एकारात होना है । गढ़वाल म मय (< मस्तक) मज (< मध्ये) जस गइ आज भी विभक्तिक रूपा की याद दिलाते हैं । अपभ्रंग म ए वाला रूप इकारात हो गया था । गढ़वाली म भी यह प्रवृत्ति मिलती है जसे माय माये=मवि, माज, मज=मजी । रिमन् बाल रूप प्राइत म र्मि हो गए हैं । गढ़वाली म इमका अवयव मि या म् रूप म मिलता है—रिमन् > मिह > मि पर मि (मू भी) चला । बहुप्रयुक्त विभक्ति हि, हि भी पुरानी

१ डॉ० ओरो टि पण्डा अनुसन्ध विशाल का प्रथम भाषाशास्त्र का व्याकरण, प० ५२१ ।

२ पुराना राजस्थानी (टेम्प्लो(1)) प० ७२ ।

गडवाली में हूँ रूप में सुनने को मिलती है। यह अपभ्रंश म भी यी आर व्रज और अवधी में विशेष रूप से प्रचलित है। हिं वाला रूप अधिकरण कारक में गडवाली में भी उपलब्ध होता है। हिं > इ, जैसे कयइ छा जाणा—कहा जा रह हो। राति ऐन—रात में आप। अधिकरण में निविभक्तिक प्रयोग भी अत्रिक मिलते हैं जैसे पठा पाणी ना, चूल्ता आग नी—घड़े (म) पानी नहीं चल्ह (म) आग नहीं। गोपी डाला चटे—लगूर पड (पर) चडा। इस कारक में, फिर भी, मवम अधिक परसर्गों का प्रयोग मिलता है। इनमें सु माँ (मध्य > मग्गे > \*माँमा > मग्गहूँ ~ माहा ~ म्हा > मा) मैज अथवा माज (मध्य), मग अथवा मुग, पर ऐच (उच्च) निम, उब्बो (ऊच) उदो, उदो (अध) भोज, तरप तन, जन (पर जने छन जाणा), मपे (मन्मके) आदि उत्पत्तनीय हैं।

सम्बन्ध कारक म को, का, की परसर्ग हिन्दी व अनु रूप ही गडवाली म भी मिलत हैं किन्तु रवाँन्टी सेत्र की उपवोसी म रो, रा, रो का प्रयोग विशेष होना है। बगला और राजस्थानी म इस प्रकार क प्रयोग हात हैं यह सबविदित है। अप भ्रंश के कर, करा, करअ परसर्गों (तथा हिन्दी म तुलनीय, कबीर पानी करा बुबुदा ) के अनु रूप ही गडवाल व कुछ भाषा म करौ तथा करो का प्रयोग करते हुए लोग सुन जाते हैं। उदाहरण के लिए चाचा-करो (कू) डेरा—चाचा का घर। इन परसर्गों के अतिरिक्त सस्त्रुत की मूल विभक्ति का अवगोप भी गड वाली म सवधा विनष्ट नहीं हुआ है। सम्बन्ध की अस विभक्ति का विकास पर वर्तो भाषाआ में इस प्रकार हुआ है—कामस्य > कामान > कामाह। यही भाह वा म अपभ्रंश म हो हो गया जैसे स्वामिवस्य > समिअहा। गडवाली म यह विभक्ति रूप औष रूप में मिलता है। उदाहरण के लिए कामोज आदमा—काम का आदमी। बहुवचन में यह प्रत्यय पुलिग म उष्ठा अथवा आश्रें हा जाता ह तथा म्प्रातिग म इअ या इया। इन दृष्टि से पुरानी राजस्थानी क ईआ, इया (< ईअ-ह) आदि विभक्ति प्रत्यय तुलनीय हैं (पुरानी राजस्थानी पृ० ६२)।

सम्बोधन में बहुवचन गड जाकारात हो जात हैं और एकवचन म आत्ता रान्त। यह प्रवृत्ति प्राकृत म भी है। अपभ्रंश म अन्त म हो जाहने का विधान है। यही हो गडवाली म ओ अथवा ओँ रूप में उपलब्ध है। उच्चारण में अत्य म्वर प्राय मुप्त हो जाता ह। इसकी माध्यमिक अवस्था अ हो तथा अठ > ओमानी ना सकती है। ओह का प्रयोग हिन्दी की बोलिया म भी मिलता है (दिग्वि-कुन्तरहु तुलसी, रा० च० १।२६०)। गडवाली म यह नियम सब गणा पर लागू नहीं होता। अकारान्त, जाकारान्त तथा इकारात गद एकवचन म अपने मूल रूप में ही रहत हैं।

१ देखिए मेरा पुस्तक 'गडवाली लाङ्गण' पृ० ११३ २७

इन्ही प्रकार परिनिष्ठित गडवाली में भी इकारो, दुम्हारो का दा भाति लोभाते = चोरा का।



कभी कभी एक ही कारक की दो विभक्तियाँ और परसग एक साथ प्रयुक्त हुए मिलते हैं। उसमें विभक्ति लोप सी होती है और परसग उसका स्थान लेने को तत्पर दिखाई देता है, जैसे काम का आल्मी—कामौउ कू आदमी। इसने अति रिक्त दो विभिन्न कारक के परसग भी एक साथ प्रयुक्त दिखाई देते हैं जैसे, डाला पर न पछी उडे—वक्ष पर से पक्षी उडा। नौया मजेन तू सबती स्याणी छ—लहकिया मे से तू सबसे सुदर है। चुल्लाभा को खाणो—चूल्हे मे का खाना। काठु मजे की जोन—शिखर पर की ज्योत्सना।

इस प्रकार के उदाहरण हिन्दी की बोलियाँ में तो मिलते हैं, पर साहित्यिक हिन्दी में ऐसे प्रयोगों को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता।

## सर्वनाम

गढ़वाली म प्रयुक्त सब सर्वनाम सस्कृत से आए हैं। केवल प्राकृत और अपभ्रंश की अवस्थाया को पार कर आने के कारण उनमें कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन हुए हैं। गढ़वाली में भी उत्तम और मध्यम पुरुष के सर्वनामा म (सम्बन्ध कारक के रूपा को छोड़कर) अय पुरुष के सर्वनाम स्पष्टतः लिंगा का बाध कराते हैं जैसे वो (वह पुरुष), वा (वह स्त्री) आदि। वास्तव म, गढ़वाली उत्तम और मध्यम पुरुष के रूपा को छोड़कर सब सर्वनामों के स्त्रीलिंग और पुलिग दाना रूप मिलते हैं। हिन्दी म अय पुरुष में स्त्री और पुरुष के लिए अलग अलग सर्वनाम नहीं हैं। गढ़वाली म अय और मध्यम पुरुषो म त्रिया भी सर्वनाम के लिंग वचन के अनुसार चलती है, किन्तु उत्तम पुरुष म त्रिया लिंग भेद का ध्यान नहीं करती जैसे मैं खानूँ में खाता हूँ या खाती हूँ।

सर्वनाम तथा सना की विभक्तिया म कोई अंतर नहीं हाता। कारका के विभिन्न रूप वतान के लिए इन्हीं परसर्गों का प्रयोग हाता है।

### उत्तम पुरुष सर्वनाम

एक वचन		बहु वचन
विकारी कर्ता	मैं, झाँकेँ, मई, मी, मि	हम, हमूँ
विकारी सम्बन्ध	मेरो, मेरी (म्यारो, म्यारी)	हमारो, हमारी
नपरमग रूप		
	मिन, मिन (कर्ता)	
	मीकू, मक (कम-सम्प्रदान)	
	मी से मैसी (करण-त्रयादान)	
	म्यरो, मेरो (सम्बन्ध)	

उत्तम पुरुष के एकवचन म अनेक रूप मिलते हैं। इनम झाँकेँ सरसे प्राचीन है। यह केवल पूर्वी रवान्टी म और वह भी प्राचीन लोकगीतो म मिलता है, अथवा वह लुप्त होता जा रहा है। इसका स्थान अब मु तथा मुई ले चुके हैं। झाँकेँ स्पष्टतः अहम या अहक से व्युत्पन्न है। घज मे यह हों रूप मे मिलता है। अपभ्रंश म यह हऊँ रूप म आया है। मई (< ममा) प्रयोग अपभ्रंश में भी मिलता

है। जापदीय बगला, असमी म मुई तथा सिन्धी मे मु का प्रयाग प्रचलित है। प्राचीन राजस्थानी म भी मू, मो मूह रूप मिलते हैं। गढ़वाली म मु अथवा मुइ का सम्बन्ध भा म्हाम म सम्भव है। 'तौं' और मि रूप प्राकृत जोर अपभ्रंश दाना म उपलब्ध होते हैं। गढ़वाली म हिन्दी का भाति मुझ जोर तुम् रूपा का प्रयाग गही होता। सधनाम रू माध कष का परसग जुड़कर उनसे भाय का व्यक्त क्रिया जाता है जम मक (मया वृत्) झाउक (अहम वृत्)। हम थीर उसक सम्बन्ध कारक क रूप हिन्दी क ही अनुरूप है जोर उनकी व्युत्पत्ति निर्धारित न। चुका है।

### मध्यम पुरुष सवनाम

मध्यम पुरुष सवनाम क निम्नलिखित रूप मिलते हैं

अविकारी	तू, ताऊँ (एक वचन)	तुम (बहु वचन)
विकारी	तेरो, त्व	तुमारो

तू सभी नये भारतीय आयभाषाओं म मिलता है। इसकी व्युत्पत्ति हिन्दी म विद्वाना ने में के समान ही त्वया से दी है।<sup>१</sup> गढ़वाली म तू का विकारी रूप त्व भी मिलता है। इसकी उत्पत्ति त्वया से ही साध्य हो सकती है। डॉ० चाटुर्जी न तू की उत्पत्ति त्वम् से निर्धारित की है। गढ़वाली त्व जोर तू का द्रव्यत हुए कह सकते हैं कि तू की उत्पत्ति त्वया की अपक्षा ससृष्ट त्वम् से हुई है। त्वया से केवल विकारी रूप त्व की उत्पत्ति सम्भव है। तू के अनुरूप प्राकृत म तुह, तुव या अपभ्रंश म तहूँ रूप मिलता है। रवाली म प्रयुक्त ताऊँ मम (जो ससृष्ट त्वम् के) सवाधिक निकट पड़ता है। उसी प्रकार कष जोर वरण म तुए और तई और तुई रूप गढ़वाली त्व या तोई के अनुरूप ही हैं। तुम की व्युत्पत्ति डॉ० मयसना ग प्राकृत तुम्हें से निर्धारित की है।<sup>१</sup> और फिर अरुम क सादृश्य पर उनकी कल्पना की है। हमारो-तुमारो रूपा की व्युत्पत्ति क सम्बन्ध म विद्वाना म मनन नहीं है। कष कारक से गढ़वाली म हिन्दी तुमकी से भिन्न रूप मध्यम हान हैं। रवाली म ताउक (त्व वृत्) रूप प्रचलित है। दोष गढ़वाली में तोइक अथवा त्वक या कभी दिनतिहीन त्व का प्रयोग मिलता है।

### अय पुरुष

गढ़वाली म भी अय पुरुष के रूप परोक्ष अथवा दूरत्व निषयमूचक सवनामा म ही अनुरूप होने हैं। वास्तव म अय पुरुष क सवनामा का स्थान दूरत्वों निदृश्य वाचन ने त दिया है।

१ डॉ० चाटुर्जी मयसना 'बाल्युगा कर्त अवश', पृ० १६६

## निश्चयवाचक सवनाम

दूरवर्ती निश्चयवाचक सवनाम गढ़वाली में **आ** अथवा **वा** (पु०) तथा **घा** (स्त्री०) रूप में मिलता है। अपभ्रंस में इसका प्राक्प्रसङ्ग अथवा श्री और प्राकृत में अजा था। इसकी उत्पत्ति सत्यतः मध्य तथा प्राकृत के श्री जन्म कालिक रूप से मानी गई है।<sup>१</sup> डा० सक्सेना ने इसको निकटवर्ती निश्चयवाचक सवनाम और ऊँ को दूरवर्ती ध्वनिमय प्रतीक माना है।<sup>२</sup> किन्तु इस कल्पना के लिए सम्भावना होते हुए भी आधार नहीं है। डा० उदयनारायण त्रिपाठी ने उक्त मूल ध्वनी स्वीकार किया है।<sup>३</sup> गढ़वाली में इसका निम्नलिखित रूप मिलता है

कता ओ, वो, ऊ (एकवचन)

ओ वो ऊ (बहुवचन)

सम्बन्ध धका

ऊका

येष रूप विकारी रूप **व** (एकवचन) और **ऊ** (बहुवचन) के साथ दिनक्षिप्ता जाड़ने में बनते हैं। घा कर्ता का एकवचन का स्त्रीलिंग रूप है और घों बहुवचन का। अन्य कारका के रूप विकारी रूप का के साथ विभक्ति के मध्य में बनते हैं।

निकटवर्ती निश्चयवाचक के लिए **य** रूप मिलता है

अविकारी **या** (पु०) **घा** (स्त्री०) **इये** (पु०) **इ** (स्त्री०)

विकारी **ये** (पु०), **ई** (स्त्री०) **यू** (पु० और स्त्री०)

प्राकृत में एध, एई रूप प्रचलित थे। अपभ्रंस में एह एहु (पु०) और एघ (स्त्री०) रूप मिलते हैं। हमचन्द्र ने ओइ (दा० १३६४ उ०) का भी प्रयोग किया है। कीर्तिलता (२।७१) में ओ व उदाहरण मिलते हैं। बहुवचन में ए रूप भी गढ़वाली के अनुरूप ही है।

ई स्पष्टतः इसमें सम्मिश्रित है। यू का व्युत्पत्ति इमम् अथवा इमा से सम्भव है। ओ की उत्पत्ति यदि एष (एत्) से मान ली जाय तो ये की उत्पत्ति एते और पुलिग यू की उत्पत्ति एतानि से माननी होगी। सम्बन्ध कारक के रूप में तो तथा ग्वांटी में एको बनने हैं जो द्विन्नी इसका के ही अनुरूप है। एको की उत्पत्ति अस्य से हुई है, जिसके साथ बाद में सम्बन्ध कारक की विभक्ति जाड़ दी गई है। चाटुर्ण्य इसका की व्युत्पत्ति एतस्य से मानते हैं।

इनसे भा भिन्न काटि का सवनाम स्या (सो) तथा स्या (स्त्री०) है। वास्तव में स्यो और स्या का प्रयोग प्राचीन गढ़वाली में अथ पुर्य के अथ में मिलता है, किन्तु कालान्तर वह भी निश्चयवाचक सवनाम का काम देने लगा। अब इसका

१ डॉ० चाटुर्ण्य बेंगाली लैंग्वेज, पृ० ५६६

२ डॉ० बाबू राम सक्सेना शब्दकोश और ध्वनी।

३ डॉ० त्रिपाठी द्विन्नी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ४६३

अथ पुरुष का भाव मिटना जा रहा है। एक बात इनके सम्बन्ध में यह है कि इसके प्रयोग में जात्मीयता या परिचय का भाव निहित होता है, जैसे स्या नौनी (वह परिचित लडकी)। पति पत्नी भी एक-दूसरे के लिए इसका प्रयोग करते मिलते हैं सि कय गन वे-मेर पति—वहाँ गये।

किन्तु निश्चयात्मक सबनाम के रूप में स्यो सि, स्याका भाव की दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यो बहुत निकट की वस्तु की सूचना देता है और वो बहुत दूर अथवा परोक्ष के लिए प्रयुक्त होता है। किन्तु स्यो, सि दृष्टिगत दूरी (योड़ी दूर) के लिए आना है। इस प्रकार स्यो डालो का अर्थ होगा वह पेड़ जा योड़ी दूर पर है और जो दिखाई भी दे रहा है।

इसके निम्नलिखित रूप मिलते हैं

पुलिंग	सु स्यो सो (एकवचन)	स्ये स्यो सि (बहुवचन)
स्त्रीलिंग	स्या	स्यो, सि

विकारी रूप वरणकारक के एकवचन से बना है जो गन्वाली में तन रूप में मिलना है। विभिन्नयाँ इसी त के साथ जुड़ती हैं। बहुवचन में यह तौ हो जाता है। तो की उत्पत्ति तान ने हुई है। तौ कम कारक के बहुवचन का रूप भी है। स्त्रीलिंग में भी विकारी रूप तौ ही प्रयुक्त होता है। बस एक वचन में त के पुलिंग रूप पर अनुस्वार लगाकर त रूप में स्त्रीलिंग की सूचना दी जाती है। स्यो तथा स्या स्पष्टतः सम्प्रत वे स तथा सा हैं। स्यो तथा स्या में श्रुति के आगम का देखते हुए इनके साथ एव के योग का कल्पना की जाती है जसे स्यो स एव स्या सा एव। सम्बन्धकारक में इसके तत्तो या तेन्नी रूप बनते हैं। प्राकृत और अपभ्रंस में भी सो, सु (एकवचन) और से, सि (बहुवचन) का प्रयोग मिलता है। हिन्दी जो है सो की भाँति ही गढ़वाली में भी सो (सु) वाक्योपयासाय भी प्रयुक्त होता है, जैसे सु तुम इनु बोले दान।

सम्बन्धवाचक सबनाम

इस सबनाम के निम्नलिखित रूप मिलते हैं

मूल रूप	जो जु (एकवचन)	जो जु (बहुवचन)
	जू, ज्वा (स्त्रीलिंग)	जू ज्वा (स्त्रीलिंग)
सविभक्ति रूप	ज (पु०) ज (स्त्री०)	जौ (पु० तथा स्त्री०)

प्राकृत में जू (पु०) और जौजा जौई (स्त्री०) रूप उपलब्ध होने हैं। कर्ता का सविभक्ति रूप जन सम्प्रत येन के अनुरूप प्रतीत होता है। इसी प्रकार बहुवचन में अनुनासिकता के कारण आयो हुई प्रतीत होती है। यद्यपि ज की व्युत्पत्ति यभि और जौ की याभ्याम् अथवा येषाम् से भी (हिन्दी में विद्वानों के

मता का अनुमरण करत हुए) दी जा सकती है किन्तु हमारी दृष्टि में करण कारक के रूपा से ही विकारी रूप सम्पन्न हुए हैं।

### प्रश्नवाचक सवनाम

इस सवनाम के अतगत कोश्रं (कु), कूण तथा क्वा आते हैं। कूण का प्रयोग केवल रवाल्दी-जौनपुरी में होता है। इनका रूप इस प्रकार है

पुलिंग कूण, कोश्रं (कु)	स्त्रालिंग क्वा
सविभक्ति रूप के (एकवचन)	कों (बहुवचन)

अत्रश्रंश में भी क्वाई और क्वाण दाना रूप थे। हिन्दी के कौन के समान ही कूणकी व्युत्पत्ति क पुन से हुई है और कोश्रं या कु में सस्त्रंन क का स्पष्ट आभास है। प्राकृत में करण में क्किणा रूप मिलता है जो कि से सयुवन भी मिलता है किणा वि। यह गन्नाली कन क अनुकूल पड़ता है। क्वा रवाल्दी गढ़वाला की अथ बालिया में क्वाश्रं रूप में मिलता है। हिन्दी की कई पूर्वी बालिया में तथा बज भाषा में भी यह किंचित् ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ इसी रूप में मिलता है। मराठी में यह क्वाय रूप में विद्यमान है। जौनपुरी क्वाह का अध्ययन करते हुए इसकी व्युत्पत्ति डा० उदयनारायण तिवारी ने मस्कून कम्प से निर्धारित की है।<sup>१</sup> डा० चमा भी इसका सम्भव किम् सनही मानते हैं। क्वा क अथ में क्यू के क किल आदि प्रत्यय युक्त रूप तथा कुछ भाग में काड़ का प्रयोग होता है। इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार सम्भव है क्यम् > किउम् > क्यू यथवा क्यम् > म० आ० भा० > किह > गढ० के + क।

### अनिश्चयवाचक सवनाम

अनिश्चयवाचक सवनाम के रूप में क्वी तथा कुछ या किछु का प्रयोग होता है। क्वी चेतन तथा किछु अचेतन वस्तुओं के लिए आता है। क्वी का विकारी रूप क है। क्वी की व्युत्पत्ति स्पष्ट कोऽपि से को वि > के वि > क्वी रूप में हुई है। किछु की उत्पत्ति किंचित् से अधिक यकिनमगत प्रतीत होती है।

### निजवाचक तथा आदरवाचक सवनाम

आत्मसूचक सवनाम के रूप में आफू या आपणा का व्यवहार होता है। आफू अविकारी है। आपणो (पुलिंग), आपणा (पुलिंग बहुवचन), आपणी (एक

१ डॉ० तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० २३३

२ डॉ० धारद्वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास पृ० २८६

चन तथा बहुवचन का प्रयोग प्रायः विभेपण के रूप में होता है। ण > ड, र भी आ मिलता है—आपडो, आपरो।

समूहवाचक सवनाम के अतगत सम्ब उल्लेखनाय है। यह संस्कृत सब क कर्ता क्रम बहुवचन रूप मर्वे (>अप० सवे) से उद्भूत है।

### सयुक्त सवनाम

कभी कभी दो सवनामों का साथ साथ प्रयोग भी मिलता है। इसके अनेक उदाहरण हैं जम

सबो सबी बोला गव मोई कहता है।

क्या बिछु करला क्या बुछवहूँ ?

जु बिछु करलाई तो कुछ परते हो ।

ज्वी-कवी ओत तो काई जाता है ।

जनो कनो फूल नो यो यह जमा कसा फूल नहीं ह ।

जसा कसा ना अथ साधारण में है।

ज ई क ई का नोना जिस गिसा क लडन ।

जिस निसी का अब है काइ भा माधारण व्यक्ति ।

जया कुछ ते सव जितना कुछ हो सफता है

इया उया म काम नो चनदा इतन उतन म काम न र ।

इनमें म क प्रयोग साहित्यिक हिंदी में नहीं मिलते।

### सवनाममूलक विशेषण

विभेपण के समान प्रयुक्त सवनाम मुख्यतः परिमाणवाचक, प्रकारवाचक तथा समावाचक हैं। प्रकारवाचक विभेपण के रूप में एगो (इनों) कगो (कना) ँगो (जनो) तगो (तनो) आदि द्विविध रूप मिलते हैं। इन सबका व्युत्पत्ति संस्कृत में इस प्रकार हुई है एगा < एनाद्ग तगो < ताग, कगा < कीग तगा < याग। अपभ्रंश में भा जइसो तइसो, कइसो रंग सम्भव थ। इनो तनो कनो तां नो म अत होनेवाले रूप भी किसी प्रत्यय के सहयोग से ही निपन्न प्रयोग होते हैं।

परिमाण का व्यक्त करने के लिए इयाँ उयाँ कवाँ जपाँ तपाँ विभेपण में प्रयुक्त होता है। इनका अन्य स्वर प्रायः दुबल रूप में उच्चरित होता है। इनके अनिश्चित प्रमाणवाचक विभेपणा का एगो अर्थ रूप भी उपलब्ध होता है इयरा उयरा कयरा जयका तयका (क > ग = द्यगा उयागा तादि

नी)। य पूर्वोक्त रूपों से सहसा भिन्न नहीं प्रतीत होते। केवल उन पर का प्रत्यय झूठ गया है। का वास्तव में अल्पना को व्यक्त करनेवाला प्रत्यय है। इसका सम्बन्ध सस्वृत इका अथवा क से प्रतीत होता है। इयतिका > ऐतिय > इतिय > गट० इया या इयगा। जहाँ तक इन रूपों का सम्बन्ध है, प्राकृत में एतक, कतक तथा ङाली में ऐतिय, क्तिय और जपभ्रग में ऐतिउ केतिउ, तेतिउ रूप मिलते हैं। पिणेत्र ने इनके वन्धिरूपा की भी कल्पना की है (परि० १५३ पिणेल)। मुन्नोय मराठी इत्का, इतुका सिन्धो एतिरो, सिहाली एतकिन्।

इति, तनि, उति, कति, जति यादि का व्यवहार सम्भाव्यवाचक सवनामिक विशेषण के रूप में होता है। कति, तनि आदि स्वयं सस्वृत में इसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। उतुत् सम्भव है, इसी के सादृश्य से अथ शब्द भी सस्वृत में प्रयोग होत रहता है। इति शब्द भी मन्वृत में मिलता है, यद्यपि उसके और गढ़वाली में प्रयुक्त अर्थ में थोड़ी भिन्नता है। फिर भी दाना इति बहुत भिन्न नहीं हैं। सस्वृत के इयन् कियन् आदि रूपों से इनकी व्युत्पत्ति निश्चित करना उचित नहीं प्रतीत होता।

गाकार की गुह्यता और लघुता प्रकट करने के लिए ग्वाली में इतरो, ततरो उतरा, जतरा, कतरा आदि रूप मिलते हैं जस, जतरा छ कितना बड़ा या छाटा है। य रूप का प्रत्यय के सहयोग से मन्वृत हुए प्रतीत होते हैं।

इन सब सवनामों का दखन के बाद एक धारणा बनती है कि ये सभी एक ही मूल में सम्बन्धित हैं और इनके विभिन्न रूप केवल एक ही समूह का बनाते हैं

गुण	सख्या	परिमाण	आकार
यगा, इनो	इति	इया, इयका, इतना	उतरो
वेसी, उनो	उति	उया, उयका उतना	उतरा
तगा, तना	तनि	तया, तयका, ततना	ततरा
कगो, कनो	कति	कया, कयका, कतना	कतरा
जगा जनो	जति	जया, जयका, जतना	जतरा <sup>१</sup>

इन कल्पना के लिए पर्याप्त तथ्य है कि प्रत्येक वर्ग के शब्द एक ही शब्द पर विभिन्न प्रत्ययों के योग में बने हैं। द्विती में आकार, परिणाम और सख्या के लिए जना प्रत्यय मावनामिक विशेषण नहीं हैं। ग्वाली उस दृष्टि से विशेष है, किन्तु यह नेद हात हुए भी कल्पित रूप में इनका प्रयोग एक-दूसरे के लिए ही जाया करना है जस, (१) इति कित्वा, (२) इया कित्वा (३) इतरो कित्वा द्विती में इन सबका अनुवाद एक ही यानो 'केवल इतना कित्वा' के रूप में ही हो सकता

१ तुल्यार्थ क्रम इतो कितो, कितो कितक, कितक वान रूप तथा इतमगा क्रोड्डा उरु अरु, तना आदि।



है। इनके द्वारा गुण का बोध भी समान रूप में कराया जा सकता है, जस (१) इति स्वाणी (२) इषा स्वाणी, (३) एशी (इनी) स्वाणी, (४) इतरी स्वाणी। इन सबका हिन्दी अनुवाद होगा इतनी सुदरी।

इतन अभेद के होत हुए वास्तव में सब एक ही भाव के द्योतक नहीं हैं। इस प्रकार के प्रयोगों में भी उनमें जो सत्या आकार, गुणोपम्य, अण, मात्रा और प्रकार का भेद व्यजित हाता है वह तब भी लुप्त नहीं होता, यद्यपि उसे अनुवाद में एक उपयुक्त शब्द के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

## विशेषण

गठवाली में विशेषण लिग और वचन में प्रभावित हात हैं। मत्पादा के लिग के अनुसार ही विशेषणों के भी लिग होने हैं। उदाहरण के लिए, काळा बन्, काळा गौडी। कम सदा प्रयुक्त विशेषण में भी इसी नियम का पालन होता है। इसी प्रकार वस्तु अथवा प्राणिया में गुणत्व अथवा लघुत्व की अभिव्यक्ति के लिए उनके प्राकृतिक लिग में जिस प्रकार अन्तर सम्मिल है उसी प्रकार विशेषण में भी। इस दशा में व्याकरणिक लिग के अनुसार ही विशेषण का रूप निर्धारित होने की बाध्यता है जैसे काळा गौडी काळी गौडी। हिंदी में इसका प्राकृतिक अनुवाद इस प्रकार होगा बाला बड़ा गाय, काली छोटी गाय। डो लाकार की गुणता और डी लघुता को प्रकट करता है। इस प्रकार य प्रत्यय स्वयं विशेषण का कार्य करने लगीं उन्हीं हैं जैसे गौडी बड़ी गाय, गौ सामान्य गाय गौडी छोटी गाय। इनमें डो पुलिग और डी स्त्रीलिग का प्रत्यय है। इसी प्रकार लो, ली तथा टा, टी प्रत्यय भी डो, डी की ही परम्परा का निमित्त हैं किन्तु इनका प्रयोग विशेषण रूप में कम ही मिलता है। ये मुख्यतः आकार की गुणता और लघुता ही नहीं ध्वनित करते हैं परपता, सुन्दरता, कामलता आदि गुणों का भी प्रकट करते हैं जैसे, नय (सामान्य नय), नयली (बड़ी नय) नयली (छोटी नय) और धनु (सामान्य धनु), धनेटी (बड़ा धनु), धनेटी (छोटा धनु धनुही)। इस प्रकार मत्पादों के साथ प्रत्ययों के जुड़ जाने से वे एक निश्चित अर्थ के धातक हो जाते हैं और वे अपत्यक्ष रूप से उपपद का काम करने लगते हैं। भाषा के प्रारम्भिक रूप में इस प्रवृत्ति के दशान विशेषण रूप से होते हैं। आज भी कई विचलित भाषाओं में—उदाहरण के लिए बंगला में इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं—गाछटा यह बड़ा पद, गाछटी यह छोटा मुन्दर पद। गठवाली में जहाँ तक स्त्रीलिग बनाने का प्रश्न है, जब विशेषणों के स्त्रीलिग बनाने होते हैं तो वे भी सत्पादा की ही भाँति इकारात्त हो जाते हैं, जैसे बड़ी-बड़ी, काळी-काळी।

है। इनके द्वारा गुण का बोध भी समान रूप में कराया जा सकता है जस (१) णि स्वाणी, (२) ह्य स्वाणी, (३) एशी (इनी) स्वाणी, (४) इतरी स्वाणी। इन सबका द्विती अनुवाद होगा इतनी सुदरी।

इतने अभेद के होते हुए वास्तव में ये सब एक ही भाव का द्योतक नहीं हैं। इस प्रकार के प्रयोगों में भी उनमें जो सख्या आकार गुणोपम्य, अथ मात्रा और प्रकार का भेद व्यञ्जित होता है वह तब भी लुप्त नहीं होता, यद्यपि उस अनुवाद में एक उपयुक्त शब्द के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

## विशेषण

गढ़वाली में विशेषण लिंग और वचन में प्रभावित हात हैं। सनापदा के लिंग के अनुसार ही विशेषण के भी लिंग हात हैं। उदाहरण के लिए, काळा बल्द, काळी गौडी। कम सदश प्रयुक्त विशेषण में भी इसी नियम का पालन होता है। इसी प्रकार वस्तु जयवा प्राणियों में गुरुत्व अथवा लघुत्व की अभिव्यक्ति के लिए उनके प्राकृतिक लिंग में जिस प्रकार अन्तर सम्भव है, उसी प्रकार विशेषण में भी। इस दशा में व्याकरणिक लिंग के अनुसार ही विशेषण का रूप शासित होने को बाध्य है, जैसे काळो गौडो काळी गौडी। हिन्दी में इसका गार्हिक अनुवाद इस प्रकार होगा—काला बड़ा गाय, काली छोटी गाय। डो आकार की गुरुता और डी लघुता को प्रकट करता है। इस प्रकार य प्रत्यय स्वयं विशेषण का काय करत दीखत है जैसे गौडो बड़ा गाय, गौ सामान्य गाय, गौडी छोटी गाय। इनमें डो पुलिग और डी स्त्रीलिंग का प्रत्यय है। इसी प्रकार लो, ली तथा टो, टी प्रत्यय भी डो, डी की ही परम्परा को निभाते हैं किन्तु इनका प्रयोग विशेषण रूप में कम ही मिलता है। य मुख्यत आकार की गुरुता और लघुता ही नहीं ध्वनित करत है परंपरा, सुन्दरता, कामलता आदि गुणों का भी प्रकट करत है, जम, नय (सामान्य नय) नयलो (बड़ी नय), नयली (छोटी नय) और धणु (सामान्य धनु) धणेटो (बड़ा धनु) धणूटी (छोटा धनु धनुही)। इस प्रकार सनापनों के साथ प्रत्ययों के जुड़ जान से वे एक निश्चित अर्थ के द्योतक हो जाते हैं और वे अपत्यक्ष रूप से उपपद का काम करने लगते हैं। भाषा के प्रारम्भिक रूप में इस प्रवृत्ति के दान विशेष रूप में होते हैं। आज भी कई विकसित भाषाओं में—उदाहरण के लिए बंगला में इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं—गाछटा यह बड़ा पेड़, गाछली यह छोटा मुदर पेड़। गढ़वाली में जहाँ तक स्त्रीलिंग बनाने का प्रश्न है जब विशेषणों के स्त्रीलिंग बनाने होत हैं तो वे भी सनापना की ही भाँति इकारात्त हो जाते हैं, जैसे बड़ा-बड़ी, काळो-काळी।

यचन की दृष्टि में प्रथित परिवर्तन विनोदना में नहीं होत। यचन ओकारात् विनोदना एवमन्त में आकारान्त और बहुवचन में ओकारात् यनकर सविभक्तिरूप धारण करने हैं।

गण स्थरों में अन्त हो जाने विनोदना सब दगाआ में अविद्यत मिलते हैं।

### तुलनात्मक श्रणियाँ

गडशासा में तुलनात्मक श्रणियों को प्रकट करने के लिए मसूत की भाँति तरबूज तथा तावन्न प्रत्यय नहीं हैं। यचन आकार की लघुता और गुरुता को ध्यनित करने के लिए प्रत्यया का प्रयोग किया जाता है।

गमानता का भाव अनङ्ग शेष द्वारा व्यक्त किया जाता है उनका परिपय जाग किया जा रहा है। सी गड़वाली में सा के अन्त में अनिश्चय प्रकट करने के लिए हाँ गाँउ किया जात रहा है जो सब दगाआ में अविद्यत रहता है। उसमें तुलना का भाव वास्तव में अविद्यत रूप में विद्यमान होता है जहाँ गौरी-नी नौरी—दुद्ध गारा लडकी।

मनानता सी, जसो, जसो जसो, नी, तरौ (तरह) सरी, सारिषया आदि गणों में प्रकट की जाने की सामान्य परम्परा है। सी मसूत में समस्त व्युत्पन्न है। सारिषया का सम्बन्ध जसो से सम्भव है और सरी भी उसी का रूप है। जसो जसो में सम्पन्न हुआ है। तुलनात्मक श्रणियों का भाव कम ज्यादा इत्ये भिन्न आदि गणों में व्यक्त किया ही जाता है इनके अतिरिक्त ही सी जोर चुली जनी प्रयोग होता है। नेपानी में घाड़ का बगला में चेये प्रयोग मिलता है। गडवाली में उमर मुराबत में च मिलता है। ती मसूत तर में भी व्युत्पन्न हो सकता है। तुलना में इनका प्रयोग हम प्रचार होता है

ज्या में ती बठीया वा राँड होया तो मुझ्ग अधिक मुन्नी हो (भगवान कर) वह विषया होव।

त्व च त में भनी—मुझ्ग तो में भनी।

वा त्व चुली कराणी छ —वह तुभम अधिक सु डर है।

गण का मात्रा यूनता अधिकता या अस्पष्टता प्रकट करने अथवा उनका कुछ अनास मात्र होने के लिए प्रायः विनोदना को दुन्तराने की परम्परा है। उन् हरण के लिए लाल लाल सी बावूग। कुछ लाल सी बकरी जर्पान हलके लाल रंग का बकरी।

गुणाधिक्य तथा भाषाधिक्य को प्रकट करने के लिए स्वरघात का विनोद महत्त्व है। विचारू भ स्तू मनखी छी बेचारा बहुत भला आदमी था। भना क भ रलू उच्चारण से गुणाधिक्य का भाव प्रकट किया गया है। उसी प्रकार अन्य स्वर का प्लुत बनाकर सट्टोड निमी बहुत खट्टा नीवू। भ लीड नीनी बहुत नी

## विशेषण

सुन्दर लहकी—वही प्रभाव पदा किया गया है।

बहुत सम्भव है यह प्लुत ध्वनि सस्त्रुत उत क सथाग स जायी हो, किन्तु हस्व स्वरों में यह ध्वनि मध्य में हाती है, ज से,

लाजल फूल बहुत लाल फूल।

सपज (या चिट्टा) कपडा बहुत सफद कपडा।

यहा स्पष्टत स्वराधान मध्य में पडता है इनलिए उपात्य स्वर म ही प्लुत ध्वनि आयी है।

## संज्ञावाचक विशेषण

गठवाली म सख्यावाचक विशेषण हिंदी तथा उसकी बोलियों के ही अनुरूप है। इसलिए महा उन पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नही। प्राकृत म एक का चचारण एक हा गया था गठवाली म बत्र ऐक अमना यंक है। अनेक प्राकृत म अणोअ था गठवाली म वह अति रूप म मिलता है, जमे अति भा रघुनाथ को ? ग्यारह क लिए प्राकृत का भाति हा गठवाली म एग्यार अग्यार रूप चलन है। द्विसष्ट की तरह ही है। किन्तु गठ म मधुवन होने पर वह दुहा जाता है—दुमुरया, टमास्या, दुपया। दा क समूह के लिए प्राकृत म दुवे जाता है गठवाली म दुय्ये प्रचलित है दुय्य ण्या। बीम क समूह को बीमी कहा जाता है, जसे, एक बीमी चा बीमा जाति। उमा प्रकार चार के समूहको चौक < चतुष्क कहा जाता है। गग क माथ चार चौ रूप म मिलता है, जस, चौखाल, चौमाटो। सौ के लिए स दा का भी व्यवहार होता है।

अमवाचक विशेषण म हिंदी की तुलना म कोई अन्तर नहीं मिलता। केवल व पुंलिङ्ग म आकारान्त और स्त्रीलिङ्ग म इकारान्त हाते हैं।

गुणात्मक सख्याएँ ममान ह। य भी पुंलिङ्ग में ओकारान्त होता हैं। पट्टी पहाडा म एका दोणी निर्मा, चौका पजा, छक्का सत्ता, अट्टा, नमा, दशाकी (दशक) जाति का व्यवहार होता है।

सख्या का निश्चयात्मक भाव व्यक्त करने के लिए सख्यासूचक शब्द एका रात हा जाता है और उपात्य व्यजन द्वित्व हो जाता है, जस, दुय्ये, तीने चारें, पाच्व जाति।

अनिश्चय का भाव व्यक्त करने के लिए सख्या क माथ एक लगाया जाता है जन चारैक, पाँचक, मानैक चारैक आदि। प्रत्येक सख्या को उसकी बाद वाली सख्या म जोड़कर भा क्तौ भाव प्रकट किया जाता है। उदाहरण के लिए द्वि चार, पाँच-सात, दस बार आदि। उमी प्रकार प्रत्येक त्रिची-सख्या विशेषण के रूप म एकेक दुन्दि आदि रूप सख्या की आवृत्ति स माध्य होने हैं।

सम्पावाची समाप्त सम्बन्धी शब्द भी गढ़वाली में प्राकृत और अपभ्रंश के अनुरूप हैं

दाँ—एक दाँ, द्वि दाँ, (सम्भृज एशदा) ।

खुटो मगुत्तो < टुल्य दुगुटो, चौगुटो, तिसुटो ।

हारो (आरो) < शार गिगरो, एखारो, टुहारो ।

वार दोवारो, चौदारो (गुणा के अर्थ में, चतुर्वारि > चौवारो) ।

सावनामिक विशेषण का परिचय सवनाम-सम्बन्धी अध्याय में द दिया गया है ।

## क्रिया पद

गड़वाली में अधिकांश क्रियाएँ सस्त्रुत, प्राकृत और अपभ्रंश से उत्तराधिकार में आई हैं। इन स्थितियों से गुजरते हुए मूल रूपा में जा परिवर्तन हुए हैं, उन पर विद्वानों द्वारा पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ इतना ही लिखना प्रासंगिक होगा कि गड़वाली में क्रिया रूपों की प्रवृत्ति सरलता की ओर ही अधिक है और काल रचना ब्रह्मन्त और सहायक क्रियाओं के तिट्ठत तद्भूव रूपा के समन्वय से होता है।

### मिद्ध धातुएँ

गड़वाली में इनकी संख्या इतनी अधिक है कि इन सबकी सूची एक स्थान पर देना सम्भव नहीं। उनमें से अधिकांश हिन्दी के अनुपम ही हैं।

अनेक धातुएँ ऐसी भी हैं जिनका प्रयोग हिन्दी में नहीं होता, किन्तु वे सस्त्रुत के मूलरूप का सुरक्षित रखे हुए हैं। उदाहरण के लिए रवाल्डी में घुग (बठना), भान (मन), दिशे (दरदन), भनण (भन), नाण (नी), पाचणू (पाच्), षातणू (कत) आदि रूप दृशनीय हैं। दग धातु रूप माना जाता है पर भाषा-वैज्ञानिक उसका मूल रूप  $\sqrt{\text{पाग}}$  मानते हैं। गड़वाली में आज भी उजाल के जम में पश्यालो (जिसमें देखा जा सके) गद का प्रयोग होता है।

गड़वाली की कुछ धातुएँ अपने सस्त्रुत मूल के साथ यहाँ दी जा रही हैं

कत > कानणू (रवाल्डी वाली में)

खन > खनणू (खाइ नी खणणी)

खिद् > खिदणू, खिजेणू (बाबा जी खिजला)

ग > घूळणू (गळ घूळी छुलो गळा न बिलकी)

जन् > जनणू (जण्यो नीना विण्या कूडा)

मुच् > मुचोणू (रिण मुचे न कागो)

चम् > चोणू (पाणी चोणू)

कय > कयणू (कॅय नी कयणा चदा। सब्बो छै बोनु कि कयणू छ।)

बिन् > चेतणू चितोणू (सू आई मन चिताइनी)

गुध > मुजोणू (कपडा मुजाईक कख की रपारी)



- रम > समळणू (रम में भी ती समलती)
- घ, ह > हुणण (जो हुणणा)
- मत्र > मत्रणू (साण मत्रणू)
- मुन > लीण (रवा जो छल लीणक)
- नण > णणू (घर का खातिर आवरी पसी, घूर विचारो बौड नती।)
- नी > ताणा (तांगे के ना—रमाली क्षत्र म)
- दव > रुमण दवाणू
- दाव > दावणू (प्राटन दाव, गड० दा, गप०)
- ज भ > जमाणू
- धे > ध्याणू (मा तू ध्याम)
- तार > तरवणू (गूब \* तू दू तनी क्या छ तरवणी ?)
- स्पर > पारणू (पाही जाली ऊ)
- युव > भूरणू (कुत्ते का भौकना)
- भण > भणनू (भुणनू भणनू)
- रिझ > रीगणू (म० चलना गड० गाव घेर म घूमना)
- बाण > बाणणू (पक्षिया या बोचना—गड०)
- वानय > वौडणू (रितु चौही एन व )
- जूर > भूरणू (त्रिकुही भूगी ब्य बाटु दसी गी)
- तूप > तूमणू (परमसर, तूसी जा)
- भक्ष > भक्षणू (भूतन भक्षे)
- बड > बजीग (गरजोही बन)
- छिड क्षीय > छीजणू (सुबो छीजीय पाणी)
- गण > गणनू (मँणी गूवी छ ही प छ)
- घव > घसणू (जय बसणू तय घमणू)
- चिन् > चिनणू (चिण्या कूडा जण्या नीना)
- मज > मजणू (भांडा मजोणू)
- स > सरणू (ओहू सरदू नी)
- तड > ताडणू (खांखा ताडणा) व ताडणू
- हन् > हाणणू (पशुआ का हाँकते हुए मारना)
- हानल के अनुसार हाँकना < हक्क + क
- घज > वरजणू (मरया क वरजणू होया क खरचणू)
- लिप > लीपणू

- गघ > गायणू (शापाङ्कुन खात्रीक मूल)
- बुह > हुणू (भैमी दूणी)
- कुच > काचणू (दळा उवा लाठी काचणू)
- क्षत् > उतणू (अनि जी खनि)
- स्फुर > फरराणू (आखी छन फफराणी)
- क्षल > छालणू (ज + खालणू भी होता है)
- क्षु > छिऊणू (कयी जाद छिउणू नी)
- प्रस्य > पाणू (गटा पादणी बल चूना की)
- स्फल > प्रा० प्ररपायक फालइ गढ० पाळी मारणी
- भज > भानणू (बदल रवान्ठी म)
- सट्ट > सस्त्रा म मारना क अय म गट० सटगीणू तना रूप सटा— मारन की छना।
- लुन > लीणो (फचल काटना)
- बुध > बूभणू (प्राहुन बुग्भ-)
- पाच > पाचणू (रवाल्ता म)
- सोव > सूणू
- वाच > वाचणू दच्याणू
- बिह्ल > बीणणू (मानु चाना चापा करदी तू इया नी चीतनी)
- मौल > मौळणू (मालदति > प्राहुत मौलइ)
- मौळी जाली डाळी व्व फूलला बुरास।
- कल्प > कल्पणू गटवाली म यह त्रिया कल्पना करन क अय म नहीं वरन् दूसर का खान दख मन म उम स्वाद की कल्पना करन तया नजर लगाने क अय म प्रयुक्त हाती है।
- भुज > भूजणू (भट भूजपा)
- कण > कणाणू (जर मा कणाणू छ)
- कास > कासणू
- क्षय > छीजणू खजणू
- कट्ट (मध्यकालीन आयमापा) > गाढण
- म० जा० भा० √ कुट्ट > कूटणू
- √ कुद > कुद्द > कूदणू
- मा० जा० भा० खाज्ज > जाणण
- गोट > गाढणू
- चुण > चूण्डणू

च्युत > चूणू

म० जा० भा० चक्क > चक्कणू

पूर > पुगणू (गाणू नी पुगणू)

बलगति > बगणू (गाडि बगणी छ)

वस > वगणू

म० आ० भा० लुवर — > लवणू

हृ > हरणू

म० आ० ना० लोट्ट > लूण

रतम — > रामणू

रघ > रघणू रघणू

हिण्ड — > म० आ० भा० हिण्ड > हिण्डणू

म० जा० ना० मुक्कड > मूवणू

कई उपाग धातुए नी गइवाला म गिड रूप म मिलतो हें

झभि झज > भीजणू (वर्ना मान भीज)

उप येष्ट > ओडणू

उत घट > उघाडणू (द्वार उघाट)

उत-गत > उछाळणू

उत पद > उपजणू

प्र-स > पसरणू पगारणू

परि घा > परणू

अय-तु > औतरणू (देवता औतरणू छ)

परि घट > रीटणू रीटणू

उत लन > उग्राडणू

उत घल > उवळणू (सना—उकाळ)

उत-पत > उपाडणू (प्रा० उप्पाड)

अव-लोक अथवा अवलक्ष्य > अळैराणू (प्रा० अवलक्ष्य)

नि भातय — > याळणू

वि बुध्य — > बीजणू (जागन व अथ म)

प्रा-यत > पीडोणू (दूट पीडाणू)

वि आसय — > विसोणू (भार विसोणू)

उत् बापय — > उस्पीणू (भुजी उस्पीणी)

उत् जटय — > उजाडणू

प्र उऊठ > पाजणू (पोछना)

- उत्-गल > उखणू  
 परि वीक्ष- > परेगणू  
 उप विग > वठणू, बुमणू (रवान्टा म)  
 उप + शृण- > उम्दीणू  
 उत् चाप- > उच्योणू (नौना मा वाग्रह उच्योये)  
 उत्-कामय- > उजाळणू (उत् चल् वाला हप भी)  
 उत् स्फुर- > उफरणू (धागा उफरिग)  
 सम घञ- > साजणू (सपतव क्या माजण)  
 उत् कृ- > उमेळणू, उकरणू  
 प्र स्नाति > पहोणू (ममी पहाण)  
 अय चन- > जागति > १० औठया लगणू  
 वि कृ- > विक् चणू (नौना विगच्यू छ)  
 उप विग > बुगणू (रवान्टी म)  
 नि-मन् > यूतणू (तव यूतीन हल्दानी का बाडी)  
 उत्-ग्राह्य- > उगौणू (रुप्या उगणा छन)  
 उत् व.पम- > उवाणू (कपडा नी उवाया)  
 अय हर > जवारणू (मा जवारेड मैन)

यही नटा, तेक गिज्जत भी अयने प्रेरणाथक रूप और भाव को लुप्त कर

सिद्ध धातुजा म परिगण हा गए ह

- अययति > बनीणू (पून अडक उण्डा नारा कुडो)  
 तपयति > सगाडणू (मत्तू सागू मू मपडाक ड्वारीमू)  
 रोषयति > मुजणू (द की मुजना हादग)  
 कोपयति > कोरण (मारी-कोरी माा माया का मुडारो)  
 छादयति > छोणू (कूडा छोणू छ)  
 तापयति > तापणू (जाग छ तापणू)  
 स्थापयति > थापणू (मूरत छ जनी थापी)  
 पूरयति > पुरयोणू  
 समपयति > सोपणू  
 लिपयति > लीपणू  
 निष्कासयति > निक्कणू (दात त्वेक छ निक्कणू ?)  
 प्रसारयति > रसाणू पसणू

ऊपर के विकरण स स्पष्ट ह कि गढ़वाणी की अभिवाग धातुएँ तद्भव हैं। हिंदी की ४०० से अधिक धातुएँ जिनका सफलन हानले न दिया ह, गढ़वाणी म भी मिलती हैं। किन्तु दाज धातुआ का भी उद्यम अभाव नहीं। गढ़वाणी का कुछ

ऐसा ही धातुआ की एक मशिन मूँती यहाँ प्रस्तुत की जा रही है

- हरषणू मोना सुप्त होना गवाना  
 भूँजणू बर्न करना बिगा छन का बंद करना  
 गीजणू अभ्यन्त होना  
 नितोळणू निवालना  
 उटणू नट हाना बिगड़ना  
 मुचणू त्रण स मुक्त हाना त दना  
 घटणू गादना सूटे गाड़ना  
 धदणू बुलाना आमयित करना  
 बोवणू बाभा उठारर से जाना  
 जप्वाळणू प्रताडा करना  
 डोयणू बिगी द्रव म डुवाता  
 दोयणू पाछे पडना छिपकर देयना  
 तचणू गम हाना तपणू स भिन  
 विरीणू जतग करना  
 टोमणू रागना छेन करव बिगी चाउ को रागना  
 स्तेसणू पीतना गाटे द्रव स पीतना  
 छोळणू मथना पानी मिराना  
 सोरणू साप करना बुहारना  
 बिलवणू भपटना  
 घळणू धातु का क्षयित होना  
 चळणू चौकना चमरना  
 जळणू रूँप्या करना  
 मळणू उमगित या स्फुरित हाना  
 तरवणू बूद बूद कर बिगा द्रव को गिराना  
 पतोळणू हाथ लगाकर बिगी चीज को गटा करना  
 पितोडणू दवाना  
 तरोळणू फलाना बिभेरना  
 चीमणू दूगर की दो हुई वस्तु को हाथ म लना  
 सिलवणू सीटी मारना  
 बुरवणू कुचरना  
 झुरणू टुवा अथवा कमजोर होना  
 झुरवणू पगुआ का तेजी से दौडना  
 बोरण छेन करना

भुचणू भोगना सभवत सञ्चृत भोज से सम्बन्धित  
 भुरचणू गर्मी से भुन जाना  
 छौपणू भागकर पत्रक लेना  
 भटमाणू पुकारना, चिल्लाना  
 दनकणू दौडना  
 घेंचणू पीटना  
 विगचणू विगडना  
 घटमणू दौडना  
 मटौणू माजना, मिटाना  
 माठणू भेडा की ऊन निवानना  
 पाकणू कित्ता पर किय गए उपकार का भगडे के समय प्रकट करना  
 छोरणू दारीक छेत् स बाहर निकलना ।

गडवाली म हिन्दी क अतिरिक्त नव्य भारतीय भाषाओं की भी अनेक क्रियाएँ मिलती हैं, जैसे

उकळणो चढना, राजस्थाना उकळणो  
 खोसणो छीनना राजस्थानी खूसणो  
 खटौणू पानी की घारा को किमी जोर उगाना तुलनीय बगना खाटा  
 घसणू लीपना, बगला घस—  
 टोपणू उठाना बगला टिपा—  
 दोसणू फेंकना बगला डला  
 पूगणू पूरा हाना पजाबी पुगणा, लहदा पुगण, गुजराती पुगवु  
 रडणू धिसडना, गुजराती रडवु  
 पोचणू प्रवेश कराना गुजराती काचवु  
 सतणू पानना पोयना पजाबी सतणा  
 सनकौणू सकत करना, अवधी सनकारव  
 तोपणू ढकना (आग तापणा) तुलनाय अवधी तोपना  
 बुकाणू चवाना अवधी बुकाइब, म० बुका—  
 निमडणू समाप्त हो जाना, अवधी निबरड  
 सटकणू भागना, तुलनीय पजाबी सटकणा  
 नगणू भागना चना जाना, तुलनीय पजाबी नगणा  
 खामणू छीनकर उतारना, तुलनीय पजाबी घसमणा  
 घूटणू निगलना घूटना पजाबी घुट्टणा  
 गिडकणू गिडगिटाना पजाबी गडकणा

चाँदणू पता करना पजावी चाँदणा  
 ठूरणू फिरना, पजावा टूरणा  
 नठणा मुकरना पजावा नठणा  
 एरोळणू पताता, पजावी एरोळणा  
 फोळणू तातना पजावा फोळणा

### मातृ धातुए

प्राकृत म हगायद, पटायद, जादि शिवात् मिलत हैं। पजावी म ये क्रियापदा  
 क ताव आ तात्त मे बनत है। एम ओ प्रत्यय की उत्पत्ति तस्कृत धाप म  
 हूइ है। अपभ्रंश म य धाप जयवा धावे रूप म भिन्ता है। गजवाती म टुरे  
 प्रस्थापन ता नी प्रयाग भिन्ता है जत सामान्य प्रस्थापन—यो वरीद तथा  
 दुतरा प्रस्थापन—वा कयात् (वा कराना है तथा वह करवाता है)। एम धोंकी  
 व्युत्पत्ति एम प्रकार सम्भव है आप + आप > आआप > वा > वा > वा। प्रणा  
 धन, एम बनाने के लिए वही न या आन प्रत्यय का उपयोग भी भिन्ता है जैसे  
 कनीणू शिरोण शिवाणू गावाळणू विजाळणू। एमात्रिए वेताग न आण क स्थान  
 पर जान प्रत्यय की कल्पना की है।

### नाम धातु

गजवाला म नाम धातुएँ याणू जणू एणू जाणि क योग से बनता है। कुछ  
 उदाहरण एत प्रकार है

हाथ—हथ्योणू हथियाना  
 मिथ—मित्तोणू मिलाना  
 अस्त—आटलेणू अस्त हाना  
 भाड—भड्योणू पवाना भूना  
 अकुर—अकरणू अकुरित होना  
 उच्च—उच्च्योणू ऊपर ल फिराना  
 वाप—वापणू बोनना देरता का बोलना  
 नम्ब—नम्भ्योणू नम्बे हाथ करव पकडना  
 विनम्ब—वेल्मेणू विलम्ब करना  
 पुनर—पुळेणू प्रगन हाना  
 वातुल—वौळेणू वायला होना  
 ताप—तापणू तापना  
 दुग—दुयणू दुखना  
 कची—कच्योणू कची मे काटना

श्रियापद

- प्रथ—गँठयोन् गाठना  
 गल्—गँढयोन् गल् करना  
 गीतन—सेठ्णू ठडा करना  
 मन—मलणू मला हाना  
 वाच—बच्च्याणू वात करना  
 नाप—भापेणू भाप देना  
 जम—जरमणू, जानणू (प्रा० ज्मन्द)  
 ज्वर—जराणू ज्वर आना  
 स्थिर—थारेणू स्थिर हाना  
 मुठ—मुठेणू मूढना  
 मल—मल्योणू मोल्योणू मल करना  
 मूल्य—मौल्योणू मान करना  
 छे—छदणू छे करना  
 भे—भदणू भद मालूम करना  
 गौन (< गोमन)—गौनणू गा का मूढ-त्याग करना  
 वाड (< वपाट)—ग्वाडणू वल् करना  
 असुर—असुरेणू अविमान करना  
 छि छि—छिछयाणू छा-छी करना  
 फन—फलणू फना  
 यावन—जातणू तोटना  
 यह तातव्य है कि पुलिा म श्रीणू आर योणू प्रत्यय प्रयुक्त हान ह आर  
 स्त्रीलिंग म एणी ।  
 सपयय धातुए

उपमा-युक्त धातुजा का उत्पन्न पीछे किया जा चुका है। उसी प्रकार धातु  
 प्रत्यय आल का ना परिवचय श्रिया जा चुका ह। जन्तानो म धातु प्रत्यय अधिक  
 नहीं विल्लु उनम स कुछ का प्रयाग दून व्यापक रूप म मिलता है।  
 क यह प्रयय हिन्दी म ना विद्यमान है। सम्भव है दसरी व्युत्पत्ति मन्वृत  
 क स हुई हा।

- वम—वृ > ववाणू  
 पून—पृ > पूवणू  
 मुप—पृ > पूवणू  
 स्फट—वृ > फवणू  
 उन—वृ > उवरणू



गिट + ट > गिटकण

क प्रत्यययुक्त कुछ अन्य गढ़वाली धातुएँ इस प्रकार हैं

अटाणू गटकणू गटवणू मुराणू दननणू नौवणू धमवणू तमवणू  
छमवणू विदवणू ठमवणू घमवणू परवणू गिगरण मडवणू दिग्वणू  
वरवणू धपवणू नपवणू आदि ।

ट दवटणू भपटणू रिपटणू निपटणू ।

ण घनटणू मवेटणू फेटणू आदि ।

इन प्रत्ययों का सम्बन्ध मस्तुत वृत्त में सम्भव है—पय-वृत्त > घोटेणू । दप-  
वृत्त > दवटणू भप-वृत्त > भपटणू ।

अनुकरणात्मक धातुएँ

गढ़वाली में अनुकरणात्मक अथवा ध्वनिज धातुएँ बहुत बड़ी संख्या में  
विद्यमान हैं । वे भ्रकार गणन गुजन तथा ध्वनि व जय रूपों और प्रतीकों द्वारा  
निमित्त हुए हैं

गपाडणू टपवणू हावणू सटपटोणू गूजणू तडफडाणू पूराणू गगडाणू, वक-  
नाणू ककडाणू गगटाणू ववरणणू भिमलाणू गुणमुणाणू डवडयाणू द्यगमणाणू,  
भभराणू धधराणू चचराणू भिभराणू गुगणाणू घघराणू सधयाणू धधराणू  
भवडाणू । तथाणू फूवरणू छीवणू अणणू नराणू वणाणू टपराणू डगडयाणू  
गमयाणू (तुलनीय अथवा गमजोन्वित मगठी गजणे गुजराती गमजुणू वगला  
गमज) ।

इन धातुओं में कहीं या तो एक ही ध्वनि में द्वित्व या पुनरुक्ति हुई है या केवल  
ध्वनि प्रतीक नियम गए हैं ।

वाच्य

गढ़वाली में कमवाच्य व रूप ए (एडू) प्रत्यय व संयोग से सिद्ध होत हैं ।  
अत्र भाषा में यह व रूप में तथा भाजपुरी जसमी उडिया बगना आदि भाषाओं  
प्रसृत भाषाओं में ओ रूप में मिलता है । इसकी व्युत्पत्ति विद्यमान ने ध्राय से  
निर्गमित की है । ध्राय का गढ़वाली में ए हो जाना संभव अनुकूल है । यहाँ एडू  
कमवाच्य व कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं

तब से नी करेडू तुममें नहीं किया जाता ।

प्राकृत में अतु ममाप्ति-सूत्रक रूप ध । सम्भवतः लोको में उनका व्यवहार  
होता था जस दीयत > टिज्जाई या दिज्जतु । (विष्णु पृ० ७२१) ये अतु वाले  
रूप गढ़वाली एडू वाले रूपों के निकट ठहरते हैं । कभी कभी कमवाच्य व रूप  
अतीत काल के कृत्नीय रूप में साथ सहायक क्रियाओं के योग से भी बनाए जाते

हैं। उस अवस्था में भी अथ म क्रोध अन्तर नहीं पड़ता

जैसे नी करवा जाँद तुम्हें नहीं किया जाना।

उसी प्रकार अभिप्रेत का भाव भी तत्सम्बन्धी वृत्त और क्रिया रूपा के  
भोग से ही अभिप्रेत किया है

तब से नी करेष्वा तुम्हें नहीं किया जाएगा।

मनाशी म प्राय वाच रूप मित्त हैं, जैसे, मित्त नी करणाय—मुझे नहीं  
करना है अथात् मैं नहीं करूँगा।

प्राय कर्मवाच्य के रूप सामर्थ्य के भाव और अभाव का सूचित करते हैं।  
इसके अनिश्चित कभी कता की वायगक्ति (विशेषतः अममयता की प्रकट करने  
के लिए) उस सम्बन्ध कारक म रखकर उसके साथ कइ परमण जोड़ दिया जाता  
है, जस लग के नी होगया (हो-दू) तुम्हें नहा हांगा। यहाँ कइ द्वारा क भाव  
को व्यक्त करता है और इसकी व्युत्पत्तिसंस्कृत वृत्ते में सम्भव है किन्तु गढ़वाली  
म द्वारा 'ण' का प्रयोग नहीं होता।

### काल रचना

अथ नय भारतीय आयमापात्रा की भाँति ही गढ़वाली म भी दो काल हैं  
(१) मल काल, (२) कृदन्तीय काल। मौखिक काल के निम्नलिखित रूप मिलते  
हैं

### १ सामान्य जनमान

उत्तम पुरुष	करदू (ए० व०)	करदा (व० व०)
माध्यम पुरुष	करवो, करदो	करदा
अथ पुरुष	करवो (दू)	करदा, करदन

य रूप पत्रावा के समान दो कारात हैं। अपभ्रंश में इकारान्त रूप मिलते  
हैं—चरति > चन। गढ़वाली म इस प्रकार के रूप केवल आता, अनुनय विनय  
वाच विधि पत्रा म ही मिलते हैं जहा ई पूर्ववर्ती अ से संयुक्त हो जाता है—जरा  
तू में दाड़ी चती। तब वागीश ने सो हसेदि उगाहरण किया है। यहाँ ति > दि  
परिवर्तन अपभ्रंश के अनुकूल है। ऐसे प्रयोग अपवाद माने जाते हैं किन्तु इसमें  
दतना तो स्पष्ट है कि अपभ्रंश का कोई रूप ऐसा अवश्य रहा होगा, जिनम य  
प्रमाण प्रचलित रह हांग। एक और बात ध्यान देने योग्य यह है कि अपभ्रंश म  
भी जनमान का क्रिया और विध्यचक क्रिया म समानता मिलता है और एक के  
लिए दूसरे का प्रयोग भी मिलता है।<sup>१</sup> गढ़वाली म इसी प्रवृत्तिका अनुसरण मिलता  
है।

वास्तव में गणा प्रतीत होना है कि मूल काल क रूपों का अन्तर्गत वर्तमान काल में वृद्धत वाला रूप ही विभिन्न परिस्थितियों में प्रायः सामान्य वर्तमान में प्रयुक्त होने लगे। सम्भवतः इस प्रकार के प्रयोगों का चला भाग्यताय जायभाषा के मध्य कालीन विकास में ही हो गया था। अपभ्रंश में कर्त्तु गुणन्तु आदि रूप मिलते हैं। गण्यता में वर्तमान काल के वृद्धत का विकास इस प्रकार हुआ होगा—  
पठत > पठतऊ > पठन्तु > पठ्ठु। गढ़वाल के कुछ जगह में अनुनासिक-युक्त व्यंजन सुप्त हा जा है बवल अनुनासिक रह गया है जाडू जानू।

वस्तुतः सम्भृत के सामान्य वर्तमान के रूप सम्भवतः गढ़वाला में जाया चाहने के लिए प्रयुक्त होने लग्ये द्रधामि > गेऊँ द्रधाम > दत्ता। किन्तु रवाई-जौनपुरी की बोली में सामान्य वर्तमान में वृद्धतीय रूपों की अपेक्षा सम्भृत धामि आव आव आदि के विद्यमान रूप ही प्रयुक्त होने हैं। गढ़वाल और कुमाऊँ की सीमा पर भी ऐसे ही रूप मिलते हैं—दयाळा जामू पर जाता हू।

### २ सामान्य भूत

सामान्य भूत के रूप सम्भृत के निकट ठहरते हैं

उ० पु०	धत्स्युं (अचलवम)	चर्या (अचलाम)
म० पु०	धत्स्यो (अचलो)	धत्सा (अचलत)
अ० पु०	धत्स्यो (अचलान)	धत्सिन (अचलवन)

### ३ सामान्य भविष्यत

सामान्य भविष्यत के रूप गढ़वाली में सम्भृत के अनु रूप नहीं हैं। उनमें भविष्यत के त्रिया रूप सभी पुरुषों में लो नू (एकवचन) सा (व० व०) जाकर बनते हैं। स्त्रीलिंग में केवल एकवचन में सा ली हो जाता है।

उत्तम पुरुष	धत्सलू (चलला)	धत्सला
मध्यम पुरुष	धत्सलू (स्त्री० चलली)	धत्सला (स्त्री० चलली भी)
अधम पुरुष	धत्सलू (स्त्री० चलता)	धत्सला (स्त्री० चलता भी)

वास्तव में धात्मि भारोपीय भाषा में भविष्यत् नहीं था। जाय भी प्रारम्भ में काल भेद से गच्छी तरह परिचित न था। पलत गढ़वाला में जाया भा भविष्यत् की व्यंजना वर्तमान काल के त्रिया रूप से सम्भव है।

### ल प्रत्यययुक्त काल

ल भविष्यत का ही नहीं वर्तमान जीव भूतकाल का प्रत्यय भी है। लू लो प्रत्यय का प्रयोग भविष्यत में ही होता है किन्तु उसका व्यवहार सभी वर्तमान का भाव व्यक्त करने के लिए भी होता है। वस्तुतः एक काल के वृद्धत से दूसरे

कान का काम तन को प्रवृत्ति अनेक भाषाओं में मिलती है। गङ्गाती मर्म चलतू स चलता हूँ और चलूंगा न भी य दोना अय व्यक्त किये जात हैं। इसी तरह कम-वाच्य म भी इसका प्रयोग विशेष हाता है जहाँ यह काय को प्रेरणा का दानन करता लगता है

कानी जानो घास घाम काग जाता है।

उसी प्रकार इसका भूतकालिक प्रयोग (बहु भूत जा बहूत पुराना नहीं) भी हाता है मिन कितान पढ़ले, या पढ़ियाले। इसस भी मिनन्, कमवाच्य म इसका प्रयोग यों सम्भव है

घास कटेई गलो घास काटा गया हागा।

इन प्रयोगा स एसा प्रानन हाता है कि यद्यपि स प्रत्यय भुम्पत भविष्यत् का रहा होगा किन्तु अतीत और वतमान क भावो को व्यक्त करने के लिए भी समरा व्यवहार किया जाता रहा हागा। किन्तु ऊपर लिए गए उदाहरणा म स प्रत्यय का एम प्रकार का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि भूतकाल म इसका प्रयोग गीण रहा हाता। मराठी म भूतकालिक ल क प्रयोग मिलत हैं, जम रामान मुना लाडू दिले, या मला रोनी तिला (उद्धरण 'भारतीय भाषा विज्ञान'—बाबाय किगोरीदाम बाबपयो)। गढ़वाला म दिले या दिली क स्थान पर दिने, दिनी का प्रयोग हाता है। स > न गङ्गाती म एक न्वाभाविक प्रक्रिया है। स प्रत्यय का विकास मध्य काल जायभाषा में हुआ प्रतीत होता है। भूतकालिक वृत्तन के रूप म एमका प्रयोग मराठा क अतिरिक्त गुजराती, बगला, बिहारी तथा हिन्दुस की वृद्ध कोलिमा म भा मिलता है। तुलनीय मराठा गवा बाला सुतिल, गङ्गाती—गवा सदा। गुजराती म इसका प्रयोग बिरल है। बिहारी और उडिया म इसका अभाव नहा है जस बिहारी इक्षत, उडिया देविला।

यह स प्रत्यय अय भारतीय नन्व आरभाषाजा म भा विद्यमान है। स ज्ञानन बगला उडिया मराठा और असमा म इन राजन्वानी म सउ तथा बिहारी और राजपूता म अल रूप म मिलता है। अवधा म भी ल वान भूतकालिक एषा क सकत मिलत है। स भविष्यत की व्युत्पत्ति 'लान्द न सम्बन्ध घानुता स दा हा।' डा० चातुज्या न एम प्रत्यय की व्युत्पत्ति मसूत त अयदा इत क साथ विगणगीय अथवा वधुनावाच्य ल स निधारित की है। ल-वतमान का सम्बन्ध डॉ० उदय नारायण निवारी मसूत, लग घालु स सम्गबिन मानत हैं। किन्तु वतमान अतान और भविष्यत क स प्रत्यय का उदगम सीमा काला म मिन मिनन् सम्भव नहीं।

इवेन्सुन ऑफ़ इरर', पृ० २०६

० भा मराठी, परिच्छेद २५०

१ श्री रजिन एष-देवकानट ऑफ़ बेंगाला लैंग्वेज पृ० ६०७

४ नन्वगु मभा और मालिय पृ० २०५

गढ़वाणी में यह प्रत्यय या ता भागधी के प्रभाव में आया हागा या दरद के । कुछ लोग इन राजस्थानी प्रभाव के रूप में भा ले सकते हैं ।

यह भी सम्भव है कि यह प्रत्यय लौकिक व्यवहार में आता रहा हो । बीम्न (कम्प्लेरेटिव प्रमर, रिट् ३) के इस कथन में सत्यता प्रतीत होती है कि यह किसी ऐस प्राचीन रूप का अवशेष है जो कभी लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त होता रहा होगा और भारोपीय परिवार की बहुत-सी भाषाओं में उनका परस्पर पृथक् होना ब पढ़न विद्यमान रहा हागा । डॉ० टेसिटोरी ने मझारकर और स्टेन बोना (प्रमण विन्मन लकवस और नोन्स ऑन द पास्ट ट्रेस इन मराठी में) के मत का समर्थन करते हुए स की व्युत्पत्ति इत्स > इत्स में मानी है ।

### घटमान काल समूह

गढ़वाणी में निचदायक घटमान् वनमान धानु का साथ एकवचन में णू और बहुवचन में णा जोड़ कर बनाया जाता है । इसका साथ सहायक त्रिया छ भी साथ रहती है मि चलणू छी हम चलणा छी । टिहरी नगर के आस पास सहायक त्रिया रह प्रयोग में आता है जग में चल रह्यू हम चल रह्यौ । मुख्य त्रिया अविष्टृत रहता है वचन पुरुष और वचन के अनुसार सहायक त्रिया में ही परिवर्तन आता है ।

घटमान अतीत के रूप धानु के साथ एकवचन में णू णी तथा बहुवचन में णा लगाकर सहायक त्रिया के भूतकालिक रूप के संयोग में सम्पन्न हाता है जग—बो चलणू छी बो ओणू धी । टिहरी के आम पास छ की अपठ्ठा धी का प्रयोग मिलता है वा चल र धी तथा हम चल र थान । घटमान अतीत में सब पुरुषा में ए० व० में चलणू छी और बहुवचन में चलणा छी रूप मिलते हैं ।

घटमान् भविष्यत् के रूप त्रिया के उसी रूप के साथ सहायक त्रिया हो के भविष्यत्कालीय मप्रत्यय रूप के संयोग से बनते हैं, जैसे—ए० व० में सभी पुरुषा में चलणू हा ला बहुवचन में चलणा होला । सामान्य भविष्यत् में ए० व० चलला ब० व० चलना रूप बनते हैं ।

पुराघटित वनमान त्रिया के मूत्र रूप के साथ ले या घाले के योग से व्यवहृत होता है मा देउले या दम्ब्याले । उसी प्रकार पुराघटित अतीत के रूप सहायक त्रिया के छ के भूतकालिक रूप के योग से बनाए जाते हैं जग—मन देखन (देख्यान) छी (धी) ।

सामान्य अतीत भविष्यत् और वतमान के रूप त्रिया के णू वाले रूप के साथ ही सहायक त्रिया के कालीय रूपा के योग में साध्य हैं ।

### इच्छायक और आज्ञायक रूप

गन्धाली में इच्छायक और आज्ञायक रूप संस्कृत से विकसित हुए हैं ।

आनायक रूप इस प्रकार चलते हैं

उत्तम पुष्प	चलू	चना, चली
मध्यम पुष्प	चल	चला, चन्ना, चल्पा
अप्य पुष्प	चली	चल न, चलनी

गौरमती और मागधी में इनके लिए समाप्तिसूचक चिह्न आदि जाते हैं। जय पुष्प का एकवचन क्रिया के साथ उ जाकर बनाने का विधान था। गौरमती मागधी जाते टक्की में तु दु हो जाता था। गढ़वाली में भी यह प्रवृत्ति सुरक्षित है—अत्रयानु > मुणानी या मुण दु। मराठी में चलानि, मुणाति।

मध्यम पुष्प में इ कारण प्रयोग भी मिलता है जस, तू जाइ—तू जाना। व० व० तुम बामान जयवा तुम जाया। अपभ्रंश में उ कारण प्रयोग मिलते हैं। अप्य पुष्प बहुवचन में अपभ्रंश में अउ <अतु प्रया हाना था। अमदीवर में अप्य पुष्प बहुवचन में हू और उत्तम पुष्प एकवचन में उ प्रत्यय का विधान किया है।<sup>१</sup>

बाल्यक में आनायक और दृष्टावक रूप गढ़वाली में भिन्न नहीं हैं। एक-एक जाना में काम आते हैं। किन्तु गढ़वाल के कुछ भाग में एम रूप भी प्रचलित है जिनमें यह अनुमान लगता है कि मस्केन के विधि रूप के रूप भी साक में व्यवहृत रह गये। हिन्दी में एए, जिए और प्राकृत में एजा वाले रूप मिलते हैं। उन्नी प्रकार गढ़वाली में कहीं दया वाले रूप उपलब्ध हाने हैं, जन—कुरान > कुर्या या करिया श्रान > हाया। बहुवचन में न और जुड जाना है करियान हायान।

### वृद्धनीय काल

गढ़वाली में वृद्धनीय रूप का प्रयोग ही अधिक होता है। यह राजेश्वर के इस कथन की उदाह्य तन वृद्धनीय हाने हैं—वृत्त्रिया उदीच्या—की पूरी तरह पुष्टि करता है।

बनमानकालिक वृद्धनीय धातु के साथ डू (डो) प्रत्यय के योग में बनता है। मस्केन का यह तन प्रत्यय अपभ्रंश में अत रूप में मिलता है। इसका विकास इस प्रकार हुआ है चलते > चलना > चलना। यह वृद्धत रूप भावपुरी, बगला, उदिना जयधी अत्र जादि कई भाषाओं में मनाय रूप से पाया जाता है। स्त्रीनिग में यह प्रकारान्त (चलती) ही जाता है। तुलनीय हैं गढ़वाली मारदो, वन मारतु पचावा मारदा, राजस्थाना मारती मिनी मारीदो। दो में पहल का रण गढ़वाली में प्रायः अनुनासिक हो जाता है, जैसे जींग मींग आदि।

<sup>१</sup> डॉ० ई० ई० अरुण अत्र गढ़वाली का अध्ययन पृ० २११

मन्त्राधिकार-संस्कृत इत म गढ़वाली म शो रूप म प्रियमित हुआ है यथा > चल्या। यद्वा पातु वा अत्यस्तर युक्त हा जाता है और उमर गाय धी (अन्यथा म या) जुट जाता है। धी, या ध स्यात पर धनी (जय लला स्वर ध, य ए ओ हा) धी (स्त्री० नी) वा भी प्रयोग होता है, जग— शिया त्रिती त्रियो। य ए ए ए ओ हा) धी (स्त्री० नी) वा भी प्रयोग होता है, जग— धी दू दीना वाता धानि म नो तुलनीय हैं।

पवर्धनि-संस्कृत-प्रधान वा नि ए संस्कृत म धानु क साध त्रा तथा म प्रत्यय तयाग जान है। जपध व म इ प्रत्यय का प्रधानता निती। प्राकृत म इम मिताता है। गढ़वाली म संस्कृत का य प्रत्यय वही इ जी बनी (विद्यपत र्वाल्डा म) इम रूप म मिताता है। गढ़वाली म इ ना प्रयाग ही ध्यापक है मारिइ, पीटीइ भागी एए। वा देरिड गाता। इ इमनुचित हाकर ई वन गया है जसी मारी पीनी। इ वा म्हा धनि इताग त्रियत्र होती तइ वि धा म उमक गाय व का पूर्ववाचिक कृतत कृत्वा म्हायक रूप म आने गगा जग देखिक मारिक पीतिक अधवा दतिका, मारिका पीटिकी। जत गढ़वाली म दाना प्रत्यय इ और ध प्राय साध मुनने म जा है। यह त्रिव तनक मापाताम है। सम्भवन जबहुत म ही इमका प्राग्भ हा चुका था। तुलनीय दान अवधी त्रि गढ़वाली त्रिइ दान अवधी त्रिचि गढ़वाली त्रिक दानीक त्रिक।

भविष्यत् वाच का उक्त गढ़वाली म अधिक प्रयोग म न्ना जाता। धानु क गाय ध्या पाठकर जा रूप साध्य होते है उनम किचिन नविद्यन का ताव व्यक्त अवयव हाता है किनु उमम वाचन अवयव का विचार विचार महत्व का होता है। मी ती धरणा—मै तनी बरणा। यह रूप संस्कृत तनीय और अपभ्रंश अणान म धिनसित है। बभवाच्च म यह णी रूप म ही रह जाता है हमारी वाच वन जाण भी हमारी वाच वान जानेगा।

इन कृता का प्रयोग विशेषणवा ना जाता है। संस्कृत तय प्रत्यय अवभ्रंश म एध्वज इए बळ आदि रणा म मिलता है। अत्र वाच रूप भी वहा उपलब्ध हा जान है। गढ़वाली म यह प्रत्यय यूरूप म लाया है वनयम् > प्रा० दरिध्वज > ग० मरय। स्त्रीलिङ्ग इकारात् व।। त्रियाधन सजा ध रूप म—वाम करयी त्रिना न तइ वाम त्रिय त्रिना न जाना। गुस्ताः रीक्या फा—गुस्ताकरके क्या फायण। विरागी मारी मवृत्त दसे दू धिन्यु गी दनी—शिला मारा हुइ मवन देरी दूध पिया हुआ किसी न न्ना दवा। करी < वृत्। उमा प्रवार अनीय प्रत्यय के साथ म निमित्त शिया रूप विशेषण की तरह भी प्रयोग म लाए जान है जस करणा नाम मरणा मनवा।

इसी प्रकार धानु के साथ ण या णी प्रत्यय पाठकर त्रियावाचक विशेष्यपद

वनाय जात हैं जस वजस बाजणो, चन स चलणा या चनण, बठ स बठणा  
 या बठण । ण जोर ऊण प्रथयों का भी गन्वानी म प्रयोग मितता ह । इनक  
 अनुरूप ह । सम्भृत म धन रूप मितता ह । प्राकृत म ताण या तूण क याग न  
 क्रियायक मनाप का एक आर रूप पाया जाता है जिसक वदिक रूप या बल्पना  
 खानम क रूप म का गई ह । गन्वानी ऊण जोर प्राकृत तूण और जपत्रग धन  
 णु अणहम, अणहिम् न पयाप्त माम् प्रनात हाता ह । ऊण क शुद्ध उदाहरण  
 इस प्रकार हैं—रो—रोऊण प ह—पनूण, नमः—गमळूण, पध—पचूण,  
 जम—जमूण आदि । प्राकृत ताण के अनुरूप गन्वानी का धान, याण जयवा धाण  
 प्रत्यय उल्लेखनीय ह—वप—कम्पवाण भुज—भुग्घाण, औक—टौक्याण, डक—  
 टक्याण जम—जमाण, वा न—बोलाण आदि । सम्भवत प्राकृत आर अपभ्रंश म  
 भी ऊण प्रत्यय का जो बुद्धिकण, भुद्धिकण जम गन्वानी म मिलता है । हिन्दी म  
 ना, मिन्दी नु लहना उण बुद्धता धन तात्पर्याना पो द्र गी, पजाजा पा तथा  
 मराठा ण रूप इन अनुरूप ही हैं ।

त्रियावाचक त्रिषाप्य पद बनाने क अतिग्विब नू वतमानकालिक कृत  
 बनान क निर भी प्रसूक्त हाता ह, जम धर पाणू छः—मिं धर जा रहा हूँ । यह  
 प्रथय सम्भृत गानव—मान—ना अवगेष प्रतीत हाता है । महाराष्ट्री प्राकृत  
 आर जपत्रग म भा दमना प्रथा मिलता है जय, पिच्छमाणु गच्छ माणु आदि ।  
 इ प्रथय का प्रयोग इत रूप म अधिक मितता है । उदाहरण क निर छोपा  
 छोपी मका-मरा चला चली, दवा-दानी लुना छुपा काटा भाटा चाना-चाटा,  
 मारा मारा, मग मनी आदि । इसी प्रकार झाई प्रत्यय न याग म इनक त्रियाएँ  
 भाववाचक सत्ता का काम देनी हैं—खल सचलाई हिट म हिटाइ रोप स रोनाई,  
 दौड स दौडा, रो म रोबाइ, देख स देताई, ताल म खोलाई, छू स छुटाइ आदि ।  
 अपभ्रंश म क्रियायक हत्व कृत के मभावनिपूचक विह्व भ्रणहूँ आणाहि,  
 आणाहि तथा एविणु ध गन्वाला म णे और णू का प्रयोग किया जाता ह जम वा  
 साणू' (क) तथा उत बठया । ताण एत वा धर । सम्भृत तुम स विक्रित क  
 रूप परस्पर तुलनीय है । णे या णू का प्रयोग म ध्वनि के तोप का ध्वनिपूर्ति क  
 कारण क क तथा त, ताई (स) के माय होता है ।

निर्दशयायक वतमान

उत्तम पुरप	एक वचन	यहु वचन
मध्यम पुरप	एऊँ=हूँ	एँ, एया
अथ पुरप	एई	एवा
	ए	एन

१ हा० बीरे द्र क्षीराम्बर भात्र स भाग का अंश १०० २०१



बुद्ध उदाहरण प्रस्तुत है

मैं जाँदू छऊ	मैं जाता हूँ ।
हम जाँदा छवाँ	हम जात हैं ।
तू जाँगे (जाँगे) त्तरि	तू जाता है ।
तुम जाँगे छा	तुम जान हो ।
वो जाँदू छ	वह जाता है ।
वा जाँदा छन	व जान हैं ।

छ का वर्तमानकालिक कृत्स्न रूप छ<sup>०</sup> बनता है— $\text{अच्छनक} > \text{अच्छन्तउ} > \text{छतउ} > \text{छदउ} > \text{छ}^० \text{ छन}^०$  । छदा बत स्या हैका का पर बड़ी—पति व हाक हुए वह दूगरे गर जा बटा । हिंदा की बोलिया म इसका प्रयाग अछत रूप म मिलता है ।

### महायक त्रिया

गढ़वाली म छ प्रमुख महायक त्रिया है । इसका प्रयाग गढ़वाला म ही नहा बरन् ममस्त हिमाची बालिया, राजस्थानी गुजगती बगला आदि म भी हाता है । टनर न इसकी व्युत्पत्ति मस्कून छा—धो म मानी है । देगितारी न अच्छति मे अच्छई का निरपत्ति स्वाकार का है । उत अवस्था म अच्छई म अ थ ताप स छई रूप की उपनिधि सम्भव है । धम अस्ति की छ से सम्बन्धित किया जा सकता है । गढ़वाली म स्त छ म परिवर्तित हो सकता है जैसे अस्त— $> \text{अछाणू}$  । इस प्रकार अस्ति का अच्छि हा जाना सम्भव नहीं । प्राकृत में आछ और उपभ्रग में अच्छ या अच्छि रूप उपलब्ध हात हैं । अवहट्ट और आरम्भिक अवधी में भी अछ वाच रूप विद्यमान थ । गढ़वाली में छ केवल वर्तमान में प्रयुक्त होती है । कुछ भाग में भूजाल म थ वाल रूप मिलते हैं । हिन्दी का व अनु रूप ही थो, था आदि रूपा की व्युत्पत्ति अस धातु से सम्भव है । कुछ लाग भू और स्थ स भी उनका सम्बन्ध जात है । जधमागधी में यह त्रिया इथा और इत्यरूप में विद्यमान था । इस दृष्टि से तिमाडी बोनी का था, नेपाली थियो, उडिया थिली, लहटा थिउसे मालवी थो और गढ़वाली थो (एक वचन) था, धान (बहु वचन) तुलनीय हैं । भूत निश्चयायक क लिए हिन्दी की कई बोलिया में हुतो का प्रयोग मिलता है । गढ़वाली का थो इसका निकट है । गढ़वाल में थ वाले रूप कही तो (पुल्लिंग) तौ (स्त्रीलिंग) रूप में भी प्रयोग में आत हैं । उदाहरण के लिए तरो वण हरची ग तो । तैरा भार्द हर्ची ग तो । डा० देसिदोरा इन रूपा की व्युत्पत्ति\* स्थितक से मानत हैं । इस सम्बन्ध में उनका विचार है इस व्युत्पत्ति के पक्ष में हिमालय की बालिया के प्रमाण हैं । वहाँ गढ़वाली और नेपाली में थयो, थियो जैसे रूप मिलत हैं जिनम स्पष्ट सूचित होता है कि इनका मूल स्रोत स्थित—ही रहा होगा ।

बहिन मम विपरीत ज्या हम गुजरात और राजपूताना की बालिया की आर  
 षात है हमें हतो और वो दो प्रकार क रूप मिलने हैं। इतरा प्रयाग प्राय एक-  
 दूसर क समानान्तर इन तरह मिलता है कि उनकी एता में सन्देह करना कठिन  
 है। यहा व्युत्पत्ति माहियिक हिन्दा में था के लिए भी लागू होता है।<sup>१</sup>

अस्ति का भावि और नास्ति का नावि (न्हाति भी) रूप गडवाली की  
 रबाल्टा और जोन्पुरी बोलिया में मिलत हैं। किन्तु य रूप प्राय स्वीकृति,  
 मस्वाकृति तथा चित्तमूचक मात्र हीन हैं। प्राकृत, भावी, राजस्थानी, गुजराती  
 तथा हिमाली भाषाओं में य रूप सबत्र मिलत हैं। अपभ्रंस में अस्ति रूप प्रचलित  
 था।

छ आर थ वर्गीय महायक क्रियाका के अविष्यत् रूप नहीं हात। अविष्यत्  
 म ला, सो प्रत्यय युक्त हो क्रिया का प्रयोग हाता है। छ आर थ के वर्गीय रूप यहाँ  
 प्रस्तुत हैं

वतमान

उत्तम पुरुष	छौ, छऊ (० व०)	छवाँ, छाँ (० व०)
मध्यम पुरुष	छ	छा
अथ पुरुष	छ	छन

भूतकाल

उत्तम पुरुष	छौ छवा, वा, थवा	छा, छवा, थान, थया
मध्यम पुरुष	छौ छवा, थौ थयो	छा, छवा, था, थया
अथ पुरुष	छौ, छवा थौ, थया	छा, छवा, था, थान

सयुक्त क्रिया

सयुक्त क्रियाएँ प्राय कृदन्त म सयुक्त मिलती हैं। चिह्नी क आज्ञा पास क  
 मत्रा मं र (रह) का प्रयाग घटमान वतमान म विभेय मिलता है, जस धर ज  
 रबू। इसक जतिरिक्त करणो, जाणो, चाणो, लगणो, लेणो, दलणो, पडणो, उठणो  
 भा प्रमुत्र सयुक्त क्रियाएँ हैं करणो के प्रयोग की विसिष्टता दष्टव्य ह ज करण  
 (जा लना न अथ म) दो वग सा करी। इनम चाणो स इच्छा का बोध  
 होता है। सक्रणो म सामय्य आना या अनुमोदन का भाव व्यक्त किया जाना है।  
 मा हो नेणे या देणो म अनुमति या अनुमान, लगणो म काय का आरम्भ पडणो  
 म चिन्ता जाणो म भूतकाल म काय की समाप्ति और रलणो में काय की  
 पूणता का भाव निहित हाता है।

१ पुराना राजस्थानी (अनुवाद डॉ० नानकसिंह), पृ० १४१

काय की तिर-तरता या जायति को प्रकट करने के लिए कभी क्रिया के पदों में विभिन्न क्रियाई लना है। गडवाती में हमने दो रूप मिलते हैं (१) एक ही क्रिया का तात्पराद जानी है और (२) दो समासार्थों या सहचर भाव वाली क्रियाएँ परस्पर सम्बन्ध हा जाती हैं जैसे— ताचदा-गान्ता, या ता-पदा पडता लतता कूटदा-भीमदा, पात्ता नळदा, शिटता-चठता बोलता चासता आदि।

गडवाता में वस्तुतः सहायक क्रियाओं और सपुवन क्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। गडवाता के सम्बन्ध में वे ही काय और जात की अभिप्रेति करती है।

## अव्यय

गढ़वाली में भी अथ भारतीय आप भाषाओं की भाँति ही सजा पदा मवनामा नया विनोपणा मे अव्यय बने हैं। इनमे से अधिकांश अव्यय ससृजत प्राकृत और अपभ्रंज स उत्तराधिकार में जाए है। उनका सामान्य परिचय दिया जाता है

### कालवाचक अव्यय

निम्नलिखित कालवाचक अव्यय विनोप रूप से व्यवहृत होने हैं

आज (अद्य), अजि (अद्यापि) भोल (अव्य कला) प्रभात (मुबह को), व्याल (विभान > विहान विकाल) सनकबाले (सकाले) घणई, सबर (सबला) अबर (अबला) अरुओ (अद्यापि), व्याखुणी (विशुण) अट्ट (अटति) आग (अग्रे) अमणी, पाछ (परत), पौर (परत), परार (परपरत परारि) ऐसु (एषु), सदानी (सदानत), नित (नित्य) आदि।

मवनाम मम्बची अव्यय अब जब, कब आदि गढ़वाली म जनक पयाया के साथ मिलत हैं। एक रूप में क हिंदी के अनुरूप ही मिलते है। इनके अनिरिक्त उनका दूसरा रूप अबर (अवारि), जबर (जवार) तबर, कबर (कवार) आदि शब्दों में मिलता है। इन शब्दों का सम्बन्ध स्पष्ट वेला शब्द से है। बार काल म रूप कालवाचक अर्थ में प्रयुक्त हात है जैसे तवार जवारी जवर = जिनममम। इस प्रकार के कालवाचक क्रिया विनोपण प्राचीन राजस्थानों में भी मिलत हैं तिवारई, तिवारई, किवारई आदि। आधुनिक गुजराती में ज्यारे, त्यारे, क्यारे रूप मिलते हैं। इसका अतिरिक्त जदि, कदि, तदि का भी प्रयोग होता है। इनकी व्युत्पत्ति यदा तदा कदा आदि रूपा से स्पष्ट ही है। जदि काल रूप कही जअं, तअ वअं (जय तयें वयें) रूप म भी मिलते हैं, जअं जाला तअ सँक वोनछाल। या जअंके (जअंके) जाला मी मिली जान। अं, तं, क आदि रूप भी इन्ही रूपा क अनुरूप सगत हैं जें जाला त बोला दे। यत्त का जद और सत्त का तद रूप प्राकृत में भी मिलता है। प्राकृत में जाहे और ताह रूप भी मिलत हैं। अपभ्रंज म कदा > कया, कया तया जया जया < यत्त भा इम दष्टि से तुलनाम हैं। अभी के अथ म गढ़वान में कही अमणी शब्द का प्रयोग होता है। यह जन महाराष्ट्री प्राकृत में एहि (अस्मिन्) रूप में आया है।

## स्थानवाचक अव्यय

स्थानवाचक अव्ययों में विशेष यह हैं घण्य (अघ्न) साय (गघ्न) नेट्ट (निकट), पास (पावँ) भैर (बहि), भित्र (अघ्नतर) तीळ (तन), भुद (नीचे भूमि) ऐष (उच्चस्थान) मये (मम्ल) उग्रो (ऊग्र) ओर, पोर वार (अवार), पार(पार)उदो (अध) मुड(मूल) अगाडो (अघे) ।

इनके अतिरिक्त कुछ प्राञ्ज अव्यय इस प्रकार हैं

निस्त (नीचे) बेड (नीचे) दोस (ऊपर), ओज (ओर) उडू (इधर) फडू (उधर) ।

अरबी-फारसी से भी कुछ अव्यय सम्मिलित हुए हैं जस—नजीक तरफ ।

सपताम मूलक अव्ययों के रूप मिलते हैं

यय यय तय वय जय ।

यत्य वय तय जत्य ।

इय तय तय वयँ जय ।

यँ वँ जँ तँ वँ ।

ये सब रूप एक-दूगरे के पर्याय हैं । यत्य वय आदि रूप स्पष्टतः यत्र तत्र आदि संस्कृत रूपों से निष्पन्न हैं । प्राकृत में एतहे, सतहे रूपा के साथ अत्य, तत्य आदि रूप भी उपलब्ध होते हैं । अनुस्वार युक्त इष उष वाले रूप यत्र तत्र आदि रूपों के साथ तत्र प्रत्यय अथवा अपि के मयाग में बन हा सन्त हैं । इससे अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि ये रूप स्थाने प्रत्यय के याग से साध्य हुए हों जस तल्पाने > तय, एतत्स्थाने > इष आदि । अपभ्रंस में एत्यु, जेत्यु, तेत्यु, केत्यु (मिड्ड हग० ४/४०५) आदि रूप मिलते हैं । इस प्रकार गडवाली से मिलने-जुलाने रूप सिन्धी राजस्थानी गुजराती और पंजाबी में भी उपलब्ध होत हैं । मराठी में ना क्रिया विशेषणान्तक अधिवरण रूप घेयँ, जेयँ आदि रूप भी ए दृष्टि से तुलनीय हैं ।

घण्य घण आदि रूप दस के योग से निष्पन्न हुए प्रतीत होते हैं जस एतत्स्थान यत्र । जँ तँ य यँ आदि बाल वाचक अव्यय स्थान वाचक भी बन जाते हैं । प्राकृत में 'ये यह प्रवृत्ति थी ।' कँ छ जाणू ज जाणू हो तँ खाइ दोँ रबटी जम प्रयाग गन्वान के कुछ भागों में सामान्य है । प्राकृत में जह जहि, पह, बहि आदि रूप मिलते हैं । गडवाली में बहा कँ जँ तँ के स्थान पर आकारान्त रूप भी मिलते हैं जस काजँ जाज ताजँ आदि । यह प्रवृत्ति प्राकृत और अपभ्रंस में भी थी जस

कुत्र > वाह > वाहि बहि तथा केत्यु, गन्० काजँ

कुत > कउ > गडवाली कँ

कुत्रापि > कत्यवी > गढ़वाली क्यइ  
 यत्र > ऐत्यु > गढ़वाली यत्य तथा अप० जहि, जत्यु जेत्य  
 यत > गढ़वाली जँ  
 तत्र > तैत्यु > गढ़वाली तत्य, अप० तत्य, तैत्यु तित्यु  
 तत > तो तु > गढ़वाली तँ  
 अन > इत्य > इहु > इहा > गढ़वाली यत्य, यँ ।

### परिमाणवाचक अव्यय

परिमाण वाचक क्रिया विक्षेपण इस प्रकार हैं  
 होर (अपर) भौत (बहुत्व) इस्से (ईपन) भिडो (भाडर), जादा  
 (ज्वाला) कम, मस्त (बहुत), कणक (जरा-सा) अमिध्या (अमित) जरा,  
 भौत, जास्ती ।

सवनामजात परिमाण-वाचक विक्षेपण कथा, जथा, तथा जादि का परिचय  
 पीछे दिया जा चुका है। कभी इनके साथ का (गा) प्रत्यय भी जुड़ा मिलता है  
 जस कथगा, जथगा, जथगा, इथगा । का या गा वास्तव में परिमाण की अल्पना का  
 भाव व्यक्त करता है। पालि में एतक, कित्तक तथा प्राकृत में एत्तिम, केत्तिम जाति  
 रूप मिलत हैं। इनकी उत्पत्ति क विषय पर डा० चाटुर्ज्या ने पूणत विचार किया  
 है।

### रोति वाचक अव्यय

रोति-वाचक अव्ययों में एसो, जसो, कसो (ऐसा जसा कसा) उत्पत्तीय  
 है। इनका एक दूसरा रूप भी मिलता है इनो, जनो, कनो तनो, उनो। हिन्दी  
 की बोलिया में इमि किमि तिमि आदि प्रयोग मिलत हैं। अपभ्रंस में एउम, जउम,  
 केउम रूप मिलत हैं जिनके सस्कृत मूल की कल्पना टसाटोरीन इस प्रकार की है  
 एव \* येव \* तव \* केव ।  
 इनो तनो (पु०) र्नी, तनी (स्त्री०) आदि रूपा के मूल की कल्पना अपभ्रंस  
 एमु एउँ इउ एम एमई एवि (< एव) एमहिम् (< इदानीम) जादि क  
 आधार पर की जा सकती है।

### सम्बन्ध वाचक समुच्चय वाचक

इसके अनेक रूप मिलत हैं  
 १ अर और, आर  
 २ फिर, फेर  
 ३ दो तु दो में जोला—तू और मैं चलत ।

- ४ चा जा चा (जा) जान चति जो चाहे जान चनी जाय ।  
 ५ जाणि < जान मन मुक्किना न्च जाणि में एक वचन मा छी—मैंने गणना लगा कि मैं एक वचन में हूँ ।  
 ६ कि चित्त कि कि बयाकि  
 ७ जु जी तु जि (जी जु) वाम करता त गणा केरू छी—  
 यदि तू वाम करता तो रोना हो किग बाग का ?  
 ८ मु हिन्नी गा  
 ९ नितर, नित्र नहीं तो  
 १० पर हिन्नी पर  
 ११ वन उद्धरण दन म कि के अथ म ।  
 १२ अना अना इनु बोमणा छा । ससृत लनु की तरह प्रयुक्त होता । इसी तरह फुडू < म० जा० भा० फुल < सफुल म वाक्य के प्रारम्भ म आता है ।  
 व्युत्पत्ति की दृष्टि से य स्पष्ट ही हैं । पर अथवा और ससृत प्रपर से व्युत्पन्न है । कि की व्युत्पत्ति डॉ० सक्मना किम से निर्धारित करन है ।<sup>१</sup> देसिटीरी ने इगरी व्युत्पत्ति या मानी है कि < अप० काइ < स० वानि ।<sup>२</sup> गढ़वाला म कि का प्रयोग अथवा क अथ में भी होता है—तू जाता कि मैं जीनू—तू जाएगा या मैं जाऊगा । हिन्नी की बोत्रिमा म प्राय इगी अथ में क का प्रयोग होता है । क्योंकि क अथ में किलकि का प्रयोग होता है ।

दी की व्युत्पत्ति मदिग्ध है । बहुत सम्भव है कि यह आदि का अवरोध हो । पर स्पष्टत ससृत पर है । उभी प्रकार त वा व्युत्पत्ति ससृत तत से सम्भव है । टिहरी नगर के आमपाम त के स्थान पर ज वा प्रयोग भी होता है जमे करी नी जाणी ज कपाली हात ।

नितर ससृत ननु स विकसित हुआ है । अबधी म नतर वा प्रयोग मिलता है । तत और तहि के योग से नतर की व्युत्पत्ति सम्भव है । गुजरानी मे नहितर प्रयुक्त होता है जा गढ़वाली नितर के नजदीक है ।

घडि के अथ म जु (या जो) का प्रयोग मसृत यत तथा अपभ्रस जउ म सम्बन्धित है जु तू नी करता त में करलू—यदि तू नहीं करता तो मैं करगा । इसी प्रकार कारण वाचक समुच्चय बोधका म यान (इग कारण), वान (उस कारण) जान (जिस कारण) प्रयुक्त होने हैं ।

चा अथवा जा चाहे के अथ में प्रयुक्त होने हैं चा रँद छ चा जाँद छ चा जान छ अथवा जा रँ छ जा जाँद छ—चाहे रहो चाहे जाओ ।

१ डॉ० बाबुराम सक्मना इन्डोलूरान भाव अवधी, पृ० ३११

२ पुरानी राजस्थानी, पृ० १३५

किसी अपरोक्ष व्यक्ति की वाणी को उद्धृत करने में बलक। प्रयोग किया जाता है—**त्वन** बोल बल कि मन तरा हय्या दणन—(मुझे किसी ने कहा है कि) तूने कहा है कि मुझे तरा कज देना है। इस शब्द की व्युत्पत्ति सस्वृत मयस हृई ह जो प्राकृत में बने और बले रूप में मिलता है। उसी प्रकार एक अन्य समुच्चय बोधन प्रना भी है—अना इनु बोल दियान। अपभ्रंश में यह अन्नुरूप में मिलता है। कुछ धना में बालचाल में वात पर बल देने लिए जान अथवा जानी का प्रयोग भी होता है—मैं बल ग छो जानी। कुजाणे क्या वात छ। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार संभव है—जानाति > जाणद > जानी को जानाति > कुजाणी।

### विस्मयादि बोधक

अन्तर भाव वाचक अयया का निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है

#### १ आह्वान तथा सम्बोधन

हे, हेला, हला, हेतो, भला, भलो भजी (< जाय अहो जीव) भरे, रे, व आदि। इनमें ला, ले, रे का प्रयोग निम्न श्रेणी के लोगों के लिए होता है। कमी इनका व्यवहार समवयस्क मित्रों में भी सम्भव है। इसी प्रकार पशुओं की पुकार में लिए अलग-अलग सम्बोधन हैं जैसे कुत्ते के लिए भौ, भौ, बिल्ली के लिए ले सिरु ले, भेड के लिए आया ले, हा ले, बकरी के लिए ऐई ले, भैंस के लिए बाऊ ले। हृदय के विभिन्न भावों को व्यक्त करने वाले अव्यय गडगाली में भी हिन्दी में ही अनुकूल हैं।

हला संबोधन सस्वृत प्राकृत और अपभ्रंस में भी मिलता है। हिन्दी की पूर्वी बोलियाँ और ब्रज में भी यह प्रयुक्त होता है। भाजपुरी और अवधी क्षेत्र में यह हन्य और हले रूप में प्रचलित है। कापकारा ने इसे प्राकृत भाषा का शब्द माना है।

#### २ स्वीकृति और निषेध

होँ < मो आँ, हूँ हूँ, > छ आधि  
न हो ना न, ना जम्मा ना कत ना नाधि।

#### ३ कर्षण व्यञ्जक

हे राँ < ट राम दव, हाइ, त-त त्व त्व, च च

#### ४ कष्ट व्यञ्जक

हा, हे बई उह हा, आह ह्व

#### ५ घणा व्यञ्जक

पुर, छि थुप् थुफ हव

#### ६ व्यग्य तथा दया व्यञ्जक



चुचा, लठभाला, विचारो, भग्मान लोझा

७ उल्लास व्यञ्जक

स्याबाग हो आहा, या ।

अनुवारण सूत्र का अर्थ

गणकारी अनुवार-सूत्रक ध्वनिया से बहुत सम्पन्न है। इन ध्वनियों का सम्बन्ध मध्यम लिखा जा चुका है। यहाँ कुछ और शब्द दिए जाते हैं

र्या र्या (नदी का बलबल) छण्ण (छनछनाना) र्यो र्यो (चूँ चूँ),  
 र्यो र्यो (धूँ धूँ) दण्ण (अमुआ का गिरना) भण्ण (दूर से का म पडती  
 ध्वनि) लण्ण (पीट कर लम्बा कर देना) लण्ण (छानने की क्रिया) छर  
 (पानी का जोर से निकलना) गुरगुर (धीरे धीरे) गुरगुर (चुपके से गिरना)  
 सरसर (तजा से बचना) हिरिरी (गंगा का भातिपूवक बहना) ।

## प्रत्यय और उपसर्ग

गठवाली के प्रत्यय और उपसर्ग मुख्यतः सस्कृत से उद्भूत हैं। उनकी तुलना में देशज और विदेशी प्रत्यया और उपसर्गों की संख्या अधिक नहीं है। यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

आ, अद्, अदी, अणो, अण्या आदि आदि अनेक प्रत्यया के उदाहरण पीछे दिए जा चुके हैं। आदि हिंदी में भी प्रयुक्त होता है लिखाई पढाई गाढाई। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत ताति या प्रापिका से निवारित की जाती है।

हिन्दी में प्रयुक्त प्रत्यया के अनुरूप कुछ प्रत्यय

अत लिखत पढत जावत। पडत—पडत नी पडनी; त्रिया से सपा बनाने के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार संभव है अत > जत। चन्त रूप में भी यह प्रत्यय मिलता है जैसे फुन्त सक्त आदि।

आउ त्रिकाऊ दिखाऊ। इसकी व्युत्पत्ति आप+ऊ से बन त्रिया मूलक विभाषण से मानी गई है।

आई हिन्दी में भी इस प्रत्यय का प्रयोग होता है। गठवाली में कमाई मला (मली—) चलाइ, (गाँठ—) खालाई जने अनेक प्रयोग मिलते हैं। व्युत्पत्ति जापिका > जापिका > जाविज > जाविआर > आई।

आक इसमें अनेक गठ बनते हैं जैसे, टणाक, लडाक, बोलाक, घडाक, हराक, छराक, नणाक। इसकी उत्पत्ति हानल आपक से और टा० चाटुर्जाप्राकृत अकर या आकर से माने हैं। इसी प्रसंग में वाक भी उल्लेखनीय है बठवाक खवाक।

आर यह प्रत्यय सस्कृत वार से उद्भूत है। गठवाली में गितार, जितार आदि गठों में मिलता है। वार > आर।

आट ध्वनि पूरक प्रत्यय है जिस—अडाट किडाट कवलाट, चवलाट सबडाट, छमणाट। इसका सम्बन्ध हौनले ने सस्कृत बत्ति घात से बढ़ा है किन्तु बीम्न इसे जानु या अनु से सम्बन्धित बताते हैं।

आल, आलु य प्रत्यय सस्कृत के आल (जस रसान) और आलु (जसे अदालु) प्रत्यय के अनुरूप हैं। मयाळ, पाळ, (स्नेहालु) छुयाळ, रप्राळ दुषाळ, घुषान

आणि म नहीं आल और बही आलु विद्यमान है।

भाणो, द, ईणा आणि स्त्रीलिंग के प्रत्यय का परिचय पीछे दिया जा चुका है। उमी प्रकार और का आदि नी हैं।

यदुवचन के प्रत्यय का भी उल्लेख हो चुका है। उनमें जात प्रत्यय भी समूह का घातन करता है जस-जघात (बरात) नघात (बिरागरी) विस्वात (वीग का समूह)।

धान इस प्रत्यय का प्रयोग त्रिया ग सना बनान के लिए होता है जस पव + आन = पुरान मिल + आन = मिसान। व्युत्पत्ति इस प्रकार सम्भव है आपनक > आवणव > आणव > आण > आन।

भाडो, भाड, भाडो विगुद्ध दगा प्रत्यय गहा हैं। आड स त्रिया मूलक विगपण के रूप सिद्ध होते हैं जस हैंसाड रिपाड नचाड आणि। आडो और आणी म त्रिया मूलक विगपण का नहीं बनते पर व गम्बय मूचर होत हैं जघाडो (जो का आटा) गेवाडो (गेहूँ का आटा) गेयाडो (गेहूँ का नेत) कोदाडो (कादे का आटा) कोदाडो (कोद का घत)।

घाल, घाल म स्थानवाची प्रत्यय हैं। गढघाल की अन्व जातिया के नाम इसी प्रत्यय से स्थान का नाम जोड कर बने हैं जस घपत्याल सौरयान, मलघ्वान आदि। घालो, घालो प्रत्यय एतस भिन्न हैं। भाववाचक सनाए बनाने के लिए एक और प्रत्यय मूल भी भिन्ना है जसे छोरयल नयूत आदि।

घोई हिन्दी में यह प्रत्यय बहिनोई आदि दगा म मिलता है जितकी व्युत्पत्ति पति + क से निर्धारित की गई है। यह प्रत्यय स्वामित्व को व्यक्त करता है जस घसोई—घास का मालिक घास वाला मत्रोई—मत्र मत्र करने वाला।

बहु प्रयुक्त प्रत्यय इलो, उलो, लो

इलो, उलो, लो सस्कृत म इल और प्राकृत म इल्ल, उल्ल प्रत्यय मिलत है। आगिलो, पाछिलो, ध्याहिलो, सातिलो, छइल, करछलो, मुरछुल्लो हतिलो। स्त्रीलिंग म इलो या उलो आता है जसे ध्योली, नणदुली, विदुली नधुली, बसुली। इसके अतिरिक्त उसी के समान उडी प्रत्यय भी स्त्रीलिंग का बाधक है। इसका आकार की लघुता भी ध्वनित होती है माइडी (माइलूनी भी) रातुडी, लुडुडी, वांतुडी, धावुडी, पातुडी, जुकुडी, फूलुडी आदि। टुडी भी इसी से मिलता-जुलता प्रत्यय है। इसका प्रयोग गढवाल के रवाई क्षेत्र म व्यापक है कुछ उदाहरण इस प्रकार है खणटुडी, डयांटुडी, गठुडी। इसी प्रसंग म ल का उल्लख भी यहाँ किया जा सकता है। यह सस्कृत का त्रिया विगपणीय प्रत्यय है। गढवाली म यह लो रूप म मिलता है—एकलो, दुकलो, पटलो, खटलो, सटलो, पोयलो

(दुजल), दुदली (दुग्धल), किरमोली (कृमिल) रीतेला (राजमुचन) ।

इया यह सम्भृत का इय प्रत्यय है गडवाली म इमके योग से इस प्रकार के रूप साध्य होने हैं एकातिषा, इस्कूल्पा, मुरल्पा, हल्पा, बगड्या, हजार्पा ।

उ मस्कृत म यह उक रूप म मिलता ह । प्राय यह विभेपण का भाव व्यक्त करता है उजाडू, गौरी बिगाडू, नौना, स्वारू (सोमवार के दिन पदा हुआ व्यक्त) । उक > उआ > उ ।

एर हिंदी म भी (एरा लुटेरा चिनेरा) है । गडवाली म डोलेर, बसेर, गलेर, भेलेर आदि शब्दा म इसका प्रयोग मिलता है । यह एड रूप म भी व्यवहृत होता है, जस खुदेड, भजेड, रोदेड । दसी म मिलता जुलता एक और प्रत्यय एड भी प्रयोग म आता है, जस घरेडू, मितरेडू, बणडू, मडेडू ।

ऐत विद्वाना म इमकी व्युत्पत्ति बत मत या आपत्त मे निवारित की है । हिंदी म यह जायन रूप म आता है । गडवाली म इसके भाग स कुछ गड इम प्रकार बनत हैं षठत पचत, चकडत, सजत बसन ।

ऐस हिन्दी नाम क बग का यह प्रत्यय डा० उदयनारायण तिवारी क मत म मस्कृत आप + बग तथा हानने क अनुसार मस्कृतवाळा से सम्बन्धित है । इयम (गरीयस, कनीयस) रूपा से भी इसक उत्पन्न की कल्पना की गई है । गडवाली म इस प्रत्यय क भाग स भाव-वाचक सनाए बनती हैं जस मिठम कडस, मोटस, उच्चम यस ।

ऐस दबल, चुडल, डडल, रखल आदि शब्दा म इसका प्रयोग मिलता ह ।

घो-डो, घो-डो सिरोगडो सिरोगडी, बणोंडी आदि पुराने शब्दा के अनिर्विकल अर्थ इम प्रत्यय का प्रयोग विरल हो गया है ।

घोट यह प्रत्यय हिन्दी के बट क अनुरूप है । इसका व्युत्पत्ति मस्कृत वत्त स सम्भव है । दिसलौ, घघ्यालाट जमे गडो मे स का आगम भी हुआ मिलता है ।

क, धाक, की आदि क-वर्गीय प्रत्यय बहुत महत्वपूर्ण हैं । पाछे त्रिषाभा के सम्बन्ध म विचार करत हुए क पर विचार किया जा चुका है । इस प्रत्यय से निर्मित शब्द प्राय ध्व-यातभव हान हैं जैसे-तडक, ठसक, सुरक डमक, भटक । धाक क भाग स भी ये वे ही भाव व्यक्त करत हैं—तडाक, ठसान सराक, डमाक भटाक । य सब सना रूप हैं । को (स्त्री० को) मस्कृत का स्वार्थ तथा विभेपणीय क प्रतीत हाता ह । काफक > काठका, काटगा (क > ग), पनक > पानयो । उसी तरह बादगी गोंदगी गेंदकी ।

दारा यह प्रत्यय मस्कृत की ध धातु के धार धातु रूप स विवक्षित हुआ बोलदारो, जणदारो, खादारो, फुकदारो । हिन्दी की बोलिया म यह हार रूप मे आया है । दार दमस भिन्न प्रत्यय है जो उट्टु म आया प्रतीत हाता है धारीदार,

मिजाजदार ।

षाण, याण भाण वान् या मात् न उद्भूत प्रनीत होते हैं। तच्छाण, फुलयाण तथाण भगवान् युधान्, डाशवान् आदि अनेक शब्दों में इनका याग मिलता है। उसी प्रकार वत्तो वत्ती प्रत्यय भी रोज व प्रयाग में आने वाले हैं। उनकी व्युत्पत्ति वन् या मन् न सम्बन्ध है।

यात व योग न भाववाचक सणाए बनती हैं जस-सख्यात घेड़यात घोषान्, सयात गोडात, रगडयात। इनकी व्युत्पत्ति मध्य है। सम्भवतः वार्ता से इनका कोई सम्बन्ध है।

गडवाली का विशिष्ट प्रत्यय ट, ड, ञ ध्वनियुक्त प्रत्यय

गडवाली का खाती उपनाम म ट ड और ड ध्वनि युक्त प्रत्यय का जाधिय है। राजस्थानी में सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा जाता है। इस ड प्रियता का अपभ्रंश को न माना जाता है। यही नहीं इसका मूल आस्ट्रिक भाषाओं का त म 'योगा गया है।' इसमें इस प्रकार के ध्वन्यात्मक परिवर्तन की कल्पना का गई है त > ट, ड > ड। एक अनुमान यह भी है कि ड ध्वनि में परिवर्तित होने वाला यह त क मवाच्य ट-नीय प्रत्यय त ही है। त के ड में विरहित हान की सम्भावनाएँ हैं किन्तु यह त उचन प्रत्यय ही रहा है यह बलपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इस वग के कुछ प्रत्ययों का उल्लेख पीछे हो चुका है। कुछ इस प्रकार हैं डी जार डा प्रत्यय हिंदी में भी प्रयुक्त होते हैं। गडवाल में इनके अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे-मुलडो (स्त्री० मुलडा) मरडो हियडो गौडो, नातडो, छतडो। ये प्रत्यय पुल्लिंग (डा) में आकार का गुरुता और स्त्री लिंग (डी) में लघुता का चोता करत हैं। कभी घृणा का व्यवहार करत के लिए भी इनका प्रयोग होता है—डामडा भटडा।

टी टी आदि प्रत्यय भी डो डी की ही परम्परा में आते हैं। टी आकार की लघुता और टी न्य का प्रत्यय है किन्तु टी उगवा विराजी है तमोटी कोटो दौट धग्वीलो, घणूटी रघोटी। इसी प्रकार एट्ट सम्बन्ध सूचक प्रत्यय है जस-भोजेट्ट (भाभी के उत्पन्न पुत्र) खसेट्ट (यंग से उत्पन्न पुत्र)। उसी प्रकार वगेट्ट (भसा—भस म उत्पन्न) धगरेट्ट वसेट्ट आदि शब्द भी उसी अपत्य सम्बन्ध को सूचक करत हैं। सम्बन्ध सूचक प्रत्यय के रूप में यात वाली तथा इनके पुल्लिंग

१ डॉ० च दुज्या राजस्थानी भाषा, पृ० ३३

२ डॉ० चाट्टी रॉय मरतीय भाषा भाषा धारिणी, पृ० ४८

३ डॉ० उदयगोपाल मिश्रा भाषाशास्त्रीय भाषा आर साहित्य पृ० १६७

रूपों वाली, वाली का प्रयोग विगेष होता है।

रू साम्य और रूप का यातक यह प्रत्यय अपने मूल म 'रूप' रहा होगा—  
रूप > रज > रू गोर् < गो-रूप, छोर्, बाछरू < बल्म रूप, गवरू < गम-रूप,  
दतर < दन्त रूप।

### विदेशी प्रत्यय

गढवाली म विदेशी प्रत्यय अरबी फारसी से आए हैं और उनका प्रवेश हिन्दी के माध्यम से ही हुआ है। इनम साना बाज दार, ई, गिरी आदि ही उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी प्रत्यया का गढवाली में समावेश नहीं हो पाया।

### उपसर्ग

गढवाली उपसर्गों की सख्या अधिक नहा है। कुछ य हैं—  
अ, अण कु औ दुर नि स मु आदि।

यह कहन की आवश्यकता नहीं कि य सब उपसर्ग ससृत्त से सम्बन्धित हैं।  
विदेशी उपसर्गों में उल्लेखनीय हैं कम वे, ना, हर आदि।

इनके अतिरिक्त कई जय प्रत्यया उपसर्गों का उल्लेख हम अयत्र कर चुक  
हैं। कुछ का विवरण यहाँ प्रस्तुत है

अ असुख अजाण  
अच्छे अकरो अमरो।

अण अणजाण अनडवान < अविद्वान अणचयां  
अणदसा अणसुण्या।

अध अधपेट अधवाट अघरात अध कपाल्या  
अधमरो, अधघल जघनाडा अधपूरो।

अव औतार, औचाट औगुण  
कु कुजात कुसाजो कुगौ कुमनखी  
कुजगा कुमन, कुघाण  
कुसज, कुवाणी।

न सजाण स (न) नवाळ, सचेत  
नि निमण्म, निरण्या निवाण्मा निमाण  
निजाणी, निवाण, निचत, निरसा  
निवाचा, निमाणो।

मु सुनि सुवार सुफन सुवाक  
सुवाट, सुराज सुजात।

दुर	दुर्बीज, दुर्गिन, दुर्चाल, दुरगति दुरदय ।
निर्	निरवेण, निरबुद्धो, निरभाग, निर्मासी निरदद, निरमोह
कम	कमगो, कमनस, कमसल, कम-जात कमबूक, कमजार, कमनी ।
सुग	सुगाल, सुगवत, सुगवी, सुगलिल ।
गर	गर आदमी, गराचाद
ना	नालल, नाखडू, नासमज नासाबिल, नाबूक, नागुग ।
बे	बेजा (वेजा), बेयात, बेसमज, बेमान, बेसज
हर	हर एक, हर-नवी, हरदम ।

अर्थ तत्त्व





## गढवाली का शब्द सामर्थ्य

सद सामर्थ्य और जय-गौरव की दृष्टि से गढवाली बड़ी समृद्ध भाषा है। उसकी विशाल शब्दावली शब्दों की ध्वन्यायकता और जनकायकता तथा मुहावरों-लोकाक्रिया और आलंकारिक प्रयोगों में निहित शब्दों की अभिव्यक्ति तथा शक्ति इस बात का प्रमाण है। प्रकृति और जावा में निरंतर मग्न करने वाले पक्ष-पुष्पादि कठोर जन जीवन की दिनदिन सरस विरस अनुभूतियाँ अनुप्राणित होने के कारण गढवाली लौकिक अभिव्यक्ति में बहुत समय सरस और सजीव है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसमें पान विज्ञान धर्म और दान की विविध शब्दावली का नितांत अभाव है किंतु जहाँ तक ग्रामीण लोक जीवन की सामल-करण अनुभूतियाँ की अभिव्यक्ति का प्रश्न है गढवाली संस्कृत में उधार ली हुई तत्सम शब्दावली पर पनपन वाली अनेक जायबिभाषाओं से अधिक संप्राण और संपन्न है।

### ध्वनि और अर्थ

जीवन की अन्तर्गत परिस्थितियों में जन्म लेने वाली लोक भाषा का निर्माण में ध्वनि का विशेष हाथ होता है। गढवाली ऐसी ही लोक भाषा है जिसमें उद्भव और प्रारम्भिक लिपि में शब्दों के लिए ध्वनि की प्रतीकात्मकता एक महत्वपूर्ण तत्त्व रहा है। अर्थ भाषाओं तथा हिन्दी के अर्थ-तत्त्व का अध्ययन करते हुए विज्ञान ने ध्वनियों के सम्बन्ध में उनमें निहित अर्थ पर विचार किया है। मुख्य पहाड़ी की गढवाली विभाषा में भी यह ध्वन्यायकता मिलती है। यहाँ हम कुछ गढवाली ध्वनियों से संबद्ध अर्थों का प्रस्तुत कर रहे हैं

१. स ध्वनि खाँसलापन व्यक्त करती है

साँझ तालाब या पाँवर जहाँ वर्षों का पानी रूखा जाता है।

साथ मुह विनेपत सुता दुआ मु  
पाट गट्टा सोळ अवरा गान  
सोल गान, सखळ लप

- २ घ ध्वनि घषण व्यक्त करती है जग  
घसणू सापना पोतना पिच्चा मुह  
घट्ट घराट पनचकरी  
घेत लप एक बारी म ल जाया गया बाभ  
घुसेणू मिमट कर साथ बटना  
घटणू ठाकना गाढ़ना ।
- ३ छ ध्वनि ग गति तान-लय रक्कर चलना आदि अथ व्यक्त होना है  
छकछक विगप तान-लय या गति स चलना  
छुळछुळ रक् रक्कर पानी का गिरना
- ४ झ अकस्मिकता और काप की शीघ्रता का व्यक्त करने वाली ध्वनि है  
झपाको नपटना (झमाको भी)  
झुमलो मृत्यु व साथ चलन वाले कुछ लाकभीत,  
झसमस उपावान स कुछ पहल का समय जो गान बोल जाता है  
(झोजी) झाडो भूत प्रत भाडने की क्रिया  
झसराट विपल जतु ग काट की शीघ्र पतती हुई पाडा ।
- ५ ट ध्वनि आकार की विरूपता और हिंसा को व्यक्त करती है,  
टसाठस, ठेस, ठसाक (छेडछाड)  
ठकठक, ठोंट चाच,  
ठौर, ठौर मारणू—जान म मार देना,  
ठुरणो (गिरना) जादि ।
- ६ ड ध्वनि हिंसा कठोरता स्थूलता, गति की स्थिलता और विरूपता प्रकट  
करती है  
दुगो तुतनाय दुगर डिगल परयर  
दांगो बूढा बल दांडो जोल  
दयरो भेड दंडक आन्दालन  
दुडोर पुट्टे दामणो पगुजा की कमर  
दबका डाल इसीस डाकरी (—वाधी) गद बना है जो नाचने गान वाली  
एक जाति विगप क लिए प्रयुक्त होता है ।  
दास जाघात, दारल्लु फोडा  
दंडोलेणू इधर उधर घूमत फिरना ।



पूजक गगत न हो किन्तु सम्भव अवश्य है। भाषा प्रसार अतुरजन अथवा अनुकरण के आधार पर अनुकार मूलक भाषा की भाषा मण्डि ई है। यही हम कुछ समझें हैं और प्रिया पर प्रमाण पर रहें हैं। यही यही अथवा सितसॉट नी नी भाषा पट्टी पर (का जिगा मूट मूट ध्वनि होती है) सुरगुर चुपचाप चरना सरासर नदी से चरना भूकी चुम्बन सपडाक चटगाग गिजगिनी गीना कतमत किमी काय क करन म उरानापूर्वक गीधना परना सेगी गरी कडकली विसी करण दस्य का दस्यर मन म उठा करणा का भाषा सटगली चिकना घरघरो तागा जरजरो प्राधा घबराए तड पाग भलग जयरा भताग कडड समसट्ट ऐमा पीटना रि घायन नम्वा लए जाय थगछट्ट त्त्यधिक प्रमन्न होना जाति।

प्रियाएँ कपलाणू कबल ध्वनि म गिल्लाना कसडाणू मिच जाति नग जान पर सी सी करना गुणमुणाणू अस्पष्ट ध्वनि म ताक स यात करना घपराणू तडी ने स्मरण हुए चरना दनकणू दोना कषाणू कराहना छटगणू भागना लेंमडणू गिरना कितगणू दोन पीसकर दोनना गिडकणू गरजना सौडणू पूरन टुबडे हागा सटकणू अनुचिन काय करव परने जान क भय स भागना घस्कारणू दुनारना।

कुछ पक्षिया के गाम भी उाकी ध्वनियों के अनुकरण पर रस गठ हैं घूघूति नुननीय पजायी घूघी कफू काफस पाकू काफस पक गए घूघू गस्टन घूकू, टकाटोर कठफोडूया जाति।

### उपसर्ग, प्रत्यय और समास

विभा भाषा क जय विरासत म ध्वनि प्रतीका के समान हा उपसर्ग और प्रत्यय तथा समास का विषय स्थान होता है। भाषाकी संख्या-वृद्धि और मूल अथ म सम्बन्धित जनक ज्यों क विनाम का दृष्टि स गढ़वाला भाषा क लिए उपसर्ग और प्रत्यय की देन महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए यहा विभिन्न प्रत्ययक पाय स मून भाषा म हुए अथ विकास क मवेत देनीय है

जा जादू जान वाला जादो (परिचेत) — त्रिबुज गया-मुजग व्यरित जाध्या जाने वाला जस्विर जवाई जाने की क्रिया जाऊ जाने वाला जो टिकाऊ न भा जाणी (औणी जाणी) जान की क्रिया थलो साथ जोट जाडी साथ जान वाले गारारो जान वाला यादि।

अथ आग जाग आगे कुछ समय पहल आगन जागे गबन पहले या समय स पहल अगेता समय स पहल आगलो हिनी जगता दूमरा — आगलो आग्नी क्या बोचना ? — दूमरा आग्नी क्या वहेगा ? अगसियार देवता की पूजा या चक्की की पिसाई क लिए पहले स क्रिया गया अन्न अगेरे या अगेरो (अगरी-

बठाव दखी—जागे बठकर दखना जय—) ध्यान पूर्वक अगलाडो मवान का अगला हिस्सा।

मुड मुडारो सिर का दद मुडगो लकडी का कुण मुडयासो पाडी मुडेणू मरे हुए के लिए बाल कटवाना मूडो मिग मुडयाठ सबसे ऊपर।  
पिड पिड पितरा को दिए जाने वाला पिड पिडा शरीर (रखवाली गीता म—य पिडा को जर उपेले) पाँडो पगुआ का न्यि जान वाला जाट का गाला, पिडाळू कचालू।

सिर सिरवा निर दः सिरण्डी सिरट्टी सिराणो सिरहाना सीरो थप्ट सिरौ भेड-बकरी का सिर सिरोकणू सौपना।

प्रत्यया की भाति गढ़वाली म समाग रचना का प्रयोग अधिक नहीं मिलता किन्तु उसम समास का सबथा अभाव नहीं है। गढ़वाली म ऐन समासा का प्राधाय है जिनम दो सामासिक शत्रु अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मिटाकर एक रूप हुए मिलन हैं जैसे मात + पुन > माबत सामाय अय माता और पुन किन्तु पिता और पुन के लिए भी इसका प्रयोग होता है। भात + बधू > बीड भात + जाया > भौम हाथ + पानी > हत्वाणी जाता गूदने के लिए हाथ म लिया पानी वात + पाना > बत्वाणी वर्षा + बाल > बसगाळ, नव + रात्र > नौरता आदि। गढ़वाली म ऐसे समासो का भी अभाव नहीं है जिनम समास-सम्बद्ध शत्रु लुप्त नहीं होते और सुरक्षित रहकर भी जो एक भिन्न अर्थ की मण्टि करत मिलन हैं

सतनाजो सात अनाज घर घर म माँगा हुआ अनाज, जा दवता को चढाया जाता है और जिसको चणन क पदचात् दागी परिवार का अनिष्ट हो जाता है।

डिपाया दो पाँवो वाला मनुष्य।

चौखटया चार परा वाला पगु।

गाँठ सोलाई गाँठ को खालन की क्रिया, स्रहूकार स ऋण लत हुए अहसान

के तौर पर लिया हुआ (याज स भिन) धन।

रात व्याणी रात का प्रमूता हाना उपा बाल।

पेट बाँठी वह स्त्री जो पट का (म, स ही) चतुर है, वह जा चतुरता प्रकट नहीं करती।

मुस मुलाज्या मुह + मुलाटना विगिण् अर्थ—वह व्यक्ति जो किसी क मुह-नामने उसकी बात मान लता है।

सौजड या जिनकी जड मम ह—मित्र साथी।

पुनरावृत्ति

पुनरावृत्ति भी अर्थ विन्तार म महायक होती है। पुनरावृत्ति कभी

निरयक नहा होता। प्र ताव मात्राधिकार तार वनिष्पय का धरनिव करतो व निव  
गडवाली बातर रतात न पुनरावनि पर विगत धन निगा जाता है। गन्धारी  
सात गति। म इतके सुन्दर आहरण मिला है। यहाँ हम कुछ मामाय उगाहरण  
प्रस्तुत कर रहे हैं

बुद्धा बुद्ध्या मरी मर बुद्ध बुद्ध मर गण—जो बुद्धे ध ध मर गण (और  
नगा)। तुतनीर कवीर—फून फून बुनि नि ।

इना इना उग छा गजा एमे ऐमे (पानी दूगरा तरह वे नही, कवन एमे  
ही) वनिग वनी ह ?

बुद्ध बुद्ध नव पापरी पुतशी याता बुनराण उग छा आणी पुन्नी पुन्नी  
नव पापरा नव गदा और ग कणा है वि कण्ड नवन की ग्य वहाँ से आ रही  
है ?

बुद्धा उ ग हगे गमा पर नव बुद्धा न्यन छी। बुद्धिा ता शीये-नोमे (गाना  
नी) पर नव बुद्ध गान न ।

विना री दानत पर नि-मै वना ह नीना की दवान पर मै मै हा रहा है।

घोणू नी घोणू जा रहा हू भा रहा हू।

### मठ प्रमुखा गदर

इसी प्रकार मठ प्रमुखा गदर ही अग का गदर करत मिलत है। उम प्रमुखा  
निरयक गदर नी ताव की दृष्टि से गायक और पूरव जाता है। उगाहरण व निव,  
ही भी मन की निपरता जो मियवाता रौडा पीडा गार-आराया, राम-रुनी  
मन्तार वनिवाता, पुठणू गवणू पूछ-भाछ करना गति सह प्रमुखा गदर म  
अथ का जा मोष्ठन निहा है, यह गदर मुम ग ही माध्य है। यही बात पाणी  
बाणी कागज पाण्ड बुद्ध कुई म प्रमुखा पाणी बागन, कुई आदि गदर के बारे म  
नी कही जा सकती है जो वहाँ पर निरयक हान हुए भी संवधा निरयक नहा है,  
जम पाणी बाणी—पाता या पानी जगा का और चीज जो पानो का काम दे  
सके। इस प्रकार उमम जप्रवण रूप म आदि का भाव भी निहित जाता है।

### पूनसग आर परसग

विही गदर म गदर का अथ वन बुद्ध गदर व पारस्परिक सम्बन्ध पर विभर  
करता है जो पूव गदरों अथवा परवर्तों न गदर म सं प्रकृत होता है। कारण क  
गदर म परवर्तों का उगाहरण पीछे निगा जा चुका है। गदरवाली में कभी दो-नो  
परसगों का पयोग एक साथ मिलता है। इस प्रकार क पयोग निश्चित रूप से  
अथ को वनिष्पय पता नगा है। व समुक्त परसग इस दृष्टि से विचारणीय  
है

चूल्हा मा को खाणो खाये चूल्ह पर का खाना खाया ।  
पत्ता उद को पाणी पेय घडे म का पानी पिया ।

ढाळा पर-न पछी उडे वक्ष पर से पनी उटा ।  
य वाक्य अनुवात् म विचित्र ला मरुत हैं किन्तु ये सयुक्त परमग अथ वृत्ति

पट्ट की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण हैं । वस्तुतः ऊपर के वाक्या म किसी विगिष्ट अथ पर वल है जस वही खाना खाया जा चूल्ह के ऊपर था वही पानी पिया जो घडे म था । इसी प्रकार वक्ष स पनी उटा भी अपन म सायब वाक्य है किन्तु उसम प्रत्यय रूप स वक्ष पर वठन का भाव मुखर नहीं है । इसलिए वक्ष पर स पनी उटा वाक्य दो तथ्या का प्रस्तुत कर निरद्वयन अथ का निर्धार करता है— (१) पक्षी वक्ष पर था (२) वह वक्ष म उटा । कहा जा सकता ह कि से परमग से भी यह भाव अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हा सकता है किन्तु से म घटने का भाव की अपक्षा विलग होने का भाव मुख्य है ।

इसी प्रकार ही भी त आत्ति पूव सर्गों के प्रयाग और वाक्य म उनकी स्थिति पर भी अथ भेद निर्भर करता है, जस—  
में जाद छों में जाता हूँ ।

में त जाद छों में तो जाना हूँ (चाह-जीर कोई जाय न जाय) ।

में त जाद छों में जाता हूँ (किन्तु जाऊगा ही उसके अनिश्चित कुछ और भी क्या) । विवगता और जानाग) ।

में जाद छों त (यत्ति) में जाता हूँ ता (न जान क्या हा जाय) ।

त में जाद छों ता में जाता हूँ (अच्छा मैं चला) ।

में ही जाद छों में ही जाता हूँ (और कोई नहीं) ।

में जाद ही छों में जाता ही हूँ (जीर कुछ नहीं कर रहा हूँ) ।

में जाद छों पर में जाता हूँ पर (अनिच्छा पूर्वक) ।

मुहावरे, लोकावित्या तथा अय प्रयाग

भाषा का प्रारम्भिक रूप नरन और एक सुनिश्चित अथ से सम्बद्ध शास्त्र स निमित्त जाना है किन्तु धीर धीर जब भाषा व्यवहार और विकास म प्राप्त लगती है ता उनकी व्यञ्जना शक्ति बढ़ती जाती है । मुहावर भाषा की उसा शक्ति क सातक जाने हैं जिनके सहारे शास्त्र नए अर्थों म ग्रहण करत जात हैं ।  
गन्वाला म मुहावरे के सम्बन्ध म एक मुहावर है— माधारी घोणू मुडावरा आना' जर्षात अम्मात होना व्यवहार म जाना । मुहावरा की अथ गुरता की वस्तुतः यही सही व्याख्या हो सकती है । निय प्रति य जावन म जन-माधारण अविकारा गदा का प्रयाग अम्मात व्यवहार पूर्वतान अनुकरण और भाव्य क भाषार पर ही करता है । जनमाधारण शास्त्र क मूल की बात माचता ह न



तब का गहरा लना है और न व्याकरण में नियमों की ही चिन्ता करता है। वह अभिव्यक्ति चाहता है। मुहावरों की उत्पत्ति का इतिहास ही यद्यत्तव्य अभिव्यक्ति की इस उत्कृष्ट अलिप्तता और भाषा की अभिव्यक्तियों की उत्पत्ति का इतिहास है जिसके हर चरण में नवनवन हैं परम्परा संगठित होत हैं और फिर जब वे ही अनायास प्रयोग में आ जाते हैं तो अपना अभिप्रेत अर्थ देने लगते हैं और फिर मुहावरों के अर्थ गहन स्वाभाविक रूप में व्यवहार में आते जाते हैं।

मुहावरों का आधार भाषा है। परन्तु उक्त भाषाभिव्यक्ति की सबढना अमूर्त और लक्ष्य का अभाव मिलता है किन्तु उनका सबग यही विषयता यह है कि वे भाषा में अमूर्त अमूर्त पारस्परिक संगठन में ही अर्थ-बोध की क्षमता उत्पन्न कर लेते हैं। इसीलिए मञ्जरी और विद्यापति के विचित्र संयोग से बने 'मन मञ्जरी' के भाषाभिव्यक्ति अर्थ का उचित विकास कम मनोरञ्जक नहीं प्रतीत होता।

- १ नाक लगना नाक लगना बुरा मानना।  
 नाक झोणू नाक जाना तार में दन्डमा बहना।  
 नाक मा झोणू तार में जाना परधान होना।  
 नाक तुझोणू नाक तुझवाना पिटना।  
 नाक कटोणू नाक बटाना बाई लज्जाजनक त्राप करना।  
 नाकफारी होणो नाक-बागी हाना धनुता होना।  
 नाक मा रख देणू नाक में रख देना गुस्म में फेंकना।
- २ झाँवा झोणा जाँवें आना, जाँवें दुखना।  
 झाँवा होणा जाँवें हाना, पढा लिखा हाना।  
 (हात) झाँवा लगणा (हाथ)-जाँवें लगना स्वावन्वी हाना।  
 झाँवा करकोणा दिखोणा जाँवें दिगाना, धमरी देना।  
 झाँवा देखणा जाँवें देखना जाँवा से देखना (काम लेना)।  
 झाँवा ताणणा जाँवें तानना त्राप करना।  
 झाँवा तोपणा आस बन् करना साधा, भपकी लेना।  
 झाँवा चलोणी जाँवें चलाना मक्कन करना।  
 झाँवा बतोणू जाँवें बताना त्राप करना।
- ३ नौ करणू नाम करना नाम पदा करना।  
 नौ लेणू नाम लेना याद करना।  
 नौ पडणू नाम पडना लच्छन पडना।  
 नौ धरणू नाम धरना किमी का बदनाम करना।  
 नौ लगणू नाम लगना, पापी ठहराया जाना।

नों सरणू नाम सरना (बटना) कीर्ति का प्रसार ।

नों जाणो नाम जाना, आदर प्रदान क लिए नाम न तना ।

नों पर रहणो नाम पर रटना, पति की मृत्यु क पश्चात् दूमरा गार्ह न करना, वधवा का स्वीकार करना ।

नों लिङ्गणू नाम ल जाना, चचा करना वृत्तवता प्रकट करना ।

अपणा नों कू होणो अपन नाम का हाना, अपने का माय्य मिद्ध करना ।

नों चलोणू नाम चलाना, प्रचार करना ।

नों लिखोणू नाम लिखवाना, भर्त्ता होना ।

नों रणू नाम रहना, यग जोवित रहना ।

नों क रोणू नाम क लिए रोना, मन की कामना करना ।

नों पर घुप पड़णू नाम पर धूनना निरस्कार करना ।

नों घौणू नाम जाना किनी मन्त्र म किनी की चर्चा करना ।

मानव ने जावन जीव जगन का साक्ष्य और वर्धिय क जाधार पर समभन वृम्भन का प्रफल किया है । उमन पदार्थों, जीवा क्रियात्रा, प्रतिक्रियात्रा, विचारों और व्यवहारों म साक्ष्य दला है और इन प्रकार एक की विरोधता वा आगाप दूमर पर किया है । परिचित क द्वारा अप्रमत्त या अपरिचित की व्याख्या साक्ष्य्युपनि की विरोधता है । मुहावरों क सूत्रन म यही प्रवृत्ति माय करनी है । उदाहरण के लिए ये गणवाली मुहावरे लीजिए—सासू की स्वारी होणू मान की बहू होना गो होणू गी होना, चिठाणो की नस्या होणू जेठानी का भमिया (भम पादना वाता मेवर) होना । य मुहावर सास क अधिकार म रहने वाली बहू मादी माय और भाभी पर आम्बन पति का व्यवहृत हुए रच गए हामि और बाद म त्रिगिण्ट जय म प्रयुक्त होने लगे हामि । मुहावरों की सबसे बड़ी विरोधता यह जानी है कि उनका जय अभिप्रेय जय की अपभा विलक्षण होता है । इस विलक्षण और भिन्न जय का साथ दलना और व्यजना गणवाक्यशास्त्रे साध्य होता है । गणवाली मुहावरों म इनके मूलर और प्राचुरिकतम उदाहरण मिलत हैं—माया की मगीत होणू प्रम की मगीत होना, छुट्टी की रामण होणू वाता की रामायण (अथवा वातूनी) होना, घुट्टी पनी घट्टी पीना, गराव पीना रामण लगीणी रामायण लगाना, आप बोनी मगाना जडला लगणा जडें लगना अचन स्थिर होना, दणू होणू दाहिना होना अनुकूल होना लकड़ी देणी लकड़ी देना मन व्यक्ति का जलात के लिए तनना ल जाना दौनु या रखणू दौना क ऊपर रचना परगाल करना, बुरा भना कहना कौरट होना कान होना कुक होना छीना जाना घूउ पकड़णू पूछ परटना महाराज लना अनुमरण करना, जाणि ।

साम्प्रत म मुहावरों और गणवाक्य विज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है । किन्तु यह

स्थान दन याग्य है कि गामाजिज अथ बहुत बुद्धिमी प्रत्येक विनोय की पतिहा गित भोगाजिज तय तीव सामाजिज सामूहिक और मनाज्जाजिज परिस्विति पर तितर करता है। गन्वाली मुहावरा को एक उद्भूत उड़ी विनोयता यह है कि व अपना युग गमाज और मस्विति की मापनाआ को प्रतिनिमित्त करत है। स्वा करण स्वार्हा करना पिडाइ सगणी हल्नी या तितर सगणा जति एग हो मुहावर हैं। छष्ट सगणी जप्त्म् लता तया घट्ट सुनों देगणी घट्ट और सूय का मिति दस्ता पनित ज्ञानिय मे गम्बधित है। सक्की देना मुहावरा नी उग प्रमाण और मानूहिक जीवत व्ययस्था की जार सनेत करता है जितम किनी व्यक्ति न मर जाणे पर गाव के सब लोग चिजा के लिए उफडी रोहर घाट पर जात हैं। किन्तु युग के गाय सस्तरा धार्मिक अनुष्ठाना के सम्बन्ध म विचार बन्वत है इनक शाय उनम निहित अथ भी परिवर्तित हुए बिना नही रगत। उदाहरण क तिल सगणा धार्मिक अनुष्ठाना का माणतिज पक्ष है किन्तु उक्त उपलभ्य म यजमान का जा दक्षिणा देनी पडती है, उसकी प्रतिनिया एउ विभि न जय का ध्वनित करती है। हिंसी म घूना सगणा इनी तरह का मुहावरा है। सस्वार सम्पादन करते हुए जा सटराग करता पडता है उसको खलन हुए घौवहकमकगणा मुहावरा बुरी तरह थकने या मारे पीट जाने क जय म प्रयुक्त हाना है। गठनाल म मान की प्रत्येक सत्राति को जीनी (तुलसीय गुजराती आवजी) वाक् घर पर के जामे टोल बजाकर बघाई दत हैं। इसी आधार पर सपणी सगराव बजोणी अपनी सत्राति बजाना (नीवत यजता) मुहावरा चाहे-अनचाह अपना दामित्त पूरा करन के जय म प्रचलित है।

ऐतिहासिक भोगाजिज और जातीय तत्त्व भी मुहावरा मे प्रयुक्त गन् को नया अथ प्रणा करत हैं। उदाहरण क तिल गडवाल पर हुए गारुता जात्रमण और उसम क्रिये गए अत्याचारो के कारण गारुष्याणी बरुणो (गोरखानी करना) मुहा वरा बवरता दिखान के अथ म प्रयुक्त हाता है। मध्यवाल म गडवाल और भोट (तिवत) म जो सघप रहा उसनी कठारता भोट थठोणू (भोट गिठाना असक्त कर देना) भाटत देखणू (भाट देखना बहुत बडो कठिनाई म पन्ना) जादि मुहावरो मे अभिव्यजित हुइ है। इसी प्रकार लका एक भोगाजिज नाम है किन्तु लका जाणू लका जाना तथा लका होणू लका हाना प्रयाग सज्ञान की जपणा स्थान की दूरी का व्ययन करना है। इस प्रकार क मुहावरा म 'यक्तिवाचक' या जाति वाचक सागए भी भाव-वाचक हो जाती हैं। जाल सस्या (सप्त) बनिया उतरक, बजाक आदि सजाण जय मुहावरो म प्रयुक्त हाती हैं ता वे अभिव्यय की जपणा सनते सम्बद्ध गुण दोषा की अभिव्ययना करत मितत हैं।

गडवाली मुहावरो मे अर्थापेक अथापेग और जयोंत्थप के अनेक उदाहरण मिलत ह जा भाषा की शक्ति और अथ की गरिमा दोना को प्रकट करत हैं।

पवित्र अमलन, घणित आर अरलील भाव अथवा क्रिया का बालचान न बढी बनानी और सौजन्य स व्यक्त करना मुहावरा की समय बडी विरोपना होती है।

जीवन स नम्बघिन गढवाली मुहावर इसके प्रमाण हैं। जातव सूक्त य मुहावर इष्ट दष्टि से विचारणीय हैं श्रुतुमाहोणु श्रुतु म हाना, नहेपकहोणु गहान का हाना पाणी भर होणु पानी स वाहर (न छून माण्य) होना छौ होणी जस्पुस्व हाना। इसी प्रकार पणुआ के गानन होने का भाव फलणु फलना बोधणु वाया जाना थीर फल लणणी फल लणना मुहावरा के माध्यम स व्यक्त क्रिया जाना है। मत्री क गनवती हान का सक्त भरी भाडी होणी भर वन हाना, दोगिया होना दा बी वानी हाना दावस्या होणु दा अवस्याआ वानी होना, आगावद (आगावत)होणु आगावान (आगावती)हाना आनि मुहावरा से क्रिया जाना ह।

अविनाग गणवाली मुहावरे मानव चरित्र की विविध मनस्थिति, भावा, अनुभाव और सचारी भावा स सम्बन्ध रखत हैं। उनम प्राय घणा, तिरन्कार हिंसा आवेग आह्लाद उल्लान आनि मनोभाव की सत्ताव अभिव्यक्ति मिलता है। ऐमा प्रतीत हाना है जस मनरा रचना आवग के सणा म हुई होी कनाकि प्राय एना स्थिति म श्रुतया अथ अभिव्यक्ति करन क समय हान है।

यही नही गणवाली भाषा क मुहावरा म भाषा सौष्टव और लाघव क सुन्दर उदाहरण मिलत हैं। एदम अरिक् अभिव्यजना क्ति अगर कही सिाई नी है ता उन मुहावरा म तिनम पुनरक्ति सह प्रयाग शर 'अनुकरण क दान हान है टेंटे करणा टेंटे करना ऐंठ सिाजाना सौ फटाक हाणी अहंकार सिाजाना दौकरा कौकरी करणी गोर घुग करना कचर कचर करणु एक वान का न्ह वार कचर करणु एक वान जोर ध्यान दे माय ह कि सना और क्रिया क योग नवन महावरा का अपना सवनाम क्रिया विरोपण कृदत, अन्य स वन मुहावर गणवाला म अथ

तर की दष्टि स कही अधिक सकत हैं। कुछ उदाहरण लीजिए तून्ता होणी तून् हाना उब्बो घौणु ऊर व जाना क जाना, थ-उथ लाणी इधर-उधर की सगना, भूडी-मच्ची वार्न करना आइ होणी आइ हुई हाना मत्यु उठणु-बठणु होणु उठना बठना हाना पाय हाना।

मुहावरा की मति लाकावितया म जी जय-माप्टव की सभी विगपनाएँ मिलती हैं। क लाकावितया का कवल अभिधय अथ ही प्रमुख हाना है किन्तु अधिकांश म आन्कारिक प्रयोग क कारण अथ विम्नार क दान हान हैं। सामायत लाकावित बहुलाने का गौरव कवल उसी उक्ति को प्राप्त ह जा मानानुभव स उन्नत हाना है जोर लावानुभव प्राय घटना प्रत्य हाना ह एनीतिग गणवान म लाकावित का भौसाणा (आख्यान) श्लाणा (उपाख्यान) कना जाता है। बलुत लाकावितया सार रूप म आख्या जयना उपाख्यान के मूल

में स्थित घटनाओं से उद्भूत तापानुभव की अभिव्यक्ति हैं। इसीलिए कई तापानुभवों में अतिसूक्ष्म तापानुभव और कक्षा गत्व की माद मिलती है, जिनमें उनमें अथ तापानुभव की सीमा अभिप्रेत अथ तक ही नहीं रहती। उष्णकरण के लिए स्थूल तापानुभव का तापानुभव प्रस्ताव करने वाली कुछ गडवाती लोकोक्ति में यहाँ प्रस्तुत हैं।

बल्वा मारीज कोणी बूतणी तोन का मारकर ही बगनी बोनी चाहिए। यहाँ तोना (संत की लड़ी पगल का जाने वाला पगी) मात्र अथवा विघ्नकर्ता तथा बंगनी (अनाज विनाश) उपरान्त व क क्रिय लिए उद्यम का प्रतीक है।

विराळी मारी सयी देणदन दूद सत्यु बोनी देणद मिलनी का मरा हुआ गभी देणद ह (उगका) गिराया हुआ दूध काई नहीं दसता। यहाँ मिलनी का अथ उग अवराधी स है जा जा आराध (दूध गिरान) व कारण दूध पाता है किन्तु दूध की अतिगपना अथवा गहानुभूति के कारण लग जिनके अपराध पर ध्यान नहीं देते वलिय उगका अनिष्ट करने वाले व्यक्ति को ही तापी ठहराते हैं।

इसी प्रकार अथाविष्यों और आन्तरिक प्रयोगों में गडवाती लोकोक्ति में विविध अथ का प्रकट करती हैं जैसे—

रस बगल कुल की साज हे चम कुल की राज रम ।

अफू घलदन रोता श्री पदोदन गीता स्वयं तो रीत चलत हैं और दूसरा को गीता पडात है।

पडित भली जादन बबोत्या दूबो जादन पडित भी भूल जात है तराक भी दूब जात है।

मो छीं गीं मा भली घाग गीं मा बयो नी मिली मैं गांव म सपसे भली हू किन्तु मार गांव म आम मांग मई पर किसीने नहीं दो। (जगर भची ही हाती ता योग आग बयो न देत ?) यह उक्ति उम युग के सदाभ म समझनी चाहिए जब दियापलाई का आविष्कार न हुआ था।

पगडी किल बांधो बछ मरोड छ पेंच केक नी गाड बल, गरीब छऊ 'पगडी क्या बांधी है ? (एक से किसी न पूछा तो वह वाला ) अपनी छूँट है। (इसपर उमाने फिर पूछा ) ता फिर पेंच (पगडी का तुरा) क्या नहीं निकाना ? (उत्तर मिना ) गरीब हू। (गरीबी और छूँट दाना एक साथ क्या रह सकती हैं ?)।

कित तोती होली कित मणा होली या ता तानी (ताना का स्त्रीलिंग एक अथाकरण प्रयोग क्याकि तोना का स्त्रीलिंग तोती नहीं होना) होगी या तो मना। किसी जत्र पूछा गया कि जमुक पगी कौन है ता उसने उत्तर दिया—या ता तानी हागी या मना हागी। यह उक्ति उम व्याख्या को चरिताथ करती है जहाँ कोई व्यक्ति अपने जनान को दत्त का भ्रम उपस्थित कर छिपाना चाहता है।

झटले ब्वारी ? बल पीयाले ससुरा जी (ससुर ने बहू से पछा ) बहू (खाना) खा लिया ?' (ता बहू ने उत्तर दिया ) हा, पी लिया ससुर जी !' यहा खा लिया और पी लिया शब्द सायक हैं ।

नास्तिकतया क समान ही साहित्यिक प्रयोगा मकल्पना, आलंकारिक सौन्दर्य, और शब्द चमत्कार भी अथ की गुरुता म सहायक हात हैं । गढ़वाली लोकगीता म इमक सुन्दर उदाहरण मिलत हैं

दाधी ध्वतो छ्वीलो, मेरी भग्यानी बौ  
तेरी बाना ह्वगे, मेरी भग्यानी बौ,  
मे सरोल को ब्वीला मेरी भग्यानी बौ !

—ट मरी भाग्यवती प्रेयसी तेरे कारण मर शरीर का कायना हा गया है ।  
गुड छापो भाख्योन,  
ओर खादा गिचीन तू खादी भाख्यान ।

—भक्तिवायी गुड खानी है । दुनिया ता मुह से खाती है, लखिन तू आखा से खाती है ।

सौदा चवनी को  
सौ साठ गगुबा हो दा, जजाओ ज्वनी को ।  
बाखुरी को फेकू  
बखून दुया भर्री खुवा मन को एकू ।

—आवास पर सक्डा तार हात हैं किन्तु प्रकाश चद्रमा का ही होता है । धरती पुर्या से भरी पडी है किन्तु मन का अधिकारी कोई एक ही हाता है ।

### अथ परिवर्तन

किसी भी भाषा मे अथ परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । इस स्वाभाविक प्रक्रिया म कई सामाजिक सांस्कृतिक मनावनानिक और भौगोलिक तत्त्व एक साथ काम करते हैं और इना प्रक्रिया म कभी सन् अपना रूप और अथ बदलत हैं । उदाहरण के लिए कभी किसी विनोप ध्वनि पर बल देने के कारण ध्वनि लुप्त हो नहीं जाती बकि अ गणिष्ट ध्वनिया नय अथ म पयुक्त होने लगती हैं । उदाहरण के लिए, आर्या > अज्जु > अज्जी > गढ़वाली जी—इस प्रकार आर्या शब्द स व्युत्पन्न जी शब्द का अथ सास हुआ किन्तु शब्द पर भिन्न बलाघात के कारण उसी शब्द से आया > अज्जा > इजा और इससे भिन्न एक और रूप जिया निष्पन्न हुआ जिसका अथ भी है ।

कभी शब्द के किसी अप्रधान अथ पर बल देने के कारण भी गढ़वाली शब्द म रूप और अथ का परिवर्तन हो जाता है । उदाहरण के लिए गोस्वामी शब्द स अथपरत गुह्य शब्द का लिया जा सकता है । प्रारम्भ म इसकी अथ गौआ का

स्वामी रक्षा हागा या" म रथ भी ९२ दन देन के कारण गुप्तू या अथवे वन स्वामी रह गया जग बाहरों को गुप्तू बनरिया बा स्वामी, पुगडा को गुप्तू गग का स्वामी और फिर जय गगाय के कारण गुप्तू गग ददन पति का पर्याय बन कर रह गया। इसी प्रकार गन्वान का ऐतिहासिक परिस्थितिया अथ व्यवस्था और सीनिया का परिवर्तन ना ग ग अथ परिवर्तन का कारण रहा है। उदाहरणार्थ एक युग म स्तूप गग एक विनियम अथ परिणामन रहा, किंतु बाद म जब युग की ऐतिहासिक परिस्थितिया के परिवर्तन के कारण स्तूप का महत्त्व मरुट हा गया तो यह गढ़वाली म थुप + डी ० रूप म लेवन कर का अथ-बोधन बनकर मात्र रह गया। इसी प्रकार यत्र गग का लिया जा सकता है जा गढ़वाली म जादरो जातो तथा जतर आदि स्तूप रणा म विकसित हुआ मिलता है। एक युग म चक्की और दूनर म तागे का मन्त्रपूज यत्र माना गया हागा, जिगरे कारण जादरो तथा जातो नाम दिया गया। इसी प्रकार तत्रयत्र का साधना के युग म स्तूप की यत्रणा से रक्षा पान के लिए सायोज का जतर बहलान का गौरव प्राप्त हुआ। और बाद म उक्त रहस्यमय गतर का इनना टास हुआ कि जतर स्तूप का उपयोग अथ आधुनिक गढ़वाली म यत्रल गग के एक गहन के लिए हाता है।

भौगोलिक परिस्थितिया के कारण भी बड़े गढ़वाला गग म अथ परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए मरुत नौवार बिना उगाव हुए जगला धाय के अथ म प्रयुक्त हाता है किंतु गढ़वाला गगार के वन घास का अथ बाध कराता है। स्थान परिवर्तन के कारण ही यह अथ परिवर्तन मानस्य के आधार पर माध्य हुआ हागा। इसी प्रकार एक रथात गगा के कारण गन्वाल म गगा गद सामा यत नदी का बाधक हा गया है जस धोनी गगा, विष्णु गगा हनुमान गगा जाति।

जम हा वातावरण बदलता है गग भा अपना अथ बदलता है और इसालिए सांस्कृतिक विकास के साथ अथ का विकास गग का एक अनिवाय गुण बन जाता है। सांस्कृतिक कारणों म ही हमारे युग म हरिजन गिरपकार जजमान वित्तों (वृत्ति) आदि घटना न भए अथ श्रृण किए हैं। दूसरा आर कई गग म जर्पाप बप हुआ है जस वारिका गढ़वाली दारो (चयल बाचाल और कामुक स्त्री), दूती गढ़वाली दुस्ती (घातें बनाने वाली दुश्चरित्र गारी)। उनी प्रकार सस्कृत रजा गढ़वाली रॉड (विधवा दुश्चरित्र स्त्री)।

सामाजिक सांस्कृतिक उदिया मर्यादाओं और जघ विश्वासा के कारण गढ़वान म कुछ गग का प्रयोग वर्जित है। उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति किसी शुभ कार्य के निमित्त बही जा हा हो तो उम 'दर्श' जा रह हा कहकर नही टोकत। इसके बजाय धाकी सीध या सिधा त' गगवली का प्रनाग अनुभ नही माना जाता। यहा सेदे या सिदात गग का गति अथ सिद्धि है किन्तु व्याप्य म उसका प्रयोग सिद्धि के हेतु प्रयाण किए जाने वाले स्थान अथवा उद्देश्य लिए हा

होता है। इसी प्रकार नामाधिक मर्यादाओं का निम्नान्त क विण म्बिया अथवा पतिना का नाम विभिन्न रीतिमा सु प्रकट करता है किन्तु इन गण का उच्चारण नहीं करती, किन्तु इनके पतिना या परिवार के श्रेष्ठ लोगों के नाम निम्न-वृत्त है जस, अतू नामक व्यक्ति का स्त्री चैत अत्र के विना नाशदा मंनो—नाचन का महोना—अत्रों का प्रयोग कराता। इस प्रकार अन्तः के विना लिखितम जनों के बोधक प्रयोग अत्र का प्रयोग बहुत मनासज्ज होता है जस, कान कनिए मना, उद्यम के विना मली दास, दर्पण के विना छल (मया)। जगुम व्यक्तिओं का नाम अथवा जीवा न दावक अत्र के लिए मय अथवा आत्माय दून अत्र ही प्राय प्रयोग म साथ अत है अत्र, ताय स्वाकरो अनीन म रहन दाता अत्र—बा को राजा टी० दा०—राय बीमारी विप—साथी आदि।

एक ही भाषा कपा राग के जना-जना श्रेया म फन जान अथवा उच्च द्वाय अन्य भारतीय जाय भाषाया के अत्र ग्रहण करने के कारण भी बहुत स उधार लिए ग। म अत्रत्व का परिवर्तन स्थानाविन ह। गडवाला म मन्त्र, वन, अथवा, पनाबी मगठी गुनाती जाति से आगत गण म विचिन अत्र परिवर्तन हुआ है

### मन्त्र

घृष्टाण्ड विदव गट० बमण्ड गिर अफाल।

तस्कर चार गड० तस्कर सल, करतत।

कौतुक उत्सुकता उल्लाप ह्य गीत-नृप

कौपीक सल, मल का नृत्य गान।

मनुष्य गट० मन्त्र पति।

युवता > गट० तर्द पनी।

### पनाबी



## अथथी

गल राम्ना गल्० गल गाथ ।  
 शुल्त हाथ पर लत्ता यानी चद्दर गद्० शुल्ता वपडे ।  
 टाँच नम था ता जाता गद्० टाँच यर ।  
 फाँड वमर व दाना जार वा भाग गद्० फाँड पत् ।  
 भीट तालाव व सिनार वा भूमि वा ऊचा भाग  
 भीटो बिट्टो डालू जमीन ।

## मराठी

अडोसा जात् गत्० अडासो गहारा ।  
 अळ लू अँळ ताप गर्मी ।  
 ठमक नस्तरा टाव शृगार ।  
 ठाडो गत्ता ठाडो साधा गडा ।  
 भोर मुनह भोळ प्राण ।

## राजस्थानी

घायणी गाय भक्त जितने दूध तेना बंद कर लिया हो ।  
 घायण (गत्०) गाय या भैंग का धन ।  
 उकळणो ऊपर उठणा गद्० उकळणो चलाई चढना ।  
 उरडो युद्ध गत्० उरडो भयकर तफान और घटा ।  
 घोळ जाड घोलो घूघट ।  
 गुद, लुद वत्त लुद सुधि की पीडा ।  
 कतरो काटा हुआ कतरो टुकडा ।  
 काली उमत्त पागल काऽली मूव ।

## अरथी पारसी

जानवर पत्तु गत्० जनौर भान ।  
 मुकरर नियत गद्० मुकरिब पक्का ।  
 हकूमत गासन गत्० हिक्मत साह्य  
 बेफजूल जो पजूल न हो गद्० बेफजूल पजून ।

वस्तुतः गढ़वाली के अनेक गठ जा जय भारतीय भाषाओं में भी प्रयुक्त  
 हुआ है, जय परिवर्तन व मनोरंजन उदाहरण प्रस्तुत करते हैं  
 काठो < कठ पाली काँठो, गीणा कन पहाड़ी दर्रा पश्चिमी पहाड़ी कश्मीर सीमा



मयन हागा। गढ़वाली में सामान्यतः अथ विस्तार, अथ-मकार अर्थात् अथ अर्थ और जर्षोत्सव की शिगा म अथ परिवर्तन हुआ है।

गढ़वाली में अर्थात् अथ व कुछ भाषाशास्त्र उदाहरण मिलते हैं

मुना मून अथ छोटा भाइ, मशानी भू नागा म निरस्वार व गहपतिया द्वागा बुला पनेनू गीरर व सिण प्रयुक्त होता है जिस प्रकार गुजरात और महाराष्ट्र में उत्तरप्रदेश में नोकर व लिए भय्या।

भर्ता पति गढ़वाली भतार विवाहिता का प्रेमी आर।

छोटा, छोरी सामान्यतः उदाहरण विष्णु गढ़वाली में निरस्वार व साथ प्रयुक्त तथा अनाम लक्ष्मी, लक्ष्मी व लिए विशेष रूप प्रयोजनीय।

माइ माई गायन (प्रायः वह जगन जो साधारण धामनाआ म मुक्त न हा पाई हा)।

गढ़वाली में अथ विस्तार व अथिष उदाहरण गह मितत। कुछ पक्ति वाचन सामान्यतः अथ विस्तार हुआ है। उदाहरण व लिए पीछे गगा और लका की उर्ध्व की जा चुका है। उदाहरण गीर व जाकी भी एम हा शब्द हैं। मरुत कौतुक से व्युत्पन्न गढ़वाली वीथीक गन् भवन विस्तृत अथ म प्रयुक्त होता है। इसी शरी प्रकार एक अन्य गन् धामना दिगा को लिया जा सकता है। शिगाए मदा स जागा की प्रतीक रही हैं क्योंकि व अनागत पटनागा नई सम्भावनाआ और नई पटनाआ की सूचन माता गानी है। इसीलिए बाद में सम्भवतः धामना दिगा मयुक्त गन् का अर्थ यहू-येटी हो गया, क्योंकि वे धामना लकर समुरान में (मायक व) दिगाआ स हाकर आती हैं। गढ़वाल व हरिना व वीथ टाकुर गद का प्रयोग कवा क्षत्रिया व लिए नहीं, वरन सभी वर्गों व लिए हाता है। इसी प्रकार कुछ अन्य गद लीजिए

सहोत्र > गजात्र > सोरो गढ़वाली में सजातीय या विरादर के अथ म प्रयुक्त।

दृषाण > विज्ञान मेहनती काम करने वाला।

भृत्य > इतिया दुगर का काम करने वाला कोई भी व्यक्ति चाह वह भृत्य हो या न हो और वक्ति पाना हो न पाता हो।

अथ मनेष की भी अथिष प्रवृत्ति सामान्यतः म नहा मिलती। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

पीपाया चार परा वाला पगु।

पुत्रा पुत्र व समाग पोस्ती गदा।

रुम + गद मफा जड वाल री-उ या साथी।

राग + हुन > गन् रील सास मन्त्रि वा मयत।

दुग्धल > गदं दुदता स्ता।

फुथा गाटी वाला, नेता, अंगुजा ।

फडाली नाटा वाली—त्रिच्छू घास ।

गडपाल नदा वाली, मटलिया ।

हिरण्य साना, हिण प्रयानुमार मूतक के मुह मे रखा सोना ।

सम्बपूछया लम्बी पूछ वाला, एक तारा, एक पक्षी बशेप ।

नित्र गड० दहिन अथवा पत्नी का भाई ।

सयाणो सयाना ग० सयाणो मुलिया ।

पिसान पीसा हुआ, गड० आटा ।

तिवि > गड० तीय क्रिया कम करने का विशेष दिन ।

रनुध्य > मणस पति ।

धनुय > धने १ ऊन धुनन के लिए प्रयुक्त धनुय ।

बत्ति जात्रिका, बित्तो पडिताई ।

गडवाली म जया सा क उगहरण ही अधिन मिलत है

पन पात पातगो, पातडो ज्वातिपिया का पतरा, पतरौ जमपत्री,

पतरौ पृष्ट ।

दास असवण ।

डड, डाड जुमाना, सजा ।

तरास ससृत्त नाम का अथ था हिलना जोर भय से वापना, किन्तु गढ़वाली म उतना अथ मानिक पीडा अथवा कष्ट हा गया है ।

बिया ध्यथा का ससृत्त मूल अथ कपन उत्तेजना मानसिक पीडा । गढ़वाली म त्वक बिया ध्यान जम वाक्या म बिया रोग क, जोर या बिया कख भाई जैसे प्रयोगा म बला क अथ म प्रयुक्त होता है ।

प्रनाग > परगास रहस्य प्रकट करना ।

सार > सेरो, ससृत्त सौर हल और हिल्ला सौर हल और बला स जानी जान वाली भूमि क लिए प्रयुक्त हाता है । नेपाली म सिर खेत के मानिक द्वारा जोती हुई जमीन को कहा जाता है । तलुगु म सौरि का अथ घर की कास्त होना है जिस जमीदार अपन सिर सुरक्षित रखता है किन्तु गढ़वाली म सेरो पानी स सानी जमान का कहत हैं निमम धान उगाया जाता है ।

साट < राटवा छट + ले अर्थी ।

पौन < पवन गुड करन वाचा पविन करन वाला । अस्वलापन गहमूत्र (४५७) म अस्वष्टि के परचात मनक ना अस्थिया क लिए भी पवन गळ का प्रयाग हुआ है । गढ़वाली पौन प्राण और धात्मा क अथ म प्रयुक्त हाता है । तुलनीय

नगर दम द्वार का पातरा ताम पक्षी पौन ।  
ऋतु प्राचीन गड० म महोन क अथ म प्रयुक्त ।

दीदी ससृत्त विधी अथवा विधि उग अविवाहि बडी बहिन का बहन है जिगरी छोटी बहिन विवाहित हो। दीदी अब बवल बडी बहिन का अथ दना है। इसी भाषार पर बडे भाई व लिंग विदा अथवा बादा, बाडू जस गण प्रचलित हुए प्रतीत होने हैं।

सुब ससृत्त शुद्ध अपभ्रंश सुद भूग लगन व अथ म प्रयुक्त हाना है। गढ़वाली म सुद उग 'आत्मिक शुधा अथवा उत्कटा का बहन है' का एक-दूसरे से वियुक्त होने पर मन को दुःख क्रिय रहती है।

दिन सामान्य श्वित व अथ म प्रचलित शब्द हैं किन्तु गढ़वाला म कुछ प्रयाण म इसम मूय का अथ भी व्यजित होना है, जस दिन धार चड़िगे श्वित पवत गितर पर चड गया। इसीका एक रूप दीन दुपहर व अथ म प्रयुक्त हाना है दीन मा भाई—दिन म (अर्थात् दुपहर म) आना।

भातर < पात्र जयवा अभातर येया।

गणून वश्वि साहित्य गणून का अथ पशो मित्रता है। गढ़वाला म इना अथ का विकास गणून शब्द म हुआ है, जिसका अथ गिबार है (वह नाम जो किसी अनुष्ठान म बकर की बलि देने पर घर घर म बाँटा जाता है)।

स्वग > सग चाकाग।

गमन > गणा तारे।

गुप्न > मुक्तो मुलाई दूई सम्भो।

देसी सामान्य अथ देग का, किन्तु गढ़वाली म देसी का अथ है—मदानी भू-भाग का।

माया दया गढ़वाली म प्रम।

प्रभात बल (सुबह)।

शोध > कुरोध मन की पीडा—चल बीराणा

सठ बठी जीता, मन को कुरोध तल्ली म लीला।

धेन ससृत्त पशु धन गढ़वाली म पशु शब्द व अभाव म भी धेन का अथ पशु (पालतू) ही हाता है।

गूण शोध व अनुसार इसका अथ ससृत्त म बाल था। फिर इसका प्रयोग बाल या ऊन स बटे बारे व लिंग होने लगा। गढ़वाली म गूण ऊन तालन की तुला तथा माप के लिए कहत हैं। गोणी (वाता वाला बंदर) गण इसी का मुत्पन्न प्रतीत हाता है।

आतुर ससृत्त म इस शब्द का प्रयाण रोगी के लिए होता था। बाद म यह सादर्य व कारण मानसिक पीडा का प्रतीक बना। गढ़वाली म यह शब्द इसी नय अथ म प्रयुक्त हाता है—आतुरो विपत्ति आतुर बहुत दुखी।

कातर > कायर, गढ़वाला कायरो—कायरो भी होणू दिल दुख में छाटा

करना। हिन्दी कायर से भिन्न अर्थ व्यक्त करता है।

गाछा टहनी, बंद की सहिताबा के पाठ, तथा ऋषिया द्वारा अपन गोत्र तथा शिष्य परम्परा में चलाय नमभेद। गढ़वाली में गाछा बरा विस्तार।

ऋद्ध समृद्ध, जमा किया हुआ अन गढ़वाली रोदो चावल आदि बडिया बनाज।

कठ > कांठो पवत-कठ, गिखर।

बाठी, बाठीण ससृत्त बठ अविवाहित पुरुष। गढ़वाली बांठीण चतुर अथवा सुदर स्त्री।

बधू > बौ भाभी

छविल > छल छाया

भूमि > भुइ नीच

मल > मोळ गोवर

पालि > पाळ नीवाल

सेवा अभिवादन, सेवा भाषान अभिवादन स्वीकार करें।

बाद हिल्ली बांठी, गढ़वाली बांद सुदर स्त्री।

पश्यालो < ससृत्त पग पश्यालो जिसमें देखा जा सके—उजाला।

घर < गह, सामाय अर्थ के अतिरिक्त घर का अर्थ छेद भी, जस—बटन घर, घर करणू छे करना।

शब्दों के पर्याय और अर्थ भेद

गढ़वाली में शब्दों में अनेक पर्याय मिलते हैं। इसका कारण ऐतिहासिक प्रताप होता है। भिन्न भिन्न समय पर गढ़वाल में अनेक जानियाँ प्रवेश करनी रही जो अपने साथ अपना शब्द-समूह भी लेकर आईं। ऐसे पर्यायों का वाक्य गम्य बनाने के लिए प्रारम्भ में उह साथ-साथ प्रयुक्त किया जाता रहा होगा जिसमें वाद में उनका प्रयोग रुद्ध हो गया। उदाहरण के लिए सूद-स्याज चौख वस्त, खद-गुस्तू जैसे सह प्रयुक्त पयाया को लिया जा सकता है। किन्तु यह गढ़वाली की सामाय प्रवृत्ति नहीं है। उसमें पर्यायों में पयाप्त भेदिकरण व दान हात है। एक ही मूल से उदभूत शब्दों में भी अर्थ भेद की यह परम्परा गढ़वाली की बहुत बड़ी विशेषता है। उदाहरण के लिए करम, काम, काय कारज, काज, मनुष्य माणस, मन्स, मणस्यारू, मनसी आदि शब्दों को लिया जा सकता है। मन्स पति के लिए और कारज धार्मिक अनुष्ठान के लिए प्रयुक्त होना है। उसी प्रकार वल > बाछरू, बछडा, किन्तु वल > बंड छोटा बल।

यहाँ कुछ गढ़वाली पयाय अर्थ भेद व साथ प्रस्तुत हैं

१ रोणू रोना, उवसणू तिसकना, पुसकणू जरा आठ खोलत हुए रोना,

घुबरणू फूट फूटकर रोना।

२ हँसणू हसना, निबसणू दौन गिातर हसना इतिम हमी, तिससणू तिस गितासर हसना।

३ बनबणू बौड़णू लोणा घटणू पगुजा का दोलना घुरबणू पगुजा का पूँछ उठाकर सजी स दोलना।

४ पुबयाण जनन की गध बबौड़याण कपने जनन की गध, कुताण कपड जलने की गध, नुजयाण भूनो हुरे चीज की गध।

५ स्थण < स्वामिनी-पत्नी, ब्यारी < व्यवहारिणी (दासी)-पत्नी पुबबधू, भानूबधू जनानी स्त्रा पत्नी बज्याण (काय करने वाली) स्त्री, पत्नी।

६ मय्य चेहरा लाय मुग बियर पिच्छो मुंह।

गढ़वाली म इस प्रकार पर्याया म नी अय भेद का प्रवट करने वाले गण की प्रचुरता है। उमम एकार्यो पर्याया की अपणा समानार्थो पर्याय अधिक है।

### अकाथक्ता

गढ़वाली म ससृत के समान अनेवापक गण अधिक नहीं हैं। ऐसे शब्द अवश्य हैं जो पुरान रुढ अथ के साथ-साथ किसी नवीन अथ में भी प्रयुक्त होने हैं किन्तु उनकी सख्या अधिक नहीं है। जो कुछ गण प्राप्त हाते हैं उनकी अकाथक्ता के पीछे सादृश्य का तत्त्व निहित है। उदाहरण के लिए मिट्टी का दमोटा और विपदा अर्था म प्रयुक्त होता है (तुलनीय हिंदी माहुर जो मधुर शब्द से व्युत्पन्न है)। जड पेन की जड, किसी काम का मुख्य कारण (जसे रोग की जड) तथा सतति के लिए होता है, जैसे, व की जड मर्यान—उसकी जड (सतान) मरे। इसी प्रकार, शाखा गण का विस्तार के अय म भी प्रयुक्त होता है।

परिशिष्ट





## गढ़वाली की उपबोलियाँ

मामा यत जिस भाषा में साहित्य न हो उस बोली कहा जाता है। किन्तु इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। आचार्य किशोरीदास वाजपयी के अनुसार साहित्य हो न हो बहुत-सी मिलती जुलती बोलियाँ का समष्टि का नाम भाषा है। इन्हींलिए वे पर्याप्त साहित्य न होने पर भी बोलियाँ का आधार पर मराठी, गुजराती, राजस्थानी व समान गढ़वाली को भी भाषा मानते हैं।<sup>१</sup> वस्तुतः गढ़वाली के कई भेद मिलते हैं।

श्रीनगर और उसके आस-पास वाली जान वाली गढ़वाली आदश मानी जाती है। इस क्षेत्र में बाहर गढ़वाली बोली के अनकानेक भेद मिलते हैं। प्रियसन ने गढ़वाली का आठ उपबोलियाँ में विभक्त किया है श्रीनगरी, वधाणी, दसौल्या, माऊ कुम्भया नागपुरिया मलाणी, राठी, टिहरियाली।<sup>२</sup> वस इतने अधिक भेद बहुत स्पष्ट नहीं किन्तु छोट-छोटा अंतरा का विभाजन माना जाय ता टिहरी जिले की बोली (टिहरियाली) को और कई उपबोलियाँ में विभक्त किया जाता चाहिए था। उनके मुख्य ये भेद ठहरते हैं—उकनौरी-वाडाहटी, रमाल्या, जौनपुरी-रवाली बडियारगडनी, टिहरियाली (टिहरी नगर के आस पास बोली जान वाली मोजित गढ़वाली)। किन्तु हमारी दृष्टि में इन अधिक विभेद करना युक्ति संगत नहीं है। टिहरा जिले की गढ़वाली के भी भेद ही प्रयाप्त हैं गगाडी और जौनपुरी-रवाली व आधार पर दिए हैं। वास्तव में पहाड़ा में गगा और यमुना के तटा पर भाषा और संस्कृति का विकास का भिन्न रूप में हुआ है। सम्भवतः इनके तटा पर बसने वाले लोग भी भिन्न भिन्न थे। गगा प्रदेश की भाषा यमुना प्रदेश से काफी भेद प्रकट करती है। जौनपुर और रवाई यमुना क्षेत्र में प्यत है। इस प्रदेश की भाषा पर जौनपुरा हिमाचली आदि का प्रभाव अधिक है। यह प्रभाव यमुना के उदगम पर उतना नहीं जितना ३०-३५ मील जाग चलकर है। इसका अतिरिक्त इस प्रदेश की भाषा में संस्कृत शब्दों में ऐसे तत्त्व रूप मिलते हैं जिनका प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलता। उच्चारण में अ > ओ हो जाता है ऐ > ओइ, स > श और

<sup>१</sup> डॉ. किशोरीदास वाजपयी भाषा में भाषा विज्ञान, पृ० ३०२-१०  
<sup>२</sup> प्रियसन लि० सं० ३०, पृ० ६, भाग ४

स>उ। महाप्राण ध्वनियाँ प्रारम्भ म ॥ अल्पप्राण हो जाती हैं। त्रिया क दोषान प्नात रूप कम प्रयाग म आता है, जग यहाँ जाता है—सामान्य गन्वाली म परत गादो, पर खाली जीनपुरा म—दीरी नठ। सहायक त्रिया छ का प्रयोग भी विरल है। यानक सहायक म खाली जीनपुरी म स्वरागत और जागह अवराल का महत्वपूर्ण स्थान है। उगम सम्प्रदाय कारक म रा रा, री विभक्तियाँ प्रयाग म आती हैं।

टिहरी क रमोली तथा उत्तरवागा क्षेत्र म सह प परिवर्तित मितता है। टिहरी के आस पास भूतवास म छी सहायक त्रिया का अपना धी का प्रयोग होता है। उसम समीतात्मक स्वराधा की प्रवृत्ति अधिक है। चन्द्रवन्ती क मुगमान चुरडता धम सहजे म बालत हैं सि लगता है जम गय म हा काइ गात गा रण है। भरदार और बहियारगड क्षेत्र का बाली क्षेत्र म अनुप है किन्तु नरनाग म समीतात्मक सहजा है।

गन्वाल की उपवातिया क उच्चारण म पयान्त अन्तर दिखाने दता है। कुमाऊँ और गन्वाल के सीमावर्ती क्षेत्र क लोग (जिह् दोमानी < ग्गातिर कहत हैं) एक मिली तुली भाषा बालत हैं। माक कुमय्याँ पर कुमाऊँना का प्रभाव अधिक है।

पीडी गन्वाल की उपवातियों म ए ध्वनियाया हाजाता है देस धाम और धो या—घोडी प्वाडी। उमा प्रसार एण रूप म उच्चारित होता है गणीक गणीक। मध्यग र प्राय गमीकृत हाजाता है मारला मालता। करण बल्ला, करणू वन्नु। सहायक त्रिया के रूप म तो का प्रयोग भी मिलता है। त्रिया प्राय एकारात हो जाती है गन गन, तटीन तडीने। ए ध्वनि धा, जो श्र या जा रूप म मिलती हैं घँर, धार धार घँर, बडा वोंडा। यही नहीं उलाणा गति म दीघ ध्वनिया की प्रवृत्ति ह्रस्व की ओर मिलती है जम जमाना जमना। उसके विपरीत वही ह्रस्व ध्वनियाँ दीघ हाजाती हैं छयो=छायो गयो गाय, कर—काय। टिहरी क श्रौणू बुसौणू आदि रूप पीडी क्षेत्र म श्राणू बुलाणू जाति हो जात हैं। कर्ता का परसग न ल रूप म मिलता है और कम या सम्प्रदाय म सुणी परसग आता है जा कभी गणी भी होजाता है। सबनाम में एकाध क्षेत्र का छाडकर भी रूप म प्रयुक्त होता है। ये विशेषताएँ टिहरी गडवाल की उपवातिया म नहीं हैं।

गडवाली बाली के इन जवातर भदा के कारण ऐतिहासिक और भौगोलिक दाना रह हैं यातायात की बाधा, दुर्भेद्य पवत और नदिया क घेर म गन्वाल अनक छाने भागा मे बटने को बाध्य रहा है। फलत उनम भाषा का विनास स्वतंत्र रूप से हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक क्षेत्र की बोला मे कुछ स्थानीय विशेषताएँ ऐसी भी मिलती हैं कि यह मानन को जी हाता है कि उन क्षेत्र के

बसत वाले जो विभिन्न जातियों के रूप में जाए हंगे। ऐसा प्रतीत होना है कि गडवाल में कई जातियाँ आदि और बसती और गडवाली भाषा का उद्गम अपने उच्चारण में टालने की जाति की। इनमें गुजर राग, कक, किंगन कान भील नाग आदि मुख्य रहे हंगे। और यदि यह माना जाय कि मध्यकाल में भी जनक जातियाँ राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात आदि स्थानों से उद्भव हुईं तो मानना पड़ेगा कि वे भी अपनी भाषाओं की प्रवृत्तियाँ उबर आई हंगी।

यह गडवाल का उपजातियाँ के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जो 'निम्नलिखित' में जायें 'अडिया' (खिन्ड ६, भाग ४) में उद्धृत किए जा चुके हैं।

**श्रीनगरी** के जातियों का द्वी नामाच्छेपण ऊँमान छटा मौनान अगगा बाबाजी मा बोले है बाबा जो, विरमन मान मेरो जो हिम्मा छ मैं दे देवा। तब वन अपनी विरमन बाट देवे।

**गटी** के मनन का द्वी नाम छया। ऊँमान लीनन बाबू मणी वान वि याग बाबू का कुछ चात्र वस्तु नानन बाटा सी देवे। तब वन अपनी जा कुछ चीज छर बाट देवे।

**पशाणी** के जातियों का द्वि छिनीडी छिया। उनू मधे नाना छिवाडे। न अपना बुवा जा मू बोले कि हे बुवा जो माल जमवाव में मरी बाट म दिया। तब वन जमवाव बागी दिने।

**दसौल्या** कई जातियों का दुई लडीव छया। तनू मा जाणिना न बोले हे बुवा मान माणन की जा मेरा बाटा होय सा मैं देवा। वका गानू न बाँटे दिने।

**नागपुरिया** के वरत का दुई लीडा छया। तौ मधे लडा लीडान बुवा ले बोले हे बुवा, जा मरा बाटो माल को मा म दे। तब बुवान के कण्ठी बाँटे दे दिने।

**सल्लाणी** के मणा का दुई मौना छया। ऊँ मा काणसान अपना बुवा मा बाल्मी, हे बुवा जा माल ताल मा जु मरा बाँटे हार मो मी दी देवा। तब वन ऊँ का चीज अपना माल-माल बाटा दिने।

**टिहरियाली** एक मणा का द्वी नामाच्छेपण। ऊँमान कणमान अपना बुवा मा बोले कि हे बाबाजी, जो विरमन का बाटा मेरो छ म दी छ। तब वन विरमन ऊँ मणा बागी दिने।

**लौहव्या** एक मण का द्वी नाम छया। उनू छटा लीडल अपना बुवा मा बोले कि हे बुवा जा अपना भरता बाट मान जा मेरो बाँटे हो सा मी दे दे। तब वन अपना जमान बाँटा दिने।

**मौन कुर्मिया** के मम का दुई वेत्ता छिया। उनो मा कडिसा ले बाबू छी बोले जो बाबू सम्पति या मेरी जो हकीत छ म मणी मैं सणी देवा तब वनो उनो मणी अपना सम्पति बाँट दे छ।

।हदी किमी आदमी क ता लडके थे । उम से छोटे लडके न अपने पिता से कहा कि ह पिता जी, विरागनम मरा जा हिम्मा है, वह मुझे दे दो । तब उमन अपनी जायदाद बाँट दी ।

प्रियसन द्वारा मकलित कुछ उद्धरण मुझे उच्चारण की दृष्टि से ठीक तरह से अंकित नहीं प्रतीत होत । उच्चारण की दृष्टि में नाचे क ये उद्धरण दसनीय हैं ।<sup>१</sup>

**टिहरी श्रीनगरी** एक बगल मा द्वी नामी जोरा छ । एक पूरव का बोगा मा अर गोरु पच्छिम का काण मा रदो छी । एव को नऊँ सुणीक दोमरा पर जनि जा नग गाली छइ । एव का डेरा म दोसरा का डेरा जाणा मा बार बरम का याटा हिटणो पन्ने छी ।

**रवाई जौनपुरी** यक् समय दू बेग्या बाँवना बीर हीं । यक् पूरव छाडू रो । हैक् पच्छिम का छोटे रो । यक्ता बु नौ सुणी, हैक् जङ्गी पुक्का जाऊ । यक्ता का दार सि हैक्ता का दार जाण मु यक् जुग बु वाटू हिटण पडो ।

**चौदफोटी सलाणी** एक बन मा तुई भारी नामी भइ छाप । एक पूरव मा हैक पच्छिम या रद छायो । एव को नाऊ सुणी हैक् पुनेद जाद छया । एव का धार मा हैक्ता धार जाण मा बारा साल को वाटू हिटणू पडदो छायो ।

दमम भी टिहरी (नगर क आम पाम) की बोली का रूप नहीं जाया है जिनम छ क स्थान पर भूत म थ त्रिधा का प्रयोग होता है ।

भाषा क उच्चारण की नजाकत लहज और गली की दृष्टि से ये उदाहरण विनाद की सामग्री प्रस्तुत करते हैं ।<sup>२</sup>

**उधाणी** कुण कति हुयार ह्वगे ।

**सलाणी** मिल गाल दादु र, ब्वारा पर कपयार (कप्याण) चढि ग्याया, दमक बजाति डौरो ।

**जौनपुरी** को की जा रे म ता । उडि और ।

**बनारी श्रीनगरी** नीना का बाबा जी पौ भर बासमती लाई छया । आज बी पकाए । द्वी फल सौन ग्याइने, द्वी मन थोडा नीयाळून भी खन । बाकी सारी डगची बचा छ ।

**टिहरियाली नजारी** अलो गल्या, मैं चल्या ज र थो । निगान का घुटना उत्तार पर लचपच ग था पर चलण मा मजा ऐ रई थो ।

**रागसी** खानन लाकडी का झाड बाला लाकळ का तळ खाकळ मार । (क > ख) ।

रवाली का बहुगुणा जी ने जो उदाहरण दिया है वह रमोली उत्तरभासी की वाली क लिए ठीक पडता है रवाई की नहीं । रमोली की वाली का एक उदाहरण

<sup>१</sup> राहुत माट्ट्यायन दिनापत्र परिचय (१) गङ्गान, पृ० २ ८

<sup>२</sup> चक्रधर गुरुगुणा गन्वाला स हित्य की भूमिका पृ० ६१

लीजिए

बल हैं तो बाका पहले हीदो हीदो जाण, तब हुरु इ हुरु, तब हडकी हडकी ।  
हैं तो याळी, तु नादी बह नी । (स > ह)

एक ही शब्द के उच्चारण और रूप में गढ़वाली की विभिन्न उपबोलियों में  
अन्तर के मनोरञ्जक उदाहरण मिलते हैं । यहाँ काले टाइप से ऐसे शब्दों की ओर  
दिगित किया गया है । कोष्ठका में अत्यन्त प्रयुक्त रूप लिए जा रहे हैं ।

१ जो जस देने (दान, दया) धरती माता ।  
२ क्या छया (छवा छा, छन) बुवा जी निद मुनिद ।

३ दे (दी) देवा (दा) बावा जी क्या को दान ।  
४ रमासी बवे (कु, को) फूल कविलास ।

५ चौपाती ह्वे ग्याय (ग गए) न डालो पया जामी ।  
६ लुकारी ब्वरियान चौ नाळी कूटय-ने (कूटिन) ।

७ भोरलि पछी ब्वे, वासण लने (लन, लगिन) ।  
८ परगट ह्व जन (जान जाया, जायन) पाच पडऊँ ।

९ चद्रागढ मा रद (रौं रं राद) ओ सूजु मुनार ।  
१० जा भुलि स्वारी मयारी आया छी (छन) ।

११ देवरा लुकदोन (लुकदान लुकदा, लुकदन) ।  
१२ में (मी, मजि) बोलणू (बोनू, बोळनू) छौँ ।

१३ मुडळि खुरमग-वे (बोई बई) मजुरी क क की (कक, करीक) ।  
१४ में घौर (घँर घार) गी (गयू) ।

१५ तुम मनली छ (छा छयाँ छन) हम पशु छौँ (छवा, छाँ) ।  
१६ तुम जाणा होला (ह्वला ह्वाला, ह्वल्या) ।  
१७ सरी (सडी सरा) रात डौर (डँर, डौर) लगणी र (राय) ।

१८ मेरो (म्यारा म्यरो) भ छी आयू ।  
१९ उ घर ज र घान (छा) में भी गल थौ ।

२० बेल (ब न) गौ त घाम देये (दिन) ।  
२१ मीन त्वारा ड्यारा नी आणू (औण) ।

२२ त बोज (वान-वँन) म्वी घरदे ।  
आग के परिशिष्ट में हम इन उपबोलियों के साहित्यिक रूपा की चयनिका

दे रहे रहे हैं । गढ़वाली में साहित्य रचना टिहरी श्रीनगरी में ही हुई है । इस भाषा  
का साहित्यिक रूप मिश्रित है । वास्तव में टिहरी (नगर) और श्रीनगर की गढ़वाली  
में कुछेक प्रिया रूपा के अतिरिक्त कोई बड़ा भेद नहीं है ।

## चयनिका

रवाँई जोनपुरी

- (१) छोड दे धोर' राभी ते इटणो', बोडरी' कात्ता चोर  
बाडी' जिगुनी तरी जाली मेरअँ लाभी छोदे धोर ।
- (२) तेरोस मेरोसँ गौगिय' लोन्ही धोरैर नाता  
पारो चात्रिय टागित बीच पठ दइत' गाँसा ।  
सापिर' नाद मुन्नी पारु दउले काटी  
साऊ' चादथ दोट ताऊ' चाइधी निएरी बाटी' १।

—गढ़वाली लोन्गीत' १

- (३) राति रण सुति मिया बिजोनी जामी  
पर गलमुती हार गूग रवा विवाग ।  
तनी पाणी पणार दस गुना वा मिग  
सिया लागी बडरी बार, सिया जाबी नी आई ।  
तु जा लखण आई, क्या लागी बडरी बार  
की भनी ताम घनूडी, की ताडी गलमती हार ।  
तबरे की सिया पीछी आद राम लाद बाल  
'पाणिक गुना मिग, एने जागिय आण ।  
'तरा पूचे धध गुना वा मिग न हुद ।  
'कस बताऊल साबी देस आपनी आली ।  
जागि गुना मिग ताऊँल भारवाडी पाग,  
मुख आंगूडी घाघुरी, टोपली लखणार भाग ।

—सीता हरण'

१ मार, २ छिटण' = दौरा ४ बाजा ५ हाद, ६ रुगी, ७ दौरय, = सौध  
का, ८ मै, ९ तू ११ या ।

१२ मरो पुस्तक 'गढ़वा' लावगान' स उद्धृत ।

१३ मरो पुस्तक 'गढ़वा'नी लाव गाथा' (मास्तर प्रेस देहरादून) पृ० १०७





## गुदेड नीनी

बोह्रि बोह्रि ऐगी ब्व दग पूप मना ।  
 गो की बटी—ब्वारि ब्व, मतु आई गना ।  
 मतुहा बूलानि ब्वे घोई होलि जौकी,  
 मरि जीबूडी मा ब्व, बुयहि-सी लौकी ।  
 मत्वडो बासलि ब्व टाडपु चत मासऽ  
 मोडि गन डालि ब्व फूलिगे बुरांमऽ ।  
 लाल बणी होनी ब्व, बाफू की डाळी,  
 लाग छाण होला ब्व लोण राळी राळी ।  
 ल्हानि बूरो गाडी ब्व गों की बेटी ब्वारी  
 हरि मरीं होली ब्व, गऊ जो की रारी ।  
 मतु ऐ ग होलि ब्व दीदी भुलि गों की  
 मरी जीबूडी मा ब्व बुयहि-सी लौकी ।  
 स्वामी जी मदानी ब्व परदेग रने  
 साय)का दगहया ब्व घर आई गने ।  
 ऊँबू प्यारो ह्वगी ब्व बिन्नेसू का बासऽ  
 वाटो देसी-दमी ब्व गन स्नि-मास ।  
 बाहुली लगली ब्व आग भभराती,  
 या त घर आला ब्व या त चिट्टी आली ।  
 गाळी देदी सामु ब्व न बाबू की भारी,  
 बामी छाण देदी ब्व बोली मारी मारी ।  
 बादी तेरो बाबू ब्व जो रप्या नि छादा  
 मेरा लाडा प्यारो ब्व बिन्नेसू नी जांदो ।  
 बावान बणाये ब्व इनि, गति मेरी,  
 ज्वानि उडिगे ब्वै, वाटो हेरी हेरी ।  
 चिठी भी नी आई ब्व तव बटी तौकी  
 मेरी जिबुडी मा ब्व, बुयडी सी लौकी ।'

गुदरू का नाक जिटे सिंगाणा की धारी छोडिा वेकी मुख बकी भगुली सब  
 मला छन । गुदरू की माँ अलगसी खलचट और लमडेर छ । भिनर देखादी  
 बोलत मल बखरा रद होला । मळो खणेक घुळपट होयू छ । भितर तब बनी चीज  
 ह्य बवा लय । सारा भितर तब मार घिचर होई रये । भांडा बूडा ठोवरियू मा

लमहणा रत्न । ताज पागी की खत—एक माणी पकौणू वू निनालन त द्वी माणी  
खतई जानन अर जु क डूम डुकता भिवलाई मणी दणा व बोना त हर्षा ।<sup>१</sup>

—गडवाली ठाट

### म्योली<sup>१</sup>

क गौ मा एक छोटी सी मोड रन्दी छ । व मा सिरप तीन मनगी रद छ ।  
एक बुडीड एक वाकी नौनी अर एक बीकी ब्वारी । सवा मिलीक धाण करदा  
छा जर मेता पानी करीक पेट पाल्द छ । बुडीड जसकदी छ । सो खती को सारा  
काम धदा बीका नौनी अर ब्वारी ही करदी छ । वा दुय्य अवा इस्पेइ छ जर जती  
एकी उमर की भी हाली । ब्वारी भीतइ भोली जर कामकटू छ । सामू आच्छी  
छ पर चारी फेर भी डरी-भरीक ही रदी छ । नौमी अवा यी नी हाय छी ।  
भडा का लाड मा पालेणी छ । यान बीका सुभौड मा वेपिकी छ, कुछ वा चुन-  
बुला अर लपरवा भी ह्वगी छ ।

एका तिन ऊकी द छई । ऊन पल त ग्या का बंडा खल्याण मा बखेरीन । बल्दू  
की ब्वी जाडी मेलीन अर ऊ का गिचबौ पर मुक्ता बालीक रिगौण ल मन । तब-  
रक तिन मुड मा ए गय । नाज माडणक भीत छयो । जेट वा धाम मा बल्द घामन  
खलाण ल मन जर पसिना से खतपत ह्व गन । तब जक त बुडीड भर आय अर  
वीन बल्द मेलण क बोले । दुमी न बल्द खोलीन । बल्द लम्बी लम्बी जीव गाडीक  
खलाण लगन । बुडडीन बोने यू तीस लगीग । पाणी पिलौणक ती जावा । पाणी  
जरा दूर छी अर नणद मौज कभी छुर्यौ मा ही लगी जान्नी छ यान जान कि  
बलम न हा बुडडीन को लमायन मेरो आज भीत आच्छी खाणा छ वणायू । जु  
आपणी बल्दू का जोडी त पली पाणी पिलक लोली, बी मैं तस्मइ झूलो खाणक  
न ।

मैन खाण, नणद बाल । होए भोज रिमाणे । वीन मरकवात्या बल्द को तरी  
वी पर हरे अर फेर आपणा बल्द सरबट भगन । नणद चिरडेणे । वीन भी आपणी  
बल्दू की जोडी तेजी मे हाणन लगाय । ऊँ पर छट्टी बरखन पर भोज का बल्द  
सरक कछी पीछी ग छा । वू सणी छीपी सकणो बी त असभी मालम पडे । पाणी  
को तान गौ का पत्या पाचा पर छया । नणद त गुस्ता जाय बुद्ध त अफू पर, कुछ  
बल्दू पर जर सबस जान गुस्ता की आपणी भोज पर आये । वीन सोच तस्मइ  
त अब वाई मित्ण । तब वीन जु उठाय अर आपणा बल्द जदवाट बिटी ही बीडाड  
दिनोन अर सनी सीमा ही खुटा पर वानी दिनीन ।

१ 'पगहा' की के लख गन्वला साहित्य' म उद्धृत और स 'नन्द कुकरना द्वारा लिखित ।

२ मरी पुनः 'आजात राजा द पना' (मरना साहित्य नदल द्वारा प्रकाशित) में उद्धृत  
लाक का ।

भजन तब गीत गावासाँ । पाछु द्योगे भी गावणा बन्दू लात आय । गावु तमम का कटारा गीती का जगाडी रम धर द्यारी मू छेँदना धर । शरा छेँदना का गाव उन्दू पूलगे छ भर वो उन्दू बीद छी । गीत कवा तसमद का कटोरा का गाव जागो छी जर कवी उन्दू त पाणी त पिनाया का । पर उन्दू का बीन गिजक गी कये ।

उण्ड का बरत लीमा तडपण ल गन । राणा ग्राण का पाछु वा त घ्यात आय । बीन बीमा बाल उण्ड तममइ त तिन त ही मान । जयवन बन्दू त पाणी त नियाल । भाज जर नणद गीगाला मा पाछीत पर दण्ड क्या छन सि एक बल्द सीमा गरयूँ छ । बन्दू व दम तीया तडपणू छ । कवी जीपू ना जीसू छ । घाण्ड उर मा कही माँण वात ह्वक तमड्याँगी ह्य गय । उना बानदा कि मरदी दी वन नण्ड त गराण तिन जा तू पछा ह्व जा जर मेरी ही तरी तडफगी रै ।

वा मोना का पाँन तव पछी मा पडी गन । तबरी बिट या व बल्द की तरी नीसी रणे । जर जट त दाकरा मा सरण दातू पाणी द की बानी मा मरग मू पाणी मांगदी रद । पिवी को पाणी वा नी पनी । व मा बीन बल्द का ल्व देधेण ।

### सलाणी

क्या च द्यारी नार कटीं जु गरम घा । जमनो बी देखणी छ तयू । तू वि गवार इ रम । जर मा स्वीकू या बरतयूँ की कित्तार ल्हयी च । अब घाणा वनी एकी रोज इ कित्तार पड़ा कर ।

द गरम सुलार त ह्व गाया । काम काज बेकू छ नीच । यू भाँगि ल दी दीण वन त्व धीन भोरी ल्या । हे छोरी तू ल्हणी छई ।

--भारी भूल'

- हरसिंह पत्तिजी माराज प्रश्न करा ।  
 बदराज अर वठ त सइ । सया न सौंती, भकम प्रश्न करा । कर्मान होये इतना बवराज ?  
 हरसिंह नती तुम प्रश्न त करा । मिन जि वन देण त प्रश्न क्याकू ? आज मिन द्वी चार की ल्हसि कन ।  
 बदराज ले एक एक गानी दिन मा चार बगन । एक लाट्या ठडू पाणा पे जर टप से ज ।  
 हरसिंह लेवा गुरजा चकपो त करा ।  
 बदराज अछू यार अछू । इनि जि छई च त्व पर त (रेखडा गावण) जा

भितर बटि आग त मागी नो त सजुला पर । क्या जि होय य आज ।  
बलरौ का हजगार च य को ।

हरमिह (आइक) त बोना ?  
बंदराज बोलनू क्या च बटाराम, चौपाया लापता ह्यु च । अरे तिन नरसिंह  
का खाइ बि त नि छो क्य बट ।

(तुलसीराम को प्रवेश)

तुलसी बडा जो, परनाम करडू ।  
बंदराज ओहा, चिरजीव रमा वेटा क्य औणू होय ।  
तुलसी यहा त व्याले अयू ।  
बंदराज क्या काय करदयी दिल्ली मा ?  
तुलसी लिली का सवमे बडो दपतर च जा वे मा छीं ।  
बंदराज मि समभी मौ वेटा ।

(परमानंद को प्रवेश)

परमा हे बंदराज, भनी मि त भोरडू छऊ ।  
बंदराज अर हू क्या च ? कखी पी पीणाई भाज भात मा ।  
परमा भोज भात त कवि नी गौं, पर व्याले रात जरा गली हाई गै । बत्तो-  
मेक राट्टि ख गौं ।

खाइ लापता\*

## टिहरियाली

क जानि कु विजणू उओ होइ जमी की मगन करी-बाई की सणी सजग्यौणर  
चरनुर पर लग्या रदान । ई बिजाखदारा वी का लिखवार होन्दान । लिखवार  
अपणी भासा सणी सब ति पली हचण नी देइ केन कि उ तिल मा जनता की गल  
रडू अर जनता सणी अपणी गन हिटाळणू रद । जु लिखवार इनु नि बडू उ जनता  
सी विगन्यू कर रडू । पर जनता मणी बा अळखू चन्दु वि उ वी इना इद्याळा  
लिखवार का फड विटिन कोयगौर न बणू । इतान त इनु होन्दू कि लिखवार  
लिखू अर लिखू लाखू फड पड्या । तब इन्नी त होण कि वी जाति का मादत  
अम सकणू त क्य पर बणनू भी धागळ मा पड जानू । हम सणा अपणी भासा  
लिखवार मणी कवरयाणू नी होतू ।

—यामचन्द नगी

तू रांमू रांसू गौं का लख ना थई । गमू गाड भू चन । दख ब पाणि मा  
कनी छ तेरी मुगडा ।

त तव बी द गगाळ फाऊ । इ माचू गौं का सारा पिथीं का पिरडी-फारडी

\* ललित मोहन भण्डारण क सुप्रसिद्ध कविता 'खाइ लापता' स काश्चित् रूप मे उद्धृत ।

महीन तत्र गीता त तत्रभाषि । पाछ च्चारी भी तारणा व  
गागुत तममट को कनारा गीनी का जगाडी रण अर च्चारी भू र्छ  
छद्देग का गात उन्नु पृत्त छ अर या उन्नु औद छी । या त क  
पटारा का यान जात छी अर वरी वद त पाणी त विनापा  
पी वीन गिनती कर ।

रण का व लीमा तरण ल गत । गाना गण का पा  
धीत थीमा बाल नारा तसमइ त तिन त हा यान । अर  
न्याल । भाज अर नण गीगाला मा पौछीन पर दण  
तीमा मरपु छ । दण त वग्न तीसा तरणपू छा । व  
याण दर मा वकी भाषि तित हनक तवडेमाडी ह  
मरदी त वन नण त गराप तिन जा गू पछी हन  
र ।

॥ नाना का पान तत्र पछी मा पठी गन । त  
तामी रन् । अर जट त दोकरा मा तरम दा  
पाणी मांगती रन् । पिथी को पाणी वा नी  
देखे ।

### मलाणी

क्या च च्चारी नान वनी जु दारम धा ।  
गवार इ रगे । अर या खीकू या बग्खड प  
एकी रोज इ कितान पड़ा कर ।

द गरम गुलार त ह्व गाया । का  
बुन त्व घीडा भीरी ह्या । हे छीरा ।

हरसिंह पडितनी माराज, प्रश्न

बदराज अरे बठ न सइ । गया  
दवराट ?

हरसिंह अथा तुम प्रश्न त ग  
द्वी चार की लुग

बदराज ले एव एक गान।  
टप मे ज ।

हरसिंह दन्वा गुग्जा

बदराज अच्छ मार ज

किसमत ही कब छ कि तुमारा 'याल की 'वारी बण सकी । मूसा खुशी मा पर-  
पून ह्व गय । 'बालन लगे क्या बात छ बालणी बुरेडी रौनेली । तुमने बडो छ  
को ? कुग्डीन बोने में त कुछ भीनी छी । गाड में ती भी बडो छ । वा भरो सारो  
पाणी ली लेदी । मु तुम ती म जावा ।

मूसा तत्र गाड आज न । ती मा भी वन वाई बात बोले गाडन भी वाइ अला-  
चारी दत्ताय भेरो त जरमद ही ममोदर की गल व्यो ह्वगे थयो । अर मेरी गल  
बची व्यी करी करला नी क्या ? मैं पाणार्ड पाणी छी । जल नी जादू तरती जमीन  
त आपडा गल बााश्क लि जाई । 'नोव में सणी गातीना भी कर देदा । मैं ऊकू  
बुद्ध नी कर सकदी । नुम रज्जा म केँ ती जाइ । वो आपडी माली तुमारा 'याल  
गन वेवई दलो ।

मूसान धौण ढगइयाये । तन सोचे, रज्जा की 'यानी गन ही 'याल को व्यो  
ठीक रलो । तत्र सब व सी डरला । अर वा त्रिराला तै सूली पर चड दलू । पर फेर  
तन भाचे रज्जा त नीं नीं का होया कद । जसली राजत मनी कर दी । मत्री का  
न्याना मागण म पडा छ । राज काज म भी हात रलो अर रज्जा सा भी जाणकी  
पछाणकी ह्व जाला । मत्री का मर जाण पर मैं आपडा 'याल त मत्री बणाइ  
चूला । जत्र तन मत्री म जाणा हा ठीन समजे । वाटा मा कइ गाणी करदा वो त  
का द्वार पर गय अर मिल्द ही बोले मत्री जा मैं जवणा 'याल तै तेरी नीनी  
मागण आर्षी । व्या का पाछ भरा 'याल तै ही तुम सणी मत्री बणौण पडलू ।

मरीन बोले—क्या छ बोलणू ? वो गुस्सा मा नाव पैगो ह्व गए बडो  
आपो मरी नीनी मागण वाला, मत्री बण वाला । हार बख गया बल मूसा का  
छोरा दिवान होया ।

मूसा मारण त वन गुत्सा मा डडा उठाय । मूसा डरे अर भागीक बची गये ।  
भागदा भागदो वा धर पौडे । बकी मूमी व त जग्वालणी थ । मूसा तै भागी जीइ  
दक्षि तन पूछे क्या ह्व ? मूसा सणी व वगव वाच नी निकली ।

बै दिन त्रिटा मूमी कक्षा ब्वारी मागण नी गय अर अपडा नीना का व्या भी  
सैन न मूसा की 'याली गल ही कर दिन ।

घोदान और जरा सी पाण। पेण मा यू का सूटा तडा टुटी जाँन।

अवारी घाग काटण थी। बजारिया का नौना त बुडद बुटत तलद रान  
पण सग्या।<sup>१</sup>

—अध पतन

मूमा का नौना की व्थी<sup>२</sup>

एक मूसी थी। तकी एक नियाल थी। जबार स्यो ता नो ही थी तजारिटा  
ही मूसा सणी तका व्थी का चित्ता हूग थ। तकी तिरादगी मंजन भौन सा मूसा  
त तणी याली दणक राती था। पर स्या जनुरना रिन्ना नी चाँ थी। त मा  
बड थ। स्यो अफू तइ और ती बडा समभद थी जर ऊँ ती खाणी व्थाणी मा ऐयर  
दणो चाँ थी। इत स्या क आच्छा जागा की तोज मा थी।

रादी का यनी तोचदू रण थी कि तना नियाल त कन्नी उच्चा घर का द्वारा  
बन मिलला। वकी मूसी व मा यनी बोतनी थ कि भग यान त तोन तनी तगा  
त्याया। एका तिन वाका ही बोल्यान मूमा त र्यान जाय कि तीन म ही कना न  
चल्या जाव। अर दो जु उठे वी मुग न ग। तिनन त मणी बठाय रून सार-  
सातर कर, अर तव औण की नौनू पूछे। मूसान वान चाँन, त्व चुती वाँ कवी  
ना। मैं त्व त अपना यान की गल त्रिबोणक आयू। जोन हैम। सुभौ की वा  
निमाणी थ अर पीणा पर रसाणू भा वीन टीक नी समज यान वात नी वान जाका  
अर मान भी र जावो, वीन व तइ बोल म तुमारी वात माणालनी मूमा ठाकुर  
पर तुम जाणदा ही कि मैं कवी मरी जान्दी कवी ज्यूदी ह्व जादू। मना भर मा मैं  
पद्र राज बेमार ही रदू। मूसीक त काँडो ह्व जादू पिग्ली पड जादू। तिन रात  
चलणी रदू। अगास मा भरो डेरा छ। घरती मा हिटण खातर मैं सुटा ही नान  
अर न वुतन ल पण्डा दान छ।

मूसान बोल ताँ की कवी वात नी। तुम बठयी रया दी। मैं त तुम व्वारी  
बणानू चाँदू। तुम खानदाती छन। लोयू मा तुमारी हाम छ।

जानीन बोन मैं त कुछ भी नी छी। मैं चुन भी बडी मेरी वण कुरेणी छ।  
वा मैं चुली गोरी नी छ पर अगास अर पिर्षी दुया जगा तीको राज छ। दखा न,  
वा मैं मणी भी डक ददी। तुम वी म क्या नी ताँ ?

मूसो वखन निराशेक उठे अर कुरेडी का घोर गए। वी म भी व बाल वीन  
मैं सणी तुमारी वणन भेजे। मैं तुमू अपनी वारी वणीणु चाँदू। कुरेडी रसाणे।  
बिजुली सी चौके। पर फेर तन माचे कखी जोन दीदान ठटटा त न करे हा। तव  
कुछ तौको गुम्सा घमेणे अर बालन लगे हाँ, रिस्ता त बुरो नी छ पर मेरी इनी

१ अर पतन भगवता प्रसाद पांवर।।

२ 'छाका। दानी' पानी में मक्खिन लोक कथा।

बिसमत ही कम छ कि तुमारा याल की ब्वारी बण सकीं । मूसो खुसी मा पर-  
पून हूँ गय । 'बोलन लगे क्या बात छ बोलणी कुरेडो रीतली । तुमसे बडो छ  
को ? कुरडीन बान में त कुछ भी नी छी । गाड में ती भी बडी छ । वा मेरा सारा  
पाणी ली लन्नी । सु तुम ती म जाव ।

मूमा तत्र गाड ओज न । ती मा नी वन वाई बात बोले गाडन भी वाइ अला  
चारा दखाय मेने त जरमद ही समोदर की गैल ब्यो हूँगे थयो । अर मरी गल  
कवी 'प्री करी करला भा क्या ? मैं पाणीइ पाणी छीं । जख भी जाडू तखी जमीन  
त आपण गल बगादक लि जाडू । लाक में सणी गान्नीला भी कर देदा । मैं ऊकू  
बुछ नी कर सकनी । नुम रज्जा म के नी जाण । वो आपडी 'याली तुमारा याल  
गल उवई लो ।

मूसान धीण टगडयावे । तन साच रज्जा की 'याली गन ही याल को 'प्री  
ठाक रलो । तव सब व सी डरला । अर वा बिराला त मूली पर चढ देलू । पर फेर  
तन साच रज्जा त नीं नीं का होया कद । असली राज त मत्री कर दो । मत्री का  
न्याना माण म फण छ । राज काज म भी हात रलो अर रज्जा सी भी जाणकी  
पछापवा हूँ जाली । मत्री का मर जाण पर मैं आपडा याल त मत्री बणाइ  
बूला । अब तन मत्री म जाणो ही ठीक समजे । बाटा मा कइ गाणी करदा वा त  
का द्वार पर गये अर मिल् ही वाले मत्री जा मैं अपना याल त तरी नौनी  
मागण आयीं । ब्या का पाछ मरा यान त ही तुम सणी मत्री बणीग पडलू ।  
मत्रीन बाल—क्या छ बोलणू ? यो गुस्मा मा लाल पिंला हूँ गए बडो  
भाया मरी नौनी मांगण वाला मत्री बणण वाला । हार कख गया बल मूसा का  
छारा दिवान हाया ।

मूसा मारण त वन गुस्ता मा डडा उठाय । मूसा डरे अर भागीक बची गये ।  
भागला भादा वो घर पोछे । वकी मूसी व त जग्वालणी थ । मूसा तें भागी अरि  
दबि तन पूछे क्या हूँ ? मूसा सणी व वगत वाच नी निकली ।  
व दिन बिटी मूसा कवी ब्वारी मांगण नी गय अर अपडा नौना को ब्यो नी  
तन क मूसा का याली गल ही कर दिने ।



## लिपि सकेत

।

अ उन्नामान स्वर, ह्रस्व उच्चारण

अँ अथ विवत पदच ह्रस्व स्वर

अऽ विलम्बित स्वर

अँ अथ विवत पदच दाध स्वर

इ पुगपुगाहट वाला इ

उ पुमपुगाहट वाला उ

ए अथ सवत अग्र ह्रस्व स्वर

ँ अथ विवत अग्र ह्रस्व स्वर

ओ अथ विवत ह्रस्व स्वर

ओ अथ विवत दीध स्वर

ळ मूढ य पार्थिवक घाप अल्पप्राण

\* कल्पित रूप

> उत्पन्न करता है

< उत्पन्न हुआ है।

' स्वराधान

## कुछ प्रमुख सहायक ग्रन्थ

- १ राहुल साह्यायन हिमालय परिचय (१)
- २ राहुल साह्यायन ऋग्वेदिक भाषा
- ३ त्रिमन लिखिस्टिक मर्वे ऑव इटिया
- ४ पिगल (अनुवाक डॉ० हमचद्र जागी) प्राकृत भाषाका का व्याकरण
- ५ डॉ० सुनीतिशुमार चाटुज्या भारतीय भाषाभाषा और हिन्दी
- ६ डॉ० धीरन्द्र वमा हिन्दी भाषा का इतिहास
- ७ डॉ० धारन्द्र वमा ब्रज भाषा
- ८ डा० नामवर सिंह हिन्दी क विकास म अपभ्रग का याग
- ९ टनर नपाता न्कानरी
- १० डा० भानागर व्याम नसूत का भाषा गान्धीय जन्मयन
- ११ डा० वावूराम सक्कना इवान्पूगन वावजवधी
- १२ डा० मुनानिशुमार चाटुज्या रातन्वानी भाषा
- १३ डा० दयानन्द श्रीवास्तव नेपाली लम्बज इटम हिन्दी ऐण्ड इवनपमण्ड
- १४ नरन्द्रनाथ प्राकृत भाषाका का रूप दान
- १५ तस्मीतारी (अनवाक डा० नामवरसिंह) पुरानी राजस्थानी
- १६ डॉ० जिनन्द्र श्रीवास्तव अपभ्रग भाषा का अध्ययन
- १७ डॉ० गिवप्रमा मिह मूरपूव ब्रजभाषा और उत्तका साहित्य
- १८ डा० गिवप्रमा मिह कीर्तिमता और अवहट्ट भाषा
- १९ डॉ० कावराम पात हिन्दी म प्रयुक्त नसूत गान्धी म अय परिवतन
- २० गमगेर सिट् नरुना हिन्दी और प्रागिक भाषाका का वनानिक अध्ययन
- २१ हानन हिन्दी धानु मग्रह (अनुवाद)
- २२ डा० तगार हिन्दी न्कान मग्रह ऑव अपभ्रग
- २३ सिगोरीगन वाजपयो भारतीय भाषा विधान

- २४ डॉ० उदयनारायण निवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास  
 २५ डॉ० उदयनारायण निवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य  
 २६ डॉ० मुनीतिकुमार चाटजूवा ओरिजन एण्ड डेवेलपमेण्ट ऑफ बँगाली  
 भाषा  
 २७ ज्यूल वनाग (जनुवार्क डॉ० वाण्डेय) भारतीय आय भाषा  
 २८ डॉ० हरदय वाहरी हिन्दी समष्टिकम  
 २९ डॉ० मित्राचन पाड कुमाऊँ का लान साहित्य  
 ३० एटकिन्सन हिमानयन डिस्ट्रिक्ट्स  
 ३१ गुरवीरसिंह पनह प्रकाश  
 ३२ स्मार्थ द बली आव पनावम  
 ३३ स्वप्नपुराण  
 ३४ राहुन माहृत्यायन कुमाऊँ  
 ३५ डॉ० रामसिंह तोमर प्राकृत जीर अपभ्रंश साहित्य  
 ३६ डा० गोविन्द चातक (१) गढ़वाली भाषा (२) गढ़वाली साहित्य,  
 (३) गढ़वाली लोकसाहित्य

## भाषानुकर्मणिका

<p>जवयी ४०, ४१, ५० १००, १०३,          १०१, १३२, १४० १४१, १६६          तपत्राग ३६ ३७, ४५ ४६ ६६ ८८          ८८, १००, १०२ १०० १०८          १०८ १११, १०१ १२३, १२६,          १४०, १७०          अरवी पारमी उदू ५५, ७६, १२८          १८७, १६६          अममी ३६ ६६, १२६          उडिया ३६ ७७ ७८ १०६ १२६          १३१ १३४          ओराव ३८          अप्रजा ५६, १४७          कनौजी ३८          कुमाउनी ४१ ५४ ६८, १०२ १०८          १३४ १६३ १६७, १७६          काकणी ४८          गुजराती ३० ३८ ३६ ४० ४१ ५२          ७७ ७८ ८८, १०० १०१ १२६          १२८ १३५ १३७ १४० १६७          तमिल ४८          ब्रु ४८ १६८</p>	<p>दर ३२ ३३, ५०          पहाडी (पश्चिमी) ७५ ८८ १००,          १३४          पहाडी (पूर्वी) ४१ ५४, ७५ ८८,          ६६ १००, ११४ १३४ १६७,          १६८          प्राकृत -५ ४५, ४६ ७८ ८८ १०८          १११ ११५ १०४, १३ १३७          १३८ १३६          पैगाचा ३० ३३ ३७ ७६          पजावी ३४ ३८, ८० ८१ ११ ५०          ७८ ८६ १०१ १०८ १६५          ब्रजभाषा ४१ ४८ ५० ८८ ८८          १०० १०५ १०८ १२१, १३२          १६१          बगला ३४, ३८ ८० ४१ ५० ५८          ७८ ११४ १०६ १२६ १०४          १६७          बुन्ती ३८, ४१ ८८          भोजपुरी ४० ४१ ५० १०३, १३१          १३२ १४० १४१ १६६          मराठी ३८, ३६ ४० ८१, ५२ ७७.</p>
---	---

७८, १२६, १३८, १६७  
 मुडा ४७, ६८  
 राजस्थानी ३२, ३७, ३८, ३९, ४०,  
 ६१, ५१, ७५, ७७, ७८, ६८, ६९,  
 १००, १०१, १०२, १२६, १३०  
 १३१, १३४, १३५, १३७, १३८,  
 १४६, १६६  
 सहदा ४१, ७७, १३४  
 सिपी ७७, १३१ १६७  
 गौरगनी ३०, ३४, ३७, ४१ १३१  
 हरियाणवी ७७  
 हिन्दी ६१, ५५, १०३, १०४, १०६,  
 १०६, ११०, ११८, १२१, १२३  
 १२५, १३६, १४०, १४२, १४५,  
 १४७, १५१, १६६  
 गढ़वाली की उपबोलियाँ १७५

श्रीनगरी १७५, १७६, १७७, १७८,  
 १८१  
 राठी १७५ १७७  
 यथागी १७५, १७७  
 सनागा १७५, १७६ १७७, १७८  
 त्रिहरियाणी १७५ १७६, १७७,  
 १७८, १८४  
 रवांटी ३६, ४३, ६४, ७२, १०३,  
 १०५, १७६, १७८, १८०  
 टवनीरी १७५  
 रमोया १७५ १७६  
 रागसो १७८  
 तामपुरिया १७५, १७७  
 तोहव्या १७५, १७७  
 मांझ-जुमर्या १७५ १७७  
 बडियारगडी १७५, १७६

